BAEC(N) 301

भारतीय अर्थव्यवस्था

(Indian Economy)

अर्थशास्त्र विभाग
समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani
हैलो हल्द्वानी
91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

पंचम सेमेस्टर
(Fifth Semester)

भारतीय अर्थव्यवस्था

बीएईसी (एन) – 301

(Indian Economy)

BAEC (N) – 301

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी - 263139
फोन नं. 05946 - 261122, 261123 (अर्थशास्त्र विभाग 05946-286041)
फैक्स नम्बर - 05946-264232,
ई-मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष	संयोजक
कुलपति उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर बिक्रम केशरी पटनायक, (सदस्य), निदेशक, विस्तार एवं विकास अध्ययन विद्याशाखा, इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रोफेसर एम. सी. सती, (सदस्य), प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) श्रीनगर, गढ़वाल

प्रोफेसर आर. पी. ममगाई, (सदस्य), प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, दून विश्वविद्यालय, देहरादून

डॉ. शालिनी चौधरी, (सदस्य), सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ. नमिता वर्मा, (मनोनीत सदस्य), सहायक प्राध्यापक (ए.सी.), अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. शालिनी चौधरी

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ सजीव भारद्वाज असोसिएट प्रोफेसर , अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला पी. जी.कॉलेज , सिरसागंज फीरोजाबाद , उ.प्र.	1, 2, 3, 4
डॉ अमितेन्द्र सिंह पं दीन दयाल उपाध्याय, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजाजी पुरम लखनऊ	5, 6, 7
डॉ अनुपमा तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर , अर्थशास्त्र विभाग, राधे हरी राजकीय पी. जी.कॉलेज , काशीपुर, उत्तराखंड	8, 9, 10, 11
डॉ राजेश पाल असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी उ. प्र.	12, 13, 14

पाठ्यक्रम सम्पादन

डॉ. शालिनी चौधरी

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्य वस्तु एवं भाषा सम्पादन

डॉ. नमिता वर्मा

सहायक प्राध्यापक (ए.सी.), अर्थशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन.	:
प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट)	: **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**
प्रकाशन वर्ष	: **2025**
Published By	: **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139**
Printed at	: **प्रतियाँ:**

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पंचम सेमेस्टर Fifth Semester

भारतीय अर्थव्यवस्था **बीएईस(एन- 301**

Indian Economy **BAEC (N) – 301**

विषय-सूची

खण्ड-1 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना	**पृष्ठ - संख्या**
(Structure of Indian Economy)	**01-65**
इकाई -1 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं	**1-17**
(Features of The Indian Economy)	
इकाई – 2 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था	**18-31**
(National Income and Indian Economy)	
इकाई - 3 जनसंख्या, मानवीय संसाधन	**32-47**
(Population, Human Resources)	
इकाई - 4 अधोसंरचना, प्राकृतिक संसाधन	**48-65**
(Infrastructure, Natural Resources)	
खण्ड-2 कृषि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था	**पृष्ठ संख्या**
(Agriculture and Indian Economy)	**66- 116**
इकाई – 5 भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व, एवं नवीन व्यूह रचना	**66-81**
(Nature, importance and new strategy of agriculture in India)	
इकाई - 6 भारत में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ	**82-99**
(Trends in agricultural production and productivity in India)	
इकाई - 7 कृषि साख एवं कृषि विपणन	**100-116**
(Agricultural Credit and Agricultural Marketing)	

खण्ड-3 औद्योगिक संरचनाएं	पृष्ठ संख्या
(Industrial Structure)	117-181
इकाई- 8 औद्योगिक नीति एवं उदारीकरण	117-133
(Industrial Policy and Liberalization)	
इकाई - 9 औद्योगिक संरचना एवं उपलब्धियाँ	134-153
(Industrial Structure and Achievements)	
इकाई - 10 : लघु उद्योग	154-168
(Small Scale Industry)	
इकाई 11 भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि	169-181
(Globalization and Indian Agriculture)	

खण्ड-4 भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था	पृष्ठ संख्या
(Globalization and Indian Economy)	182-232
इकाई 12: विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन	182-200
(Foreign trade and balance of payments)	
इकाई 13: उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र	201-216
(Public Sector in the Era of Liberalization)	
इकाई 14 : विश्व व्यापार संगठन एवं भारत	217-232
(World Trade Organization and India)	

Suggested Readings:

1. Ahuja H.L. (2003) ***Advanced Economic Theory: Microeconomic Analysis***, 13th Edition, S. Chand and Company Ltd. New Delhi
2. Bach, G.L. (1977) ***Economics***, Prentice Hall of India, New Delhi
3. Baumol, W.J., (1982) ***Economic Theory and operations Analysis***, Prentice Hall of India, New Delhi
4. Case, Karl E., Ray C. Fair and Sharon E. Oster (2013) ***Principles of Economics***, (11th Edition), Prentice Hall of India, New Delhi
5. Da Costa, G.C. (1980) ***Production, Prices and Distribution***, Tata McGraw Hill, New Delhi
6. Gould, J.P. and Edward P.L. (1989) ***Microeconomics Theory***, Richard D Irwin, New York
7. Healthfields and Wibe (1987) ***An Introduction to cost and Production's Functions***, Macmillan, London
8. Henderson, J. and R.E. Quandt (1980) ***Microeconomics Theory - A Mathematical approach***, McGraw Hill, New Delhi
9. Hirshleifer J. and A.Glazer (1997) ***Price Theory and Applications***, Prentice Hall of India, New Delhi
10. Koutsoyiannis, A. (1990) ***Modern Microeconomics***, Macmillan Press Ltd., London
11. Kreps, David M. (1990) ***A Course in Microeconomic Theory***, Princeton University Press, Princeton
12. Layard, P.R.G. and A. W. Walters (1978) ***Microeconomic Theory***, McGraw Hill, New York
13. Lipsey, R.G. and K.A. Chrystal (2004) ***Principles of Economics***, (9th Edition), Oxford University Press, New Delhi
14. Perloff, Jeffrey M. (2001) ***Micro Economics***, Addison Wesley Longman Pvt. Ltd., New Delhi
15. Samuelson, P.A. and W.O. Nordhaus (1998) ***Economics***, 16th Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi
16. Sen, A. (1999) ***Microeconomics Theory and Applications***, Oxford University Press, New Delhi
17. Stigler, G. (1996) ***Theory of Price***, (4th Edition), Prentice Hall of India, New Delhi
18. Varian, H. (2000) ***Microeconomic Analysis***, W. W. Norton, New York

इकाई -1 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (Features of The Indian Economy)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)
1.2 उद्देश्य (Objectives)
1.3 परिचय: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना व उसकी प्रमुख मदें (Introduction: Structure of Indian economy and its main elements)
1.3.1 भारत का भौगोलिक वातावरण (Geographic environment of India)
1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (Features of the Indian economy)
1.4.1 परम्परागत विशेषताएं (Conventional Features)
1.4.2 नवीन विशेषताएं: एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में (Innovative features: As a developing economy)
1.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
1.6 सारांश (Summary)
1.7 शब्दावली (Glossary)
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
1.10 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की सबसे प्राचीन एवं विविधतापूर्ण अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जो समय के साथ पारंपरिकता से आधुनिकता की ओर अग्रसर हुई है। इसकी जड़ें ग्रामीण कृषि आधारित समाज में हैं, किंतु आज यह तेजी से विकसित हो रही एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में वैश्विक मंच पर उभर रही है। इस अर्थव्यवस्था की विशेषताएं इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना, प्राकृतिक संसाधनों, श्रमशक्ति एवं नीतिगत दिशा-निर्देशों के अनुरूप विकसित हुई हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता इसका मिश्रित स्वरूप है। इसमें सार्वजनिक (सरकारी) एवं निजी क्षेत्र दोनों की समान भागीदारी है। जहां एक ओर सरकार बुनियादी ढांचे, रक्षा, ऊर्जा एवं सामाजिक कल्याण जैसे क्षेत्रों में निवेश करती है, वहीं निजी क्षेत्र उद्योग, सेवा, व्यापार और तकनीकी क्षेत्र में योगदान करता है। यह संरचना सामाजिक न्याय और आर्थिक दक्षता के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है।

दूसरी विशेषता इसकी कृषि प्रधानता है। यद्यपि सेवा और उद्योग क्षेत्र का योगदान निरंतर बढ़ रहा है, फिर भी ग्रामीण भारत की बड़ी जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि भारतीय जीवन, रोजगार और संस्कृति का अभिन्न अंग है, और यही कारण है कि भारतीय सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषि क्षेत्र के आधुनिकीकरण और किसानों की आय में वृद्धि के प्रयास करती रहती है।

तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है इसका जनसंख्या दबाव एवं श्रम प्रधानता। भारत विश्व की दूसरी सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है, जिसकी विशाल श्रमशक्ति इसकी आर्थिक गतिविधियों का मूल आधार है। यह श्रमशक्ति, यदि शिक्षित और कुशल हो, तो आर्थिक विकास का बड़ा साधन बन सकती है। भारत में श्रम आधारित उद्योगों की अधिकता भी इसी कारण देखी जाती है।

अंतत, भारतीय अर्थव्यवस्था की विविधता भी इसकी एक अनूठी विशेषता है। इसमें विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, जलवायु परिस्थितियों और आर्थिक गतिविधियों का समावेश है। यही विविधता इसे लचीला बनाती है और वैश्विक आर्थिक परिवर्तनों के प्रभाव को संतुलित रूप में झेलने में सक्षम बनाती है। इस प्रकार, भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं इसे एक जटिल, किन्तु संभावनाओं से परिपूर्ण प्रणाली बनाती हैं।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को जान सकेंगें।
- ✓ विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण एवं उनकी व्याख्या कर सकेंगें ।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताओं को जान सकेंगें ।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताओं को बता सकेंगें ।
- ✓ इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना, स्वरूप, विशेषताओं एवं महत्व को समझ सकेंगें तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र विश्लेषण कर सकेंगें।

1.3 परिचय: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना व उसकी प्रमुख मदें (Introduction: Structure of Indian economy and its main elements)

भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार का सातवाँ सबसे बड़ा देश है, जिसका कुल क्षेत्रफल 32.87 लाख वर्ग किलोमीटर है, जो विश्व की कुल भूमि का लगभग 2.4 प्रतिशत है। भारत की भू-सीमा लगभग 15,200 किलोमीटर तथा तटीय सीमा लगभग 7,517 किलोमीटर लंबी है। यह देश तीन ओर से हिंद महासागर, अरब सागर एवं बंगाल की खाड़ी से घिरा है तथा उत्तर में हिमालय पर्वतमाला इसकी प्राकृतिक रक्षा करती है। इसी भौगोलिक संरचना के कारण भारत को एक "उप-महाद्वीप" के रूप में जाना जाता है।

जनसंख्या के दृष्टिकोण से, भारत ने अब चीन को पीछे छोड़ते हुए विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन चुका है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA) और अन्य नवीनतम अनुमानों के अनुसार, वर्ष 2024-25 में भारत की जनसंख्या लगभग 146 करोड़ (1.46 अरब) को पार कर गई है। यह जनसंख्या देश की श्रमशक्ति, उपभोक्ता बाजार, और संसाधनों की माँग-आपूर्ति को गहराई से प्रभावित करती है।

लिंगानुपात के आंकड़ों में भी कुछ सुधार देखने को मिला है। नवीनतम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के अनुसार, भारत का औसत लिंगानुपात अब बढ़कर 1020 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष हो गया है, जो एक ऐतिहासिक सुधार है। हालांकि, राज्यों के बीच इसमें काफी असमानता है।

साक्षरता दर में भी लगातार वृद्धि हो रही है। 2011 में यह 74.04 प्रतिशत थी, जबकि अब 2023-24 के अनुमानों के अनुसार, यह बढ़कर लगभग 78 प्रतिशत तक पहुँच गई है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर लगभग 84% और महिला साक्षरता दर लगभग 71% बताई जाती है।

जनसंख्या घनत्व की बात करें तो 2011 में यह 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था, जो अब अनुमानतः लगभग 430 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तक पहुँच गया है। इससे संसाधनों पर बढ़ते दबाव, शहरीकरण, एवं पर्यावरणीय चुनौतियों को भी समझा जा सकता है।

भारत में प्राकृतिक संसाधनों की विविधता, जैसे-भूमि, जल, खनिज, वनस्पति, और जलवायु की बहुलता,इसे एक अद्वितीय एवं संभावनाओं से परिपूर्ण राष्ट्र बनाती है। कृषि उत्पादन, नवीकरणीय ऊर्जा, सेवा क्षेत्र और डिजिटल प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे तीव्र विकास ने भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक मजबूत स्तंभ बना दिया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना मुख्यतः पांच मदों में वर्गीकृत की जा सकती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:

1.3.1 भौगोलिक वातावरण

भारत उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है तथा इसकी आकृति चतुष्कोणीय है । यह विषुवत् रेखा के उत्तर में 8.4' से 37.6' उत्तरी अक्षांश और 68.7' से 97.25 के पूर्वी देशान्तर के बीच फैला हुआ है। भारत की प्राकृतिक सीमाएं उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण में हिन्द महासागर है । भारत की सीमाएं उत्तर - पूर्व में चीन से, पूर्व में बांग्लादेश व म्यांमार से तथा पश्चिम में पाकिस्तान से मिलती हैं। जलवायु की दृष्टि से यद्यपि भारत की जलवायु सम-शीतोष्ण है तथा अनेक विषमताएं भी हैं, यथा- चेरापूंजी नामक स्थान पर विश्व की सर्वाधिक वर्षा (1145 सेण्टीमीटर से भी अधिक) होती है, तो पश्चिमी राजस्थान तथा कच्छ में न्यूनतम 50 सेण्टीमीटर से कम वर्षा होती है।

जलवायु में भिन्नता के कारण भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं जिनकी उर्वरा शक्ति भी भिन्न-भिन्न है। साथ ही, यहां की जलवायु तथा मिट्टी में सभी प्रकार की फसलें पैदा करने की क्षमता है ।

1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (Features of the Indian economy)

भारत एक विकासोन्मुख राष्ट्र है अतः इसकी मूल विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: परम्परागत विशेषताएं तथा नवीन विशेषताएं।

1.4.1 भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताएं (Traditional features of Indian economy)

ये वे विशेषताएं हैं जो भारत को एक अल्प विकसित राष्ट्र के रूप में विरासत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय प्राप्त हुईं। प्रमुख परम्परागत विशेषताएं इस प्रकार हैं:

कृषि की प्रधानता (The predominance of agriculture) –

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ आज भी एक बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। वर्ष 1951 में भारत की कार्यशील जनसंख्या का लगभग 69.5 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र में कार्यरत था, जबकि 2011 की जनगणना में यह घटकर लगभग 54 प्रतिशत रह गया। वर्तमान में (2023-24 के अनुमान) यह और घटकर लगभग 43 से 45 प्रतिशत के बीच आ गया है। फिर भी, भारत की एक बड़ी जनसंख्या आज भी कृषि पर निर्भर है, जो इसे एक अर्ध-उन्नतशील (semi-developed) अथवा अल्प-विकसित विशेषताओं वाला राष्ट्र बनाता है।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कृषि क्षेत्र का योगदान लगातार घटता गया है। 1950-51 में यह योगदान लगभग 50 प्रतिशत था, जबकि 2023-24 के आंकड़ों के अनुसार, यह लगभग 15-17 प्रतिशत के बीच रह गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि देश की अर्थव्यवस्था में सेवा और औद्योगिक क्षेत्र की भागीदारी तेजी से बढ़ी है, जबकि कृषि अब मुख्यतःरोजगार प्रदाता की भूमिका में अधिक है।

भारत के निर्यात व्यापार में भी कृषि वस्तुओं का योगदान समय के साथ घटा है। 2022-23 के आंकड़ों के अनुसार, कृषि और खाद्य उत्पादों का योगदान कुल निर्यात का लगभग 10–11 प्रतिशत रह गया है। प्रमुख निर्यात वस्तुओं में चावल, गेहूँ, मसाले, फल-सब्जियाँ, और चाय-कॉफी शामिल हैं।

यद्यपि कृषि का GDP में योगदान कम हुआ है, फिर भी यह भारत में रोजगार का प्रमुख साधन बनी हुई है। भारत की खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण जीवन की संरचना, और सामाजिक स्थिरता कृषि पर ही निर्भर हैं। सरकार भी विभिन्न योजनाओं जैसे-प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN), प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, और ई-नाम के माध्यम से कृषि को सशक्त बनाने का प्रयास कर रही है।

कृषि का आर्थिक योगदान भले ही अन्य क्षेत्रों की तुलना में घटा हो, किंतु सामाजिक एवं रोजगारिक दृष्टिकोण से इसकी प्रासंगिकता आज भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक तकनीकों, जल प्रबंधन, जैविक खेती और बाजार व्यवस्था के सुधार से कृषि क्षेत्र को भविष्य में अधिक उत्पादक और टिकाऊ बनाया जा सकता है।

प्रति व्यक्ति निम्न आय (Low per capita income)-

विश्व विकास रिपोर्ट, 2010 के अनुसार वर्ष 2008 में भारत की प्रति व्यक्ति आय मात्र 1070 अमेरिकी डॉलर थी, जो अमेरिका की उसी वर्ष की प्रति व्यक्ति आय 47,580 डॉलर की तुलना में लगभग 1/44वां भाग थी। यह आंकड़ा दर्शाता था कि भारत वैश्विक स्तर पर आर्थिक रूप से तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था होने के बावजूद प्रति व्यक्ति आय के मामले में काफी पिछड़ा हुआ था।

वर्तमान में (2023-24 के अनुमान के अनुसार) भारत की प्रति व्यक्ति आय लगभग 2,700 से 2,800 अमेरिकी डॉलरतक पहुँच गई है। हालांकि यह आय निरपेक्ष रूप से दोगुने से भी अधिक हो चुकी है, लेकिन अब भी यह विकसित देशों जैसे अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि की तुलना में काफी कम है। उदाहरण के लिए, अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय अब लगभग 80,000 डॉलर से अधिक है, जो भारत की तुलना में लगभग 28–30 गुना अधिक है।

भारत आज GDP के आकार के लिहाज से विश्व की 5वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है, किंतु प्रति व्यक्ति आय के मामले में वह अब भी मध्यम आय वाले देशों की श्रेणी में आता है। इसकी मुख्य वजह है अत्यधिक जनसंख्या दबाव, जिससे देश की कुल आय का समान वितरण नहीं हो पाता और प्रति व्यक्ति औसत अपेक्षाकृत कम रह जाती है।

गरीबी की स्थिति में भी सुधार हुआ है, परंतु यह समस्या अभी समाप्त नहीं हुई है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, भारत की लगभग 10–12 प्रतिशत आबादी अब भी गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। यह आंकड़ा पहले की तुलना में भले ही कम है (2004-05 में यह 25% से अधिक था), फिर भी यह नीति-निर्माताओं के लिए एक गंभीर चुनौती बनी हुई है।

भारत में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि अवश्य हुई है, लेकिन तेज जनसंख्या वृद्धि, आय असमानता, और बेरोजगारी जैसी समस्याएँ इसे वांछित स्तर तक पहुँचने से रोक रही हैं। भविष्य की रणनीतियों में सामावेशी विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार सृजन को प्राथमिकता देना आवश्यक होगा ताकि प्रति व्यक्ति आय में टिकाऊ सुधार हो सके और निर्धनता का स्थायी उन्मूलन किया जा सके।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Rural Economy) -

भारत को अक्सर "ग्रामों का देश" कहा जाता है, क्योंकि इसकी बड़ी आबादी अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। वर्तमान में (2023-24 के अनुमान के अनुसार), भारत में लगभग 6.4 लाख से अधिक गांव और लगभग 8000 छोटे-बड़े शहर एवं कस्बे हैं। यह आंकड़ा दर्शाता है कि भारत की भौगोलिक और सामाजिक संरचना आज भी मुख्यत ग्रामीण प्रकृति की बनी हुई है।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 68.84 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता था, जबकि शहरी जनसंख्या केवल 31.16 प्रतिशत थी। 2024 तक के नवीनतम अनुमानों के अनुसार, ग्रामीण जनसंख्या का हिस्सा घटकर लगभग 64–65 प्रतिशत रह गया है, जबकि शहरीकरण की प्रक्रिया तेज़ी से बढ़ रही है। फिर भी, यह प्रतिशत विकसित देशों की तुलना में बहुत अधिक है, जहाँ अधिकांश जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में निवास करती है।

इस स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि भारत अब भी एक ग्रामीण प्रधान और अर्ध-विकसित अर्थव्यवस्था है, जहाँ बुनियादी सेवाओं की पहुँच, रोजगार, स्वास्थ्य, और शिक्षा की गुणवत्ता में ग्रामीण–शहरी विषमता बनी हुई है। जबकि अमेरिका, जापान, ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 15 से 25 प्रतिशत के बीच ही है, भारत में अब भी हर 3 में से लगभग 2 व्यक्ति गांव में रहते हैं।

हालांकि, भारत में शहरीकरण की गति लगातार बढ़ रही है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम जैसे स्मार्ट सिटी मिशन, प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण और शहरी), और ग्रामीण बुनियादी ढांचा विकास

कार्यक्रम इस बदलाव को गति दे रहे हैं। इसके बावजूद, ग्रामीण भारत का सशक्तिकरण और समावेशी विकास भारत की आर्थिक स्थिरता और सामाजिक संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

औद्योगिक पिछड़ापन (Industrial Backwardness)-

अल्प विकसित देशों में उद्योगों की संख्या बहुत कम होती है । उद्योगों की संख्या कम होने बहुत थोड़े लोगों को रोजगार मिल पाता है और इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी कम होता है। उद्योगों के अभाव में आर्थिक विकास की आधारभूत पृष्ठभूमि तैयार किया जाना सम्भव नहीं होता। भारत में 12 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी हुई है और सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान मात्र 25 प्रतिशत है। भारत में शीघ्र लाभ देने वाले उद्योगों में ही विनियोग किया जाता है । इससे अर्थव्यवस्था में उद्यमियों को कार्य करने के लिए उचित एवं अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता। पूंजी का अभाव तथा निम्न जीवन स्तर आदि कारकों से औद्योगिक विकास बाधित होता है ।

भारत की जनसंख्या (Population of India)-

अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर सामान्यत 2% से 4% प्रति वर्ष के बीच होती है। यह समस्या विशेष रूप से विकासशील और अर्द्ध-विकसित देशों के लिए चुनौतीपूर्ण रही है, जहाँ सीमित संसाधनों पर बढ़ती जनसंख्या का अत्यधिक दबाव पड़ता है। भारत भी इस श्रेणी में लंबे समय तक सम्मिलित रहा है, हालाँकि हाल के वर्षों में जनसंख्या वृद्धि दर में कमी देखने को मिली है।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 121 करोड़ थी, जबकि 2023-24 के नवीनतम अनुमानों के अनुसार, भारत की जनसंख्या बढ़कर लगभग 1.46 अरब (146 करोड़) हो चुकी है। इस वृद्धि के साथ भारत ने चीन को पीछे छोड़ते हुए विश्व की सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बनने का दर्जा प्राप्त कर लिया है।

हालाँकि, जनसंख्या वृद्धि दर में कुछ गिरावट आई है वर्तमान में यह लगभग 1.0 से 1.2 प्रतिशत वार्षिक है फिर भी जनसंख्या का विशाल आकार प्राकृतिक संसाधनों, सार्वजनिक सेवाओं, और आर्थिक अवसंरचना पर अत्यधिक दबाव बना रहा है। भारत जैसे देश में, जहाँ संसाधनों की उपलब्धता सीमित है, वहाँ जनसंख्या का अत्यधिक दबाव प्रति व्यक्ति संसाधन उपभोग को प्रभावित करता है।

इसी कारण, देश के संसाधनों के अधिकतम दोहन और योजनाबद्ध विकास प्रयासों के बावजूद प्रति व्यक्ति आय में उतनी तीव्र वृद्धि नहीं हो सकी, जितनी अपेक्षित थी। वर्तमान में प्रति व्यक्ति आय लगभग 2,700–2,800 अमेरिकी डॉलर के आसपास है, जो अब भी विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है।

पूंजी का अभाव(Lack of capital)-

भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकास का एक अन्य मूल कारण पूंजी का अभाव है जो दो रूपों में प्रकट होती है- प्रथम, प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूंजी की निम्न मात्रा; और द्वितीय, पूंजी- निर्माण की प्रचलित निम्न दर । अधिकतर अल्प विकसित देशों में व्यापक गरीबी के कारण पूंजी निर्माण की दर बहुत कम है । भारत में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक कम होने के कारण यहां पूंजी- निर्माण एवं विनियोग की दर अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। वास्तव में पूंजी निर्माण आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण तत्व है। जापान में पूंजी निर्माण की दर 33 प्रतिशत है, जबकि भारत में यह 24.0 प्रतिशत । भारत में पूंजी की मांग अधिक है, जबकि उपलब्धता कम। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन, भूमि की उत्पादकता बढ़ाने, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु प्रशिक्षण व्यवस्था आदि कार्यों के लिए पूंजी उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः आर्थिक विकास एवं प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। बैंजामिन हिंगिस के अनुसार "पूंजी का संचय

आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। अर्थव्यवस्था चाहे अमेरिका की तरह पूंजीवादी हो अथवा चीन की तरह साम्यवादी; आर्थिक विकास बिना पूंजी-संचय के सम्भव हो ही नहीं सकती।"

बेरोजगारी (Unemployment)-

भारत जनसंख्या - बहुल अल्प विकसित देश है । मानव श्रम की उपलब्धता उत्पादक कार्यों की तुलना में अधिक है । ऐसी स्थिति में समस्त जनसंख्या को लाभकारी रोजगार उपलब्ध करा पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। वर्तमान समय में, भारत में, अनुमानतः 5 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं। प्रतिवर्ष 62 लाख बेरोजगार व्यक्तियों की वृद्धि हो जाती है । भारत में जो व्यक्ति रोजगार से जुड़े हैं, उनकी स्थिति भी अच्छी नहीं है । इनमें से कुछ ऐसे लोग भी है जिन्हें नियमित रोजगार नहीं प्राप्त होता, अर्थात् जो कार्य कर रहे हैं, उनके लिए पूरे समय के लिए काम नहीं है। ऐसी स्थिति को अर्द्ध रोजगार कहा जाता है। भारत में कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है। यहां कृषि क्षेत्र में भारी प्रच्छन्न बेरोजगारी होती है । इसका कारण यह है कि जब आर्थिक विकास की गति धीमी होती है और जनसंख्या तेजी से बढ़ती है तो रोजगार के अवसर उतने नहीं बढ़ते, जितनी कि मांग होती है । इस स्थिति में कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बढ़ जाता है और छोटी-छोटी जोतों पर जरूरत से अधिक लोग काम करते हैं। इससे कुल उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती । अर्थशास्त्री इस स्थिति को प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी कहते हैं ।

प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता (Abundance of natural resources)–

भारत की प्रकृति बहुत उदार है । इसने भारत को प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में प्रदान किये हैं। यहां सदा बहने वाली नदियां हैं। सोना, चांदी, कोयला, लोहा, उर्वरक तथा मैगनीज आदि खनिज पदार्थों का अथाह भण्डार है, वन सम्पत्ति विशाल है, शक्ति के साधनों का बाहुल्य है। यहां की मिट्टी उपजाऊ है तथा जलवायु बहुत सुहावनी है, परन्तु भारत का दुर्भाग्य है कि इन प्राकृतिक साधनों का समुचित विदोहन नहीं हो सका है। इससे सम्पन्नता होते हुए भी दरिद्रता दूर किया जाना सम्भव नहीं हो सका है। इससे भी भारत को अल्प विकसित राष्ट्र की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

निर्वल और आर्थिक संगठन भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक संगठन निर्बल है। यहां बचत की सुविधाएं कम हैं, बैंकिंग सुविधाओं का विकास कम हुआ है, ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी साहूकारों तथा महाजनों का बोलवाला है, जनता को विनियोग क्षेत्रों की पूरी जानकारी नहीं है, औद्योगिक वित्त का अभाव है । इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए जिन संस्थाओं की आवश्यकता है, उनका यहां अभाव है।

आर्थिक विषमता (Economic inequality)-

अन्य अल्प विकसित देशों की भाँति भारत में भी आय और संपत्ति के वितरण में गंभीर असमानता पाई जाती है। यद्यपि भारत आज विश्व की पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है, फिर भी आम जनजीवन की आर्थिक स्थिति में गहरी विषमता व्याप्त है। विकसित देशों में जहां प्रगतिशील कर प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, और रोजगार में समान अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं, वहीं भारत जैसे विकासशील देशों में इन व्यवस्थाओं का अभी भी पूर्ण विकास नहीं हो सका है। इसके कारण यहाँ आय और संपत्ति का वितरण असमान रूप से केन्द्रित होता जा रहा है।

कृषि क्षेत्र में आज भी बड़ी मात्रा में भूमि कुछ सीमित लोगों के पास केंद्रित है, जबकि शेष लोग छोटे कृषक या खेतिहर मजदूर के रूप में कार्यरत हैं। औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्रों में भी कुछ ही बड़े समूहों और

पूँजीपतियों का वर्चस्व है, जिसके कारण शेष जनसंख्या को अपने श्रम पर ही आश्रित रहना पड़ता है, और उनकी आय सीमित बनी रहती है। विश्व असमानता रिपोर्ट (World Inequality Report 2022) के अनुसार, भारत की शीर्ष 10 प्रतिशत जनसंख्या के पास कुल राष्ट्रीय आय का 57 प्रतिशत हिस्सा है, जबकि निचले 50 प्रतिशत लोगों को केवल 13 प्रतिशत आय प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक विषमता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

राज्यवार आय वितरण भी भारत में असमान है। आर्थिक सर्वेक्षण 2024–25 के अनुसार, गोवा, हरियाणा, और कर्नाटक जैसे राज्यों की प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक है, जबकि बिहार, झारखंड, और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में यह अभी भी न्यूनतम स्तर पर बनी हुई है। यह असमानता अवसंरचना, निवेश, औद्योगिक विकास, और शिक्षा-स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में अंतर के कारण है।

हालाँकि, भारत सरकार ने इस असमानता को कम करने हेतु गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों, ग्रामीण बेरोजगारों, महिलाओं, और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं। इनमें प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना, मनरेगा, उज्ज्वला योजना, आवास योजना, और स्वनिधि योजना जैसी योजनाएँ उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही, डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) जैसी प्रणालियों से पारदर्शिता भी सुनिश्चित की जा रही है।

आर्थिक निर्भरता (Economic dependence)–

एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अल्प विकसित देश बहुत समय तक औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं । इनका औपनिवेशिक शोषण करने वाले पूंजीवादी देशों ने इन पर विदेशी व्यापार का ऐसा ढांचा थोपा जिससे ये देश प्राथमिक कृषि वस्तुओं के उत्पादक व निर्यातक बनकर रह गये और औद्योगिक वस्तुओं की मांग को पूराकरने के लिए इन पूंजीवादी देशों पर निर्भर हो गये । स्वतन्त्रता के बाद भी काफी समय तक आर्थिक निर्भरता की यह स्थिति चलती रही। यही कारण है कि भारत चाय और पटसन के निर्यात पर निर्भर बना रहा। पिछले वर्षों से आर्थिक आयोजन प्रक्रिया के कारण अनेक अल्प विकसित देशों के उत्पादन और व्यापार ढांचे में विविधीकरण हुआ है तथा औद्योगिक वस्तुओं के लिए विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई है।

रूढ़िवादिता (Conservative)–

अल्प विकसित देशों में सामाजिक ढांचे में रूढ़िवादिता अभी भी बनी हुई है सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। इन रूढ़ियों का देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । भारत में लोग बाल-विवाह, मृतक भोज, विवाह के समय दावतें तथा आभूषण निर्माण जैसे अनुत्पादक कार्यों के लिए कर्ज लेकर भी अपव्यय करते हैं । कुछ देशों में कृषि वित्त प्रदान करने के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना नहीं की गयी है और महाजनों की जकड़ पहले की तरह बनी हुई है । इसका परिणाम यह है कि आर्थिक ढांचा पहले जैसा ही बना हुआ है और यह जड़ता विकास में बाधा बन गयी है ।

निर्धनता (Poverty)–

भारत में गरीबी लंबे समय से एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक चुनौती रही है, हालाँकि हाल के वर्षों में इसमें महत्वपूर्ण गिरावट देखी गई है। 1999–2000 में भारत की 26.10 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही थी, जो 2004–05 में घटकर 21.80 प्रतिशत हो गई थी। उस समय, उड़ीसा जैसे राज्यों में गरीबी का अनुपात सबसे अधिक था लगभग 46.4 प्रतिशत, जबकि जम्मू-कश्मीर में यह मात्र 5.4

प्रतिशत था। इस समयावधि में लकड़ावाल फॉर्मूला के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों के लिए भिन्न-भिन्न निर्धरता रेखाएं निर्धारित की गई थीं, जो उपभोग व्यय पर आधारित थीं।

वर्तमान में, गरीबी का मूल्यांकन केवल आय आधारित ही नहीं, बल्कि बहुआयामी गरीबी (Multidimensional Poverty) के आधार पर भी किया जा रहा है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन-स्तर के संकेतक शामिल हैं। विश्व बैंक और नीति आयोग की नवीनतम रिपोर्ट (2022–23) के अनुसार, भारत में अत्यधिक गरीबी (Extreme Poverty) का स्तर घटकर मात्र 5.3 प्रतिशत रह गया है। इसके साथ ही, लगभग 27 करोड़ लोगों को 10 वर्षों में गरीबी से बाहर निकाला गया है।

अब पहले की तुलना में उड़ीसा जैसे राज्यों में भी गरीबी में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है। उदाहरणस्वरूप, नीति आयोग के अनुसार, उड़ीसा में बहुआयामी गरीबी 2015–16 के 29.3 प्रतिशत से घटकर 2019–21 में 15.7 प्रतिशत रह गई है। दूसरी ओर, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश जैसे राज्य अब भी उच्च गरीबी दर वाले राज्यों में शामिल हैं। राज्यवार अंतर अब भी मौजूद हैं और भारत में प्रति व्यक्ति आय, जीवन स्तर और रोजगार के अवसरों में क्षेत्रीय विषमता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

परिवहन व संचार साधनों का अभाव (Lack of transport and communication facilities)-

भारत परिवहन व संचार साधनों की दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ देश है । आज भी कच्ची सड़कों की संख्या बहुत अधिक है । ग्रामों की एक बड़ी संख्या अभी भी सड़कों से नहीं जुड़ सकी है। इसी प्रकार देश के संचार साधनों का पर्याप्त विकास हुआ है, किन्तु फिर भी विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है।

कुशल श्रम व तकनीकी ज्ञान का अभाव (Lack of skilled labour and technical knowledge) –

भारत में गत वर्षों में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्षेत्रों में प्रगति होने पर भी तकनीकी ज्ञान का अभाव है और श्रमिकों की कुशलता का स्तर बहुत नीचा है। यहां पर प्रति हैक्टेयर उपज व प्रति श्रमिक उपज दोनों का स्तर अन्य देशों की तुलना में बहुत नीचा है । अतः कृषि व उद्योग दोनों क्षेत्र पिछड़े हुए हैं।

1.4.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताएं: एक विकासशील अर्थव्यवस्था (Innovative features of Indian Economy: As a developing economy)

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास हेतु नियोजन को अपनाया गया है । इसके अन्तर्गत 1951 से पंचवर्षीय योजनाएं लागू की गयी हैं । इन योजनाओं के क्रियान्वयन से ही अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में विकास की गति में तीव्रता आई है । भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए आर्थिक परिवर्तनों के आधार पर इसे एक विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है । स्वतन्त्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था को जो विशेषताएं विरासत में प्राप्त हुई थीं उनमें विकास की प्रक्रिया व प्रयासों के कारण कुछ नवीन विशेषताएं भी जुड़ गयीं ।

भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताएं वे हैं जो भारत ने स्वतन्त्रता के पश्चात् अपने प्रयासों से अर्जित की हैं । इस आधार पर भारत को विकासशील राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की जाती है । प्रमुख नवीन विशेषताएं इस प्रकार हैं:

नियोजित अर्थव्यवस्था (Planned economy) - भारत में पंचवर्षीय योजनाएं (Five Year Plans) देश की सामाजिक और आर्थिक विकास प्रक्रिया की आधारशिला रही हैं। इन योजनाओं की शुरुआत 1951 में हुई थी और 2017 तक ये चलती रहीं। 2017 के बाद भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की जगह नीति आयोग (NITI Aayog) ने ले ली, जो लचीली, आवश्यकता-आधारित और सतत विकास को प्राथमिकता देने वाली योजना पद्धति पर आधारित है। भारत में आर्थिक आयोजन के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए लक्ष्य

निर्धारित किये जाते हैं और अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के लिए साधनों को आवण्टित किया जाता है । 1990 के दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से आर्थिक आयोजन का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक संवृद्धि है । जिस देश की अर्थव्यवस्था में लगभग 200 वर्ष तक औपनिवेशिक शोषण के कारण कोई खास विकास न हुआ हो, और वहां की अर्थव्यवस्था संसार में विकास की दृष्टि से बहुत पीछे रह गयी हो, वहां आर्थिक संवृद्धि पर जोर देना बहुत आवश्यक है, जो कि आर्थिक नियोजन से ही सम्भव है ।

प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (Rise in per capita income) - देश को आजादी प्राप्त होने के बाद से भारतीय जन सामान्य की प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1950-51 से 2004-05 तक 54 वर्षों की अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 2.25 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है। 1993-94 की कीमतों के आधार पर 2004-05 में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 12416 रुपये थी। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आय में निरन्तर वृद्धि होने से भारत विकासशील देशों की श्रेणी में सम्मिलित होने का अधिकारी है । देश के सभी 28 राज्यों व 8 केन्द्रशासित राज्यों में सर्वाधिक प्रति व्यक्ति आय सिक्किम में है । भारत में सिक्किम वर्तमान में प्रति व्यक्ति आय के मामले में शीर्ष स्थान पर है। वित्तीय वर्ष 2023-24 में सिक्किम की प्रति व्यक्ति आय लगभग 5,87,743 थी, जो राष्ट्रीय औसत से तीन गुना अधिक है।

सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)–

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत के साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना और विस्तार को विशेष प्राथमिकता दी गई। वर्ष 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 5 औद्योगिक इकाइयाँ थीं, जिनमें कुल ₹29 करोड़ की पूंजी लगी थी। योजनाबद्ध विकास के चलते यह संख्या और निवेश दोनों ही लगातार बढ़ते गए। वर्ष 2004-05 तक सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयों की संख्या बढ़कर 227 हो गई और इन इकाइयों में ₹3,57,849 करोड़ की पूंजी निवेशित थी। 2007 तक केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (CPSEs) की संख्या 244 हो गई थी (वित्तीय संस्थानों को छोड़कर)। 2017-18 तक यह संख्या बढ़कर 331 तक पहुँच गई, जिनमें से 257 इकाइयाँ संचालन में थीं तथा शेष 74 स्थापना की प्रक्रिया में थीं।

वर्तमान में (2023-24 तक) CPSEs की संख्या बढ़कर लगभग 365 तक पहुँच गई है। इन उपक्रमों में न केवल केंद्र सरकार की ओर से पूंजी निवेश किया गया है, बल्कि राज्य सरकारों द्वारा भी बड़ी संख्या में सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना की गई है, जिनमें ऊर्जा, परिवहन, जल आपूर्ति, औद्योगिक विकास आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय निवेश हुआ है। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाएं जैसे भारतीय स्टेट बैंक (SBI), भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC), और अन्य सार्वजनिक क्षेत्रीय बैंक एवं बीमा कंपनियाँ, पूंजी जुटाने और निवेश को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

भारत में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के निवेश के अनुपात में समय के साथ परिवर्तन आया है। प्रारंभिक योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र का वर्चस्व था, क्योंकि बुनियादी ढाँचे, भारी उद्योग, इस्पात, कोयला, उर्वरक, रसायन और ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में निजी पूंजी की भूमिका सीमित थी। लेकिन उदारीकरण की नीतियों (1991 के बाद) के पश्चात् निजी क्षेत्र की भागीदारी में तीव्र वृद्धि हुई है। फिर भी, सार्वजनिक क्षेत्र आज भी भारत की अर्थव्यवस्था का एक मजबूत आधार बना हुआ है। यह न केवल औद्योगिक विकास का प्रेरक है, बल्कि यह रोजगार सृजन, क्षेत्रीय संतुलन और सामाजिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

इस प्रकार, भारत के आर्थिक ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका अभी भी महत्त्वपूर्ण है। यह न केवल रणनीतिक उद्योगों और सार्वजनिक कल्याण की दृष्टि से उपयोगी है, बल्कि यह राष्ट्रीय बचत को एकत्र कर योजनाबद्ध निवेश सुनिश्चित करने में भी सक्षम माध्यम बना हुआ है।

बचत एवं पूंजी निर्माण की दरों में वृद्धि (Increase in the rates of savings and capital formation)-

भारत में गत दशकों में सकल घरेलू बचत दर में पर्याप्त वृद्धि हुई है। यह आर्थिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि है । देश में घरेलू बचतों का उपयोग आर्थिक विकास कार्यों में भली-भांति हो रहा है। वर्ष 1950-51 में सकल घरेलू बचत - दर 10.4 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1997-98 में बढ़कर 26.3 प्रतिशत हो गयी थी। वर्ष 2008-09 में सकल घरेलू बचत-दर (जीडीपी) का प्रतिशत 32.5 आकलित किया गया। इसी प्रकार पूंजीनिर्माण की दर जो वर्ष 1950-51 में 10.2 प्रतिशत थी, वर्ष 2008-09 में बढ़कर 35.6 प्रतिशत हो गयी । 2011-12 में सकल घरेलू बचत-दर (GDP) का प्रतिशत 34.6%, 2020 में सकल घरेलू बचत-दर (GDP) का प्रतिशत 30.73%, 2022-23 में सकल घरेलू बचत-दर (GDP) का प्रतिशत 29.7%,2023-24 में सकल घरेलू बचत-दर (GDP) का प्रतिशत 30.7% हाल के वर्षों में बचत दर में गिरावट के बावजूद, 2023-24 में इसमें कुछ सुधार देखा गया है। विशेषज्ञों का मानना है कि यदि आर्थिक नीतियाँ स्थिर रहती हैं और घरेलू बचत को प्रोत्साहित किया जाता है, तो यह प्रवृत्ति आगे भी जारी रह सकती है।

समाजवादी व्यवस्था की ओर (Towards a socialist system)-

भारत सरकार आर्थिक विषमता को समाप्त करने और समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निरंतर प्रयत्नशील रही है। इस दिशा में जमींदारी प्रथा की समाप्ति, कृषकों को उनकी भूमि के स्वामित्व का अधिकार दिलाना, सार्वजनिक क्षेत्र में विविध उपक्रमों की स्थापना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, कृषि जोतों की अधिकतम और न्यूनतम सीमा निर्धारण, खाद्यान्नों का राजकीय व्यापार, सहकारी आंदोलन का विस्तार और कृषकों को ऋणमुक्त घोषित करना जैसे अनेक कदम उठाए गए हैं। इन सभी प्रयासों के माध्यम से सरकार ने एक समतामूलक आर्थिक व्यवस्था की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के बैंकिंग और वित्तीय ढांचे में उल्लेखनीय प्रगतिशील परिवर्तन हुए हैं। 1949 में रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण किया गया और इसी वर्ष बैंकिंग नियमन अधिनियम लागू किया गया। तत्पश्चात, 1955 में इंपीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण कर उसे 'स्टेट बैंक ऑफ इंडिया' (SBI) नाम दिया गया। इसके बाद इसके सात सहयोगी बैंकों और भारतीय महिला बैंक को मिलाकर अब तक कुल आठ बैंकों का विलय एसबीआई में किया जा चुका है।

19 जुलाई, 1969 को देश के 14 बड़े व्यावसायिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इससे बैंकिंग क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव आया और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों जैसे कृषि, लघु उद्योग तथा गरीब वर्गों को सुलभ ऋण प्रदान किया जाने लगा। 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ, जिससे सरकारी बैंकों की पहुँच और साख प्रणाली और व्यापक बनी।

1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (Regional Rural Banks - RRBs) की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से सीमांत और लघु कृषकों, खेतिहर मजदूरों, कारीगरों और कमजोर वर्गों को ऋण सुविधा प्रदान करना है। आज देश की लगभग 60% बैंक शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं, जिससे वित्तीय समावेशन को बल मिला है।

वित्तीय सुधारों की दिशा में 1991 के बाद से निजी बैंकों को फिर से बैंकिंग क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति दी गई, जिससे प्रतिस्पर्धा और सेवा गुणवत्ता में सुधार हुआ। वर्ष 2010 के बाद डिजिटल बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग और यूपीआई (UPI) जैसे प्लेटफॉर्म ने बैंकिंग को तेज, सुरक्षित और सर्वसुलभ बना दिया है।

विलय के दौर में, मार्च 2020 में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के पुनर्गठन के तहत 10 बैंकों का विलय करके उन्हें 4 बड़े बैंक समूहों में समाहित किया। इससे बैंकिंग प्रणाली को अधिक सक्षम, प्रतिस्पर्धी और वैश्विक मानकों के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया।

औद्योगिक वित्त प्रदान करने हेतु औद्योगिक वित्त निगम (IFCI), औद्योगिक विकास बैंक ऑफ इंडिया (IDBI), राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (NSIC) तथा भारतीय निर्यात-आयात बैंक (EXIM Bank) जैसी संस्थाओं की स्थापना की गई है। इन संस्थाओं ने औद्योगिक विकास, निर्यात संवर्धन, उद्यमिता विकास तथा सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) के वित्तपोषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आधारभूत उद्योगों का विकास (Development of basic industries)-

आजादी के समय भारत का औद्योगिक ढांचा सामान्य रूप से अल्प-विकसित तो था ही, उसका पिछड़ापन पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में बहुत था । आजादी के बाद से औद्योगिक विकास का स्वरूप राज्य की नीतियों द्वारा निर्धारित होता रहा है । भारत में आर्थिक आयोजन प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद पूंजीगत वस्तुएं उत्पादित करने वाले उद्योगों पर काफी जोर दिया गया था, क्योंकि आयोजकों का विचार था कि बिना इसके अर्थव्यवस्था का समग्र रूप से विकास आसान नहीं होगा। अतः अनेक आधारभूत उद्योग स्थापित किये गये हैं जो पूंजीगत उपकरण तथा कच्चे माल का उत्पादन करते हैं । इससे देश के औद्योगिक ढांचे में मजबूती आई हैं । आयोजन काल में जो आधारभूत उद्योग व्यापक स्तर पर विकसित हुए हैं, उनमें उल्लेखनीय हैं- लोहा और इस्पात, भारी इंजीनियरिंग, रसायन, उर्वरक, मशीनी औजार, रेल इंजन, बिजली के भारी उपकरण, एल्यूमिनियम तथा पैट्रोलियम आदि ।

कृषि को प्रोत्साहन (Stimulus to agriculture)-

योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया के प्रारंभ से ही भारत में कृषि क्षेत्र को विशेष प्राथमिकता दी गई है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि के लिए आवंटित बजट में निरंतर वृद्धि की गई, जिससे इस क्षेत्र की संरचना और उत्पादन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार हुआ। जहां स्वतंत्रता के समय 1950-51 में खाद्यान्न उत्पादन मात्र 5.13 करोड़ टन था, वहीं 2009-10 में यह बढ़कर लगभग 218.20 मिलियन टन (21.82 करोड़ टन) तक पहुँच गया। इसके पश्चात, वर्ष 2022-23 में भारत ने 330.5 मिलियन टन से अधिक खाद्यान्न उत्पादन कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया, जिसमें चावल, गेहूं, दलहन और मोटे अनाज की विशेष भागीदारी रही। वाणिज्यिक फसलों जैसे कपास, गन्ना, तिलहन और बागवानी फसलों के उत्पादन को भी सरकार द्वारा योजनात्मक समर्थन प्रदान किया गया है, जिससे कृषकों की आय में वृद्धि हुई है। कृषि क्षेत्र को सशक्त बनाने हेतु हरित क्रांति (Green Revolution) और श्वेत क्रांति (White Revolution) जैसे नवाचारों को सफलतापूर्वक लागू किया गया। हरित क्रांति के अंतर्गत उन्नत बीज, रासायनिक खाद, सिंचाई की आधुनिक विधियाँ तथा कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा मिला, वहीं श्वेत क्रांति ने भारत को विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बना दिया।

पिछले कुछ दशकों में प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, ई-नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार), किसान क्रेडिट कार्ड, कृषि यंत्रीकरण योजना तथा ड्रोन तकनीक का कृषि में उपयोग जैसे

कार्यक्रमों ने कृषि को और अधिक वैज्ञानिक तथा लाभकारी बना दिया है। जैविक खेती, प्राकृतिक कृषि और सतत कृषि (Sustainable Agriculture) की अवधारणाओं को भी सरकार और किसानों द्वारा अपनाया जा रहा है।

इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत को अब निर्धन और पिछड़े देश के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि वह एक तेजी से प्रगति कर रही विकासशील अर्थव्यवस्था बन चुका है। आर्थिक नियोजन के सात दशकों के दौरान भारत ने कृषि, उद्योग, व्यापार, सेवा क्षेत्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और संचार आदि क्षेत्रों में असाधारण प्रगति की है। आज भारत डिजिटल सशक्तिकरण, स्टार्टअप संस्कृति, महिला सशक्तिकरण और वैश्विक आर्थिक सहभागिता में अग्रणी देशों की श्रेणी में खड़ा है।

इस प्रकार, भारत की योजनात्मक अर्थव्यवस्था ने देश को आत्मनिर्भरता, खाद्य सुरक्षा और सतत विकास की दिशा में सफलतापूर्वक अग्रसर किया है।

1.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:**

a) भारत की कुल भूमि का क्षेत्रफल …………….. लाख किलोमीटर है।

b) 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या …………… करोड़ है ।

c) भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या पर घनत्व……….. व्यक्ति है ।

d) भारत में पुरुष एवं महिलाओं का अनुपात 1000 पुरुष: ……….महिलाएं है ।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. शक्ति के संसाधन के रूप में निम्न की गणना नहीं की जाती है:

a) परमाणु
b) कोयला
c) लोहा एवं इस्पात
d) पैट्रोलियम

2. भारत में सिंचाई का साधन नहीं है:

a) तालाब
b) नल
c) कुंए
d) नहरें

3. भारत, विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है:

a) चौथी
b) बारहवीं
c) आठवीं
d) तीसरी

4. भारत की कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी है:

a) 10 प्रतिशत

b) 12 प्रतिशत

c) 8 प्रतिशत

d) 6 प्रतिशत

5. भारत में नियोजन प्रारम्भ हुआ:

a) 1951 से

b) 1947 से

c) 1950 से

d) 1948 से

3. लघु उत्तरीय प्रश्नः

a) भारत के प्राकृतिक संसाधन विशाल हैं, कैसे ?

b) विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषताएं बताओ ।

c) भारत के निवासी निर्धन हैं. कैसे ?

d) भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना बताइये |

1.6 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार का सातवां तथा जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है । भारत अच्छे भौगोलिक वातावरण, प्राकृतिक संसाधनों, यथा- भूमि तथा मिट्टियां, वन संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन, शक्ति के संसाधनों, मानव संसाधन, कृषि व सिंचाई, उद्योग एवं परिवहन आदि के लिए तथा उसकी बेहतर उत्पादन क्षमता के कारण एक धनी देश माना जाता है, किन्तु भारत की कुछ पारम्परिक विशेषताएं ऐसी हैं जिनके कारण भारत धनी होते हुए भी निर्धन कहा जाता है। अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी, गरीबी, कृषि पर निर्भरता, प्रति व्यक्ति निम्न आय, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, औद्योगिक पिछड़ापन, पूंजी का अभाव, तथा रूढ़िवादिता ऐसी प्रमुख विशेषताएं हैं जो भारत को धनी होते हुए भी निर्धन बनाए हुए हैं।

भारत एक विकासशील देश है, क्योंकि यह एक प्रगतिशील राष्ट्र है जो तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर है। आर्थिक नियोजन, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं पूंजी निर्माण में तेजी, बैंकिंग सेवाओं का विस्तार आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो भारत को एक विकासशील राष्ट्र की श्रेणी में खड़ा करती हैं। जिस तेजी से भारत विकास के पथ पर बढ़ रहा है, यदि वही गति निरन्तर जारी रहे तो भारत एक विकसित राष्ट्र के रूप में जाना जाएगा ।

1.7 शब्दावली (Glossary)

- **सम-शीतोष्ण (Temperate)-** ऐसा जलवायु क्षेत्र जो न तो बहुत गर्म होता है और न ही बहुत ठंडा, बल्कि मध्यम तापमान वाला होता है। यह क्षेत्र आमतौर पर 23.5° और 66.5° अक्षांशों के बीच पाया जाता है।

- **अल्प-विकसित (Underdeveloped)-** ऐसा देश या क्षेत्र जहाँ आर्थिक गतिविधियाँ सीमित हैं, प्रति व्यक्ति आय कम है, औद्योगिक विकास न्यून है और जनसंख्या का बड़ा भाग गरीबी में जीवन यापन करता है।
- **सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product - GDP)-**किसी देश की सीमाओं के भीतर एक निश्चित अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का योग।
- **अर्ध-विकसित अर्थव्यवस्था (Semi-Developed Economy)-** वह अर्थव्यवस्था जो पूर्णतः विकसित नहीं है, परंतु जहाँ औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा, और जीवन स्तर में प्रगति हो रही है; जैसे कुछ क्षेत्र विकसित हैं और कुछ अभी भी पिछड़े हैं।
- **बेरोजगारी (Unemployment)-** कार्य करने की इच्छा और योग्यता रखने वाले व्यक्ति को जब उपयुक्त कार्य प्राप्त न हो, तो वह स्थिति बेरोजगारी कहलाती है।
- **आर्थिक विषमता (Economic Inequality)-** समाज में व्यक्तियों या वर्गों के बीच आय, संपत्ति, संसाधनों, एवं अवसरों के वितरण में असमानता की स्थिति।
- **निर्धनता (Poverty)-** जब व्यक्ति की आय या संसाधन इतने कम होते हैं कि वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं (जैसे भोजन, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा) को पूरा नहीं कर सकता।
- **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)-** किसी देश की कुल आय को उसकी कुल जनसंख्या से भाग देने पर जो औसत आय निकलती है, वही प्रति व्यक्ति आय कहलाती है।

  प्रति व्यक्ति आय = राष्ट्रीय आय ÷ जनसंख्या
- **समाजवादी व्यवस्था (Socialist System)-** एक ऐसी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर समाज (या सरकार) का स्वामित्व होता है और उत्पादन का उद्देश्य निजी लाभ नहीं, बल्कि सामाजिक कल्याण होता है।
- **सतत कृषि (Sustainable Agriculture)-** ऐसी कृषि प्रणाली जो पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन बनाए रखते हुए लम्बे समय तक भूमि की उपजाऊ शक्ति को सुरक्षित रखते हुए उत्पादन करती है, बिना प्राकृतिक संसाधनों को क्षति पहुँचाए।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति (Fill in the blanks):

a) 32.87

b) 121

c) 382

d) 940

2. बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple choice questions):

1. लोहा एवं इस्पात
2. नल
3. तीसरी

4. 10 प्रतिशत

5. 1951 से

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- Singh, Ramesh. (2024). Indian Economy: For Civil Services Examinations (15th Edition). New Delhi: McGraw Hill Education.
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण. शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

1.10 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy: Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics: Private and Public Choice, 6th Ed.

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताओं को निरूपित कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था की कौन-कौन सी नवीन विशेषताएं हैं? उनका संक्षिप्त परिचय भी दीजिए ।
3. भारत की सम्पन्नता में विपन्नता का मिश्रण है । इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से आप क्या समझते हैं? उसकी प्रमुख मदों का संक्षेप में परिचय दीजिए ।

इकाई – 2 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था(National Income and Indian Economy)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 उद्देश्य (Objectives)

2.3 राष्ट्रीय आय की अवधारणा (Concept of national income)

2.4 राष्ट्रीय आय के अनुमान, आकलन की विधि तथा सीमाएं (Estimates of National Income, Method of Estimation and Limitations)

2.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां (National Income Trends in Indian Economy)

2.6 प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय एवं भारतीय अर्थव्यवस्था (Per Capita National Income and Indian Economy)

2.7 राष्ट्रीय उत्पाद का उद्योगवार सृजन (Industry-wise generation of national product)

2.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

2.9 सारांश (Summary)

2.10 शब्दावली (Glossary)

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

2.13 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से क्या तात्पर्य है? इसकी विभिन्न विशेषताएं क्या हैं? राष्ट्रीय आय किसी भी देश के विकास की प्रमुख माप होती हैं। राष्ट्रीय आय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न मत प्रकट किये हैं। प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय आय, इसकी विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना विधियों आदि के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था से इसके सम्बन्ध को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगें।

2.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ राष्ट्रीय आय का आशय एवं महत्व को जान सकेंगें।
- ✓ भारत की राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय का वर्णन कर सकेंगें।
- ✓ भारत की राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियों का वर्णन कर सकेंगें।
- ✓ भारत की राष्ट्रीय आय की धीमी प्रगति के कारणों को जान सकेंगें।
- ✓ आर्थिक सुधारों के दौर में राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में सरकारी नीति को बता सकेंगें।

2.3 राष्ट्रीय आय की अवधारणा (Concept of national income)

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय उसकी आर्थिक स्थिति का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है। एक देश के राष्ट्रीय विकास को राष्ट्रीय आय के माध्यम से ही मापा जाता है। राष्ट्रीय आय के लिए **'राष्ट्रीय लाभांश'** एवं **'राष्ट्रीय उत्पाद'** शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। सरल शब्दों में किसी देश में एक वर्ष में जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाता है; उनका कुल मूल्य ही उस देश की राष्ट्रीय आय है। भारत में राष्ट्रीय आय का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जाता है: प्राचीन दृष्टिकोण, तथा आधुनिक दृष्टिकोण। राष्ट्रीय आय के प्राचीन एवं आधुनिक- दोनों दृष्टिकोंणों को क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

राष्ट्रीय आय: प्राचीन दृष्टिकोण (National Income: Ancient Approach)

प्राचीन दृष्टिकोण में प्रो० मार्शल, प्रो० पीगू तथा प्रो० फिशर के विचारों को सम्मिलित किया जाता है। जहां प्रो० मार्शल एवं प्रो. पीगू ने राष्ट्रीय आय को उत्पादन के आधार पर परिभाषित किया है, वहीं प्रो. फिशर ने

उपभोग के आधार पर। इनकी परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं: **प्रो० मार्शल** के अनुसार- "किसी देश के श्रम और पूंजी अपने प्राकृतिक साधनों पर कार्य करके प्रतिवर्ष भौतिक एवं अभौतिक तथा समस्त प्रकार की सेवाओं का एक निश्चित विशुद्ध योग उत्पन्न करते हैं। यही उस देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय या राष्ट्रीय लाभांश होता है । "

पीगू के विचार से, "राष्ट्रीय लाभांश किसी देश या समाज की भौतिक आय का वह भाग है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित है, जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।" मार्शल तथा पीगू की परिभाषाएं उत्पादन पर आधारित हैं ।

प्रो० फिशर का मानना है, "राष्ट्रीय लाभांश या आय केवल उन्हीं सेवाओं द्वारा निरूपित होती है, जो अन्तिम उपभोक्ता को अपने भौतिक वातावरण से अथवा अपने मानवीय वातावरण से प्राप्त हुई है । इस प्रकार एक पियानो अथवा ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, इस वर्ष की आय का भाग नहीं नहीं है, वरन् वह पूंजी में वृद्धि है। केवल वही सेवाएं जिनके प्रयोग से इस वर्ष मुझे सेवाएं मिलेंगी, आय कहलाएगी।"

इस प्रकार मार्शल तथा पीगू ने राष्ट्रीय लाभांशा में केवल उन्हीं वस्तुओं तथा सेवाओं को सम्मिलित किया है जिनका प्रतिवर्ष उत्पादन किया जाता है, किन्तु फिशर ने केवल उन वस्तुओं व सेवाओं को राष्ट्रीय लाभांश में स्थान दिया है जिनका प्रतिवर्ष उपभोग किया जाता है । उपर्युक्त परिभाषाएं सैद्धान्तिक रूप से गलत नहीं कही जा सकतीं, किन्तु व्यावहारिक रूप से उक्त परिभाषाओं में संकुचित अर्थ का आभास होता है । अतः इन परिभाषाओं को पूर्ण नहीं माना जा सकता ।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा राष्ट्रीय आय की अनेक परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी है जिनमें से मुख्यतः प्रो० साइमन कुजनेट्स, प्रो० कोलिन क्लार्क, तथा भारतीय राष्ट्रीय आय समिति की परिभाषाओं को महत्वपूर्ण माना जाता है । इनकी परिभाषाएं इस प्रकार हैं:

प्रसिद्ध विकासवादी अर्थशास्त्री एवं नोबल पुरस्कार विजेता **प्रो० साइमन कुजनेट्स** के अनुसार, "राष्ट्रीय आय वस्तुओं एवं सेवाओं की उत्पादन प्रणाली के माध्यम से उपभोक्ताओं के हाथ में पहुंचती है । "

प्रो० कोलिन क्लार्क के शब्दों में, "किसी समय विशेष में राष्ट्रीय आय उन वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य द्वारा व्यक्त की जाती है जो समय विशेष में उपभोग के लिए उपलब्ध होती है। इसमें शुद्ध पूंजी वृद्धि का जोड़ना व शुद्ध कमी को घटाना आवश्यक होता है।"

भारतीय राष्ट्रीय आय समिति के अनुसार, "राष्ट्रीय आय के अनुमान के लिए किसी अवधि- विशेष में उत्पन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा को दोहरी गणना किये बिना मापा जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं में मुख्यतः तीन बिन्दुओं को समाहित किया गया है- 1. राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश की विशुद्ध आय से है । 2. राष्ट्रीय आय की माप किसी निश्चित अवधि अर्थात् एक वर्ष के लिए की जाती है । 3. राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत वे सभी प्रकार की वस्तुएं एवं सेवाएं सम्मिलित की जाती हैं जिनका

विनिमय मूल्य होता है, किन्तु यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तु एवं सेवा के मूल्य की गणना केवल एक ही बार की जाए ।

अतः सरलतम रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आय एक देश के निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय को बताती है । यह घरेलू साधन आय एवं विदेशों से अर्जित शुद्ध साधन आय का योग होती है ।

राष्ट्रीय आय = घरेलू साधन आय + विदेशों से अर्जित शुद्ध साधन आय

2.4 राष्ट्रीय आय के अनुमान, आकलन की विधि तथा सीमाएं (Estimates of National Income, Method of Estimation and Limitations)

राष्ट्रीय आय के अनुमान - स्वतन्त्रता से पहले भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के लिए सरकार ने कोई विशेष प्रयास नहीं किया। परन्तु राष्ट्रीय आय समिति (1948-49) द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों के बाद से राष्ट्रीय आय के आकलन का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन को सौंप दिया गया है । यह संगठन अब प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी जिसे श्वेत पत्र भी कहा जाता है, प्रकाशित करता है । इस श्वेत पत्र में राष्ट्रीय आय के विभिन्न पहलुओं के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जाती है ।

राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी अथवा श्वेत-पत्र के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जैसे- 1. प्राथमिक क्षेत्र (कृषि, वानिकी, मछली पालन, व खनन) 2. द्वितीयक क्षेत्र (विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस और जल आपूर्ति) 3. परिवहन, संचार और व्यापार (परिवहन, भण्डारण और संचार, रेलवे, तथा अन्य परिवहन); 4. वित्त और वास्तविक सम्पदा (बैंकिंग तथा बीमा, वास्तविक सम्पदा, भवनों का स्वामित्व तथा व्यावसायिक सेवाएं) 5. सामुदायिक व निजी सेवाएं (सार्वजनिक प्रशासन और सुरक्षा तथा अन्य सेवाएं) 6. विदेशी क्षेत्र । इनमें से अन्तिम विदेशी क्षेत्र को छोड़कर सभी क्षेत्रों में उत्पादित कुल उत्पादन को जोड़ने से साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद (Gross domestic product) प्राप्त होता है । इसमें अन्य देशों से प्राप्त निवल साधन आय को जोड़ने से साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है ।

राष्ट्रीय आय-आकलन की विधि (Method of estimating national income)- भारत में राष्ट्रीय आय का अनुमान एक विधि से लगा पाना सम्भव नहीं है । कृषि, पशुधन, वानिकी, मछली पालन तथा खनन के लिए आय का अनुमान उत्पाद विधि से लगाया जाता है । इस विधि में पहले उत्पादन के कुल मूल्य तथा अन्य सहायक गतिविधियों कुल मूल्य का अनुमान लगाया जाता है और फिर उसमें से आगतों के मूल्य (जिसमें कच्चा माल और सेवाओं का मूल्य शामिल है) तथा उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाली स्थिर परिसम्पत्ति के पूंजी उपभोग के मूल्य को घटा दिया जाता है। क्योंकि सिंचाई से होने वाली आय का अनुमान इस विधि से नहीं लगाया जा सकता, इसलिए सिंचाई सेवाओं से जनित कुल साधन आय का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार प्राथमिक क्षेत्र में जनित राष्ट्रीय आय (जो कि सकल राष्ट्रीय आय का लगभग 22 प्रतिशत है) का अनुमान उत्पाद विधि से लगाया जाता है। जहां तक द्वितीयक क्षेत्र का सम्बन्ध है, सकल घरेलू उत्पाद का अनुमान उत्पाद विधि द्वारा केवल विनिर्माण उद्योगों के लिए लगाया जाता है । निर्माण गतिविधियों में

उत्पाद के मूल्य का अनुमान पक्के निर्माण और कच्चे निर्माण- दोनों के लिए अलग-अलग लगाया जाता है। जहां तक कच्चे निर्माण का सम्बन्ध है इसमें वर्धित मूल्य का अनुमान व्यय विधि द्वारा लगाया जाता है और इस उद्देश्य के लिए सेंपिल सर्वेक्षणों तथा बजट दस्तावेजों का सहारा लिया जाता है। पक्के निर्माण के लिए 'वस्तु प्रवाह विधि' का प्रयोग किया जाता है । अन्य क्षेत्रों में वर्धित मूल्य का अनुमान लगाने के लिए 'आय वितरण विधि ' का प्रयोग किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए कर्मचारियों को मजदूरी व वेतन इत्यादि के रूप में दी गयी आय तथा प्रचालन अधिशेष (ऑपरेटिंग सरप्लस) के रूप में प्रदान की गई समग्र साधन आय का अनुमान लगाया जाता है (प्रचालन अधिशेष में ब्याज, किराया, लाभ या लाभांश शामिल रहते हैं ।)

हालांकि राष्ट्रीय आय के अनुमान में प्रयोग होने वाले आंकड़ों में समय के साथ सुधार हुआ है, फिर भी, इसे संतोषजनक नहीं माना जा सकता । कृषि उत्पादन के आंकड़े प्राप्त करने के लिए मुख्य फसलों के उत्पादन व बोए गये क्षेत्र के आंकड़ों का प्रयोग किया जाता है और यह आंकड़े राज्य सरकार एजेंसियों के 'फसल अनुमान सर्वेक्षणों' पर आधारित होते हैं । कृषि उत्पादनों का मूल्य ज्ञात करने के लिए फसलवार औसत थोक कीमतों को लिया जाता है । पशुधन से सम्बन्धित आंकड़ों की जानकारी पांच वर्षों के अन्तराल के बाद प्रकाशित होने वाले इंडियन लाइवस्टॉक सेंससेज में उपलब्ध होती है। वनों के उत्पादन के लिए आंकड़ों का मुख्य स्रोत फॉरेस्ट्री इन इण्डिया है जो भारत सरकार का कृषि मंत्रालय हर वर्ष प्रकाशित करता है । खनिज उत्पादन के आंकड़े इण्डियन ब्यूरो ऑफ माइंस के प्रकाशनों से प्राप्त किये जाते हैं । इन मुख्य स्रोतों के अतिरिक्त, आंकड़ों के अन्य स्रोत भी हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक क्षेत्र में राष्ट्रीय आय का आकलन करने हेतु देश में काफी विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध है । पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र (Registered manufacturing sector) में उत्पादन का अनुमान उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षणों में उपलब्ध है गैर-पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र (Non-registered manufacturing sector) के लिए जिसमें लघु पैमाने के उद्योग तथा कुटीर उद्योग शामिल हैं, राष्ट्रीय सेंपिल सर्वेक्षण में उपलब्ध जानकारी का प्रयोग किया जाता है । इन सर्वेक्षणों से लघु उद्योगों के लिए पूंजी निवेश, उत्पादन, आगत व वर्धित मूल्य के आंकड़े प्राप्त होते हैं । अन्य क्षेत्रों के लिए विभिन्न सरकारी प्रकाशनों, विभागीय रिकार्डों, बजट दस्तावेजों तथा वित्तीय संस्थाओं (जैसे- रिजर्व बैंक) के प्रकाशनों में उपलब्ध जानकारी का प्रयोग किया जाता है।

सीमाएं (Limitations) - राष्ट्रीय आय समिति के अनुसार, 'राष्ट्रीय आय अनुमान देश की आर्थिक क्रिया तथा देश की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों की क्रिया का शाब्दिक वर्णन करने के बजाय परिमाणात्मक मापदण्ड निर्मित करता है ।" इस प्रकार राष्ट्रीय आय का आकलन करते समय लाखों आर्थिक मात्राओं का योग करना पड़ता है। इस उद्देश्य के लिए किसी समाज की परम्परा और पद्धति पर आधारित कुछ मूलभूत निर्णयों और सामाजिक कसौटियों को ध्यान में रखना पड़ता है ।

राष्ट्रीय आय का आकलन किसी भी देश की आर्थिक प्रगति और जीवन स्तर को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है, लेकिन इसके आकलन में कई व्यावहारिक और तकनीकी सीमाएँ होती हैं। प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं:

1. असंगठित क्षेत्र से संबंधित कठिनाइयाँ (Difficulties related to the unorganised sector)- भारत जैसे विकासशील देशों में बड़ी संख्या में लोग असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector) में कार्य करते हैं।

ऐसे क्षेत्र में आय का कोई स्पष्ट रिकॉर्ड नहीं होता। मजदूरी, उत्पादन और सेवाओं का मूल्य निर्धारण कठिन होता है। इनकी आय का सही-सही अनुमान लगाना मुश्किल होता है।

2. गैर-बाजार लेन-देन का समावेश नहीं (Exclusion of non-market transactions)- घरेलू कार्य जैसे – महिलाओं द्वारा घर में किया गया काम, स्वयंसेवी सेवाएँ आदि का कोई आर्थिक मूल्य नहीं जोड़ा जाता, जबकि ये समाज में योगदान करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वस्तु-विनिमय प्रणाली या आत्म-उपभोग वाली खेती के आँकड़े सही रूप से नहीं आ पाते।

3. दोहराव का खतरा (Double Counting)- एक ही उत्पाद को विभिन्न चरणों में गिनने से कुल उत्पादन में दोहराव हो सकता है। यदि सावधानी न बरती जाए, तो एक ही वस्तु का मूल्य एक से अधिक बार जोड़ा जा सकता है।

4. छाया अर्थव्यवस्था (Black Economy) - कर चोरी, अवैध व्यापार, रिश्वत आदि जैसे अवैध लेन-देन का कोई सरकारी रिकॉर्ड नहीं होता। यह अर्थव्यवस्था GDP में शामिल नहीं होती, जिससे राष्ट्रीय आय का वास्तविक अनुमान संभव नहीं हो पाता।

5. कीमतों में परिवर्तन का प्रभाव (Effect of changes in prices)- यदि राष्ट्रीय आय का आकलन मात्रात्मक नहीं बल्कि मौद्रिक रूप में किया जाए, तो मुद्रास्फीति या मूल्य वृद्धि के कारण वास्तविक विकास को मापना कठिन हो जाता है। इसलिए, स्थिर कीमतों (constant prices) पर आकलन आवश्यक होता है, जो कई बार उपलब्ध नहीं होता।

6. गुणवत्ता और कल्याण की उपेक्षा (Negligence of quality and welfare)-राष्ट्रीय आय मात्र वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा मापता है, न कि उनके गुणवत्ता या लोगों के कल्याण को। उदाहरण: एक देश में युद्ध के कारण हथियारों का उत्पादन बढ़ सकता है, जिससे GDP बढ़ती है, परंतु यह कल्याण नहीं दर्शाता।

7. सांख्यिकीय डेटा की कमी (Lack of statistical data)- विकासशील देशों में जनगणना, सर्वेक्षण और आर्थिक डेटा संग्रहण की प्रक्रिया कमजोर होती है। विश्वसनीय और अद्यतन आँकड़ों का अभाव राष्ट्रीय आय के सही आकलन में बाधा बनता है। फसलों के अधीन क्षेत्रफल के आंकड़े अब देश के 80 प्रतिशत क्षेत्रफल के लिए उपलब्ध हैं जबकि 1948-49 में केवल 47 प्रतिशत क्षेत्र के लिए उपलब्ध थे। फसल-अधीन क्षेत्र के आंकड़ों में गिरावट आयी है और ऐसा विशेषकर तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और बिहार में हुआ है । इसके अतिरिक्त सेवा क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य क्षेत्र, सफाई-सेवाओं आदि में मूल्यवृद्धि के बारे में बहुत अधिक अल्पानुमान लगाया जाता है जिसको ठीक करना आवश्यक है । अध्यापकों, डाक्टरों, वकीलों, चार्टर्ड अकाउंटेंटों द्वारा अपनी आय या कमाई व्यक्त ही नहीं की जाती। अतः स्पष्ट है कि आयोजन के 6 दशकों के बाद भी आंकड़े रिपोर्ट करने की तकनीक ऐसी नहीं बन सकी है जिससे थोड़े समय के अन्तर के बाद आंकड़े प्राप्त किये जा सकें। इस दृष्टि से भारत में सांख्यिकी अल्पविकसित स्थिति में है ।

8. प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण की अनदेखी (Ignoring the degradation of natural resources)- पर्यावरणीय क्षति, जैसे- वनों की कटाई, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि को राष्ट्रीय आय से घटाया नहीं जाता। इससे 'हरित राष्ट्रीय आय' (Green National Income) का सही चित्र नहीं मिल पाता।

9. निर्वाह खेती और राष्ट्रीय आय मापन की कठिनाइयाँ (Subsistence farming and the difficulties of national income measurement)

राष्ट्रीय उत्पाद मापते समय साधारणतया यह मान लिया जाता है कि उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मुद्रा से विनिमय होता है । भारत जैसे विकासशील देश में जहां 'निर्वाह खेती' की जाती है; उपज का काफी भाग विक्रय के लिए बाजार में नहीं आ पाता। इस भाग को या तो उत्पादक उपभोग के लिए रख लेते हैं या अन्य वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय में उसे दूसरे उत्पादकों को दे देते हैं । कृषि उत्पाद के इस अंश की उपेक्षा कर देने पर राष्ट्रीय उत्पाद में काफी कमी हो जाएगी। तात्पर्य यह कि भारत के सम्बन्ध में एक विशेष कठिनाई अमुद्रीकृत क्षेत्र के उत्पादन का अभ्यारोपित मूल्य तय करके उसे मुद्रीकृत क्षेत्र के मूल्य में जोड़ना है।

10. छोटे उत्पादकों या घरेलू उद्योगों की आय के सम्बन्ध में सामग्री उपलब्ध न होना (Lack of data available regarding income of small producers or household industries)- भारत में एक सीमा यह है कि यहां बहुत बड़ी संख्या में उत्पादक परिवार स्तर पर उत्पादन करते हैं या बहुत छोटे पैमाने पर घरेलू उद्योग चलाते हैं। इन छोटे उत्पादकों में से अधिकांश इतने अशिक्षित होते हैं कि वे या तो लेखा रखना जानते ही नहीं यया नियमित लेखा रखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं करते 3. आर्थिक कार्य-पद्धति में विभिन्नता का अभाव भारत में उद्योगों के अनुसार राष्ट्रीय आय के आंकड़े संकलित करने की रीति प्रचलित है । इस प्रकार यहआवश्यक है कि उत्पादकों को विभिन्न व्यवसाय - वर्गों में रखा जाय। उदाहरण के लिए, एक कृषि श्रमिक वर्ष का कुछ समय खेती में, कुछ उद्योग में और कुछ तांगा चलाने में लगा सकता है । ऐसी स्थिति में उसकी आय को विभिन्न व्यवसायों में बांटना कठिन होगा ।

11. आय - वितरण सम्बन्धी आंकड़ों का अभाव (Lack of data on income distribution.) - राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी में परिवारों या व्यक्तियों के आय-वितरण सम्बन्धी आंकड़े एकत्र नहीं किये जाते । इस उद्देश्य से, पारिवारिक आय या अन्य सम्बन्धित चरों के बारे में पूछताछ करने की अपेक्षा, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्था ने उपभोक्ता-व्यय के आंकड़ों का प्रयोग किया है। इन सर्वेक्षणों के नमूने का आकार छोटा होने के कारण आलोचना भी हुई है और प्रत्यक्ष पूछताछ के आधार पर पाया गया कि प्रायोगिक सर्वेक्षणों के आंकड़े प्रत्यक्ष जांच के आंकड़ों से 30-40 प्रतिशत कम थे। परन्तु आय - वितरण सम्बन्धी आंकड़ों को एकत्र करने की सख्त आवश्यकता है ताकि विकास प्रक्रिया के निम्न आय परिवारों पर प्रसार प्रभाव का उचित रूप में विश्लेषित किया जा सके ।

2.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां (National Income Trends in Indian Economy)

केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने 1999-2000 की कीमतों पर 1950-51 2006-07 तक के लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़े उपलब्ध कराए थे। इस संगठन द्वारा तैयार की गयी इस अंकमाला के अनुसार, भारत की राष्ट्रीय आय (साधन लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद) 1950-51 में (1999- 2000 की कीमतों पर) 204924 करोड़ रुपये थी। तब से 56 वर्षों में इनमें 4.6 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई और यह 2006-07 में 2530494 करोड़ रुपये हो गयी।

2008-09 के वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान देश की आर्थिक वृद्धि कुछ धीमी पड़ी, लेकिन फिर भी NNP में वृद्धि की गति पूर्णतः रुकी नहीं। इसके बाद 2011-12 को नया आधार वर्ष बनाकर राष्ट्रीय आय की गणना की गई, और इस आधार पर 2011-12 में NNP 74.3 लाख करोड़ (7.43 लाख करोड़ अरब में) रहा। 2012-13 से 2016-17 के बीच यह आंकड़ा क्रमशः बढ़ता हुआ 118.9 लाख करोड़ तक पहुँच गया। इस अवधि में भारत की आर्थिक नीतियाँ उदारीकरण, औद्योगिकीकरण और सेवा क्षेत्र के विकास पर केंद्रित रहीं, जिससे NNP में ठोस वृद्धि हुई।

2020-21 में कोविड-19 महामारी के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को झटका लगा, जिससे NNP और प्रति व्यक्ति आय दोनों में गिरावट देखी गई। इस वर्ष प्रति व्यक्ति निवल राष्ट्रीय आय 1,27,065 रह गई जो पूर्ववर्ष से कम थी। हालांकि, इसके बाद के वर्षों में पुनरुद्धार देखा गया। 2021-22 में NNP में वृद्धि हुई और 2022-23 तक प्रति व्यक्ति आय 1,69,496 तक पहुंच गई। वर्ष 2023-24 में यह आँकड़ा 1,84,205 तक पहुँच गया, जो दर्शाता है कि भारत की अर्थव्यवस्था ने कोविड के प्रभावों से उबरते हुए तेज़ गति से पुनरुद्धार किया है।

इस दीर्घकालिक अवधि (2006–2024) में साधन लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद की निरंतर वृद्धि यह संकेत देती है कि भारत की उत्पादन क्षमता, श्रम उत्पादकता, और सेवा तथा औद्योगिक क्षेत्रों का योगदान लगातार बढ़ा है। इसके अतिरिक्त, डिजिटलीकरण, स्टार्टअप इकोसिस्टम, और बुनियादी ढांचे में निवेश जैसे घटकों ने भी राष्ट्रीय आय को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाने में सहयोग किया है।

अतः अब तक भारत का NNP न केवल मात्रात्मक रूप से बढ़ा है, बल्कि उसकी गुणवत्ता भी बेहतर हुई है,जो एक विकासशील से उभरती अर्थव्यवस्था की दिशा में भारत की स्थिर प्रगति को दर्शाता है।

2.6 प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय एवं भारतीय अर्थव्यवस्था (Per Capita National Income and Indian Economy)

भारत की आज़ादी के बाद 1950-51 से लेकर वर्तमान समय तक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (Per Capita Net National Income) में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। यह वृद्धि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना, योजनागत विकास, आर्थिक उदारीकरण, तकनीकी प्रगति, और सेवाक्षेत्र के विस्तार जैसी विभिन्न घटनाओं एवं नीतियों का परिणाम है।1950-51 में भारत की प्रति व्यक्ति आय मात्र 265 रूपये (वर्तमान मूल्यों पर) थी, जो उस समय की निम्न उत्पादकता, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, सीमित औद्योगिक आधार, और कमजोर बुनियादी ढांचे को दर्शाती थी। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सरकार ने नियोजित विकास की राह अपनाई, जिससे कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्रों में क्रमशः सुधार होने लगा। 1960 और 1970 के दशक में हरित क्रांति, राष्ट्रीयकरण, और आयात प्रतिस्थापन जैसी नीतियों ने अर्थव्यवस्था को नया रूप देना प्रारंभ किया, परंतु जनसंख्या वृद्धि के दबाव और संरचनात्मक समस्याओं के कारण प्रति व्यक्ति आय में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो सकी। 1980 के दशक में आर्थिक वृद्धि दर कुछ हद तक बढ़ी, लेकिन 1991 का

आर्थिक सुधार भारत के लिए एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। 1991 में भारत ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) की नीतियाँ अपनाईं, जिसके पश्चात सेवाक्षेत्र में तीव्र वृद्धि, विदेशी निवेश, सूचना प्रौद्योगिकी का प्रसार, और व्यापारिक अवसरों के विस्तार ने भारत की आर्थिक तस्वीर को बदल दिया। परिणामस्वरूप, प्रति व्यक्ति आय में निरंतर और तेज़ी से वृद्धि होने लगी।

2022-23 में प्रति व्यक्ति निवल राष्ट्रीय आय (चल मूल्य पर) रूपये 1,72,276 रही जबकि स्थिर मूल्यों (2011-12) पर यह रूपये 98,374 थी। 2023-24 में यह बढ़कर क्रमशः रूपये 1,86,768 (चल मूल्य) और रूपये 1,05,625 (स्थिर मूल्य) तक पहुँच गई। यह वृद्धि न केवल आर्थिक विकास को दर्शाती है बल्कि जीवन स्तर, उपभोग क्षमता, और मानव विकास संकेतकों में भी सुधार को इंगित करती है।

हालाँकि, यह भी सत्य है कि देश में क्षेत्रीय विषमता, ग्रामीण-शहरी अंतर, बेरोजगारी, और असमान आय वितरण जैसी समस्याएँ अब भी मौजूद हैं, जो प्रति व्यक्ति आय के औसत मूल्य को कुछ हद तक भ्रामक बनाती हैं। फिर भी, भारत की अर्थव्यवस्था आज वैश्विक मंच पर उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में अग्रणी है और आने वाले वर्षों में प्रति व्यक्ति आय में और भी तेजी से वृद्धि की संभावना है।इस प्रकार, 1950-51 से वर्तमान तक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि, भारत की आर्थिक विकास यात्रा की जीवंत कहानी कहती है।

2.7 राष्ट्रीय उत्पाद का उद्योगवार सृजन (Industry-wise generation of national product)

देश में विभिन्न क्षेत्रों (प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र तथा तृतीयक क्षेत्र) में राष्ट्रीय उत्पाद के कितने अंश का सृजन होता है, यह विकास के दृष्टिकोण से तथा आर्थिक संरचना को जानने के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

प्राथमिक क्षेत्र (Primary sector) - भारत में सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र कृषि का है जो कि प्राथमिक क्षेत्र की श्रेणी में आता है। 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में निवल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 75 प्रतिशत था जो कम होते-होते स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय लगभग 60 प्रतिशत रह गया। उसके बाद प्राथमिक क्षेत्र (जिसमें सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा कृषि का है) का निवल घरेलू उत्पाद में हिस्सा कम हुआ है। 1960-61 में यह 56.6 प्रतिशत था जो कम होते-होते 2006-07 में 21.3 प्रतिशत रह गया। प्राथमिक क्षेत्र में कृषि के अलावा वानिकी, लकड़ी काटना, मछली पालन और खनन आते हैं। जहां मछली पालन का निवल घरेलू उत्पाद में भाग लगभग 1.0 प्रतिशत रहा है, वहां वानिकी और लकड़ी काटने का भाग 1.2 प्रतिशत के आसपास रहा है। जहां तक खनन के भाग का प्रश्न है, यह 1960-61 में 0.9 प्रतिशत था जो 2006-07 में बढ़कर 1.8 प्रतिशत हो गया। कहने का तात्पर्य यह कि आजादी के उपरान्त प्राथमिक क्षेत्र के निवल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई है ।

द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)- इस क्षेत्र के अन्तर्गत विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस और जल की आपूर्ति शामिल की जाती है । विनिर्माण क्षेत्र में पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र तथा अपंजीकृत लघु एवं

कुटीर उद्योग आते हैं। इनमें से पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र में तो काफी प्रगति हुई है, परन्तु लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रगति अपेक्षाकृत धीमी रही है। पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र में निवल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा 1960-61 में 6.9 प्रतिशत था जो 1991-92 में बढ़कर 12.0 प्रतिशत हो गया। परन्तु 1990 के दशक में पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से में कमी आई और 2006- 07 में निवल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा कम होकर 8.6 प्रतिशत रह गया। यद्यपि स्वतन्त्र रूप में देखने पर देश की अर्थव्यवस्था में पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति संतोषजनक लगती है, तथापि लक्ष्यों की तुलना में यह काफी कम है । लघु एवं कुटीर उद्योगों के सापेक्षिक हिस्से में कमी आई है, परन्तु निरपेक्ष उत्पादन बढ़ा है। ऐसा लघु व कुटीर उद्योगों की अपर्याप्त संवृद्धि के कारण हुआ है। 1960-61 में इन उद्योगों का निवल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 5.1 प्रतिशत था जो 1970-71 तक स्थिर रहा। 1970 से 1980 के दशकों में लघु व कुटीर उद्योगों पर ज्यादा ध्यान दिया गया, क्योंकि उनमें रोजगार सृजन की अधिक क्षमता थी। परन्तु उदारीकरण की अवधि में इन उद्योगों के विकास को झटका लगा और निवल उत्पाद में इनका हिस्सा जो 1991-92 में 7.7 प्रतिशत तक पहुंच चुका था, 2006-07 में कम होकर मात्र 4.5 प्रतिशत रह गया ।

तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)- स्वतन्त्रता के बाद के काल में निवल घरेलू उत्पाद में व्यापार तथा परिवहन का हिस्सा पहले तीन दशकों में 13.5 प्रतिशत से 16.5 प्रतिशत के बीच था। पिछले तीन दशकों में निवल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र के हिस्से में वृद्धि हुई है । यह हिस्सा 1981-82 में 16.5 प्रतिशत था जो 2006-07 में बढ़कर 28.0 प्रतिशत हो गया। गत तीन दशकों में यद्यपि इस क्षेत्र में शामिल सभी वर्गों का हिस्सा बढ़ा है तथापि रेलवे व अन्य साधनों से परिवहन तथा भण्डारण की तुलना में व्यापार, होटल एवं रेस्त्रां में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक रही है । व्यापार का निवल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 1960-91 में 9.7 प्रतिशत था जो 2006-07 में 16.9 प्रतिशत हो गया था। देश के विकास के साथ- साथ बैंकिंग व बीमा का विकास भी अनिवार्य है । इसलिए यह कोई आश्चर्य नहीं कि निवल उत्पाद में इन गतिविधियों का हिस्सा 1960-61 में 1.3 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 7.3 प्रतिशत हो गया। पिछले 6 दशकों में सेवाक्षेत्र का निवल राष्ट्रीय उत्पाद में हिस्सा 9.0 प्रतिशत से 14.7 प्रतिशत के बीच रहा है। इसमें सार्वजनिक प्रशासन, प्रतिरक्षा तथा अन्य सेवाएं शामिल हैं। पिछले 35 वर्षों में अन्य सेवाओं का हिस्सा 4.4 प्रतिशत से 8.8 प्रतिशत के बीच रहा है। सार्वजनिक प्रशासन और प्रतिरक्षा के हिस्से में वृद्धि हुई है। यह 1960-61 में 3.2 प्रतिशत था जो 2006-07 में बढ़कर 5.5 प्रतिशत हो गया था । 1951 से 2007 के बीच के लगभग साढ़े पांच दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इस अवधि में प्राथमिक क्षेत्र तथा उसके प्रमुख अवयव (कृषि) का महत्व कम हुआ है तथा द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रों का महत्व बढ़ा है। आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में यह प्रगतिशील परिवर्तन है ।

2.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. इनमें से क्या प्राथमिक क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं है?

a) वानिकी
b) मछली पालन
c) कृषि
d) बैंकिंग

2. प्रति व्यक्ति आय सबसे अधिक है:

a) चीन की
b) भारत की
c) अमेरिका की
d) मलेशिया की

3. राष्ट्रीय आय किसी समाज की वह वास्तविक आय है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल होती है।" इस विचार के प्रतिपादक हैं:

a) प्रो० मार्शल
b) पीगू
c) ग. फिशर
d) घ. प्रो० साइमन कुजनेट्स

4. सकल घरेलू उत्पाद को कहा जाता है

a) डीजीपी
b) एनएनपी
c) जीएनपी
d) जीडीपी

रिक्त स्थान पूर्ति (Fill in the Blanks)

1. भारत में राष्ट्रीय आय का सर्वप्रथम आकलन वर्ष………………..में दादाभाई नौरोजी द्वारा किया गया था।

2. राष्ट्रीय आय की आधुनिक गणना का कार्य भारत में ……………….. द्वारा किया जाता है।

3. वर्तमान में भारत की राष्ट्रीय आय की गणना ……………….. पद्धति पर आधारित होती है।

4. भारतीय अर्थव्यवस्था को तीन प्रमुख क्षेत्रों में बाँटा गया है- कृषि, उद्योग और ………………..।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. आजादी के बाद कृषि एवं उद्योग में से किस क्षेत्र में अधिक प्रगति हुई है ?

2. कृषि कार्य करने वाले को क्या कहा जाता है ?

3. बैंकिंग किस क्षेत्र से सम्बन्धित है ?

4. संचार सेवाओं में किस कार्य की गणना की जाती है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. राष्ट्रीय आय की कोई एक परिभाषा लिखिए।
2. तृतीयक क्षेत्र में सम्मिलित किये जाने वाले उप-क्षेत्रों के नाम दर्शाइए।
3. प्रति व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिए।
4. राष्ट्रीय आय का आकलन करने हेतु कौनसी विधियों को प्रयोग में लाया जाता है *?*

2.9 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि एक राष्ट्र का एक वर्ष का कुल वास्तविक उत्पादन, चाहे वह वस्तुओं के रूप में हुआ हो अथवा सेवाओं के रूप में; उस राष्ट्र की राष्ट्रीय आय होती है। राष्ट्रीय आय को निर्धारित करने में दो तत्वों की भूमिका मुख्य रूप से स्वीकार की जाती है- 1. कुल राष्ट्रीय उत्पादन, और 2. शुद्ध या निबल राष्ट्रीय उत्पादन। भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय वृद्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किन्तु इस वृद्धि से भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आया है। राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान निरन्तर कम होते जाने के बाद देश की अर्थव्यवस्था में आज भी कृषि को प्रमुखता प्राप्त है। उद्योगों, खदानों व द्वितीय क्षेत्र के अन्य हिस्सों का स्थान आज भी कृषि के बाद ही आता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय आय में द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्र के योगदान को और अधिक बढ़ाने के लिए इन क्षेत्रों में अधिक पूंजी का निवेश किया जाय, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध सभी क्षेत्रों का विकास सन्तुलित रूप से हो सके और देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति कर सके।

2.10 शब्दावली (Glossary)

- **प्राथमिक क्षेत्र (Primary sector) -** भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रथम वरीयता प्राप्त क्षेत्र को प्राथमिक क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत 1. कृषि, 2. वानिकी, 3. मछली पालन, तथा 4. खनन को सम्मिलित किया जाता है।
- **द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)-** भारतीय अर्थव्यवस्था में द्वितीय प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को द्वितीयक क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है। इस क्षेत्र में 5 विनिर्माण (पंजीकृत, व अपंजीकृत), 6. निर्माण, 7. बिजली, गैस तथा जल आपूर्ति को रखा जाता है।

- **तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)-**उपरोक्त दो क्षेत्रों (प्राथमिक तथा द्वितीयक) के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को तृतीयक क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किया जाता है, यथा- 8. परिवहन, भण्डारण और संचार; 9. व्यापार, होटल और रेस्टोरेंट; 10. बैंकिंग तथा बीमा; 11. वास्तविक सम्पदा, भवनों का स्वामित्व तथा व्यावसायिक सेवाएं: 12. सार्वजनिक प्रशासन और सुरक्षा; 13. अन्य सेवाएं तथा 14. विदेशी क्षेत्र।
- **राष्ट्रीय आय(National Income):** किसी देश के सभी नागरिकों द्वारा एक निश्चित अवधि में उत्पादित कुल वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का योग।
- **असंगठित क्षेत्र(Unorganized sector):** ऐसा आर्थिक क्षेत्र जिसमें कार्य स्थल छोटे, पंजीकरण रहित होते हैं और श्रमिकों को नियमित वेतन, सुरक्षा या सामाजिक लाभ नहीं मिलते।

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple choice questions)-

1. बैंकिंग:

2. अमेरिका ;

3. पीगू;

4. जीडीपी

रिक्त स्थान पूर्ति (Fill in the Blanks)

1. 1868

2. राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO)

3. सकल मूल्य वर्धन (Gross Value Added - GVA)

4. सेवा क्षेत्र

अति लघु उत्तरीय प्रश्न (Very Short Answer Type Questions)-

1. उद्योग; 2. किसान; 3. तृतीयक क्षेत्र; 4. टेलीफोन, डाक आदि

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.

- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

2.13 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिए। भारत में राष्ट्रीय आय के मापन की विभिन्न पद्धतियों की व्याख्या कीजिए तथा उनके बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

2. भारत में राष्ट्रीय आय के आकलन में आने वाली प्रमुख कठिनाइयों का वर्णन कीजिए। विशेष रूप से अमुद्रीकृत क्षेत्र और निर्वाह कृषि से उत्पन्न समस्याओं पर चर्चा कीजिए।

3. राष्ट्रीय आय के घटकों (जैसे- निजी उपभोग व्यय, सरकारी व्यय, निवेश, निर्यात-आयात) का विवरण दीजिए तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में इनके योगदान का विश्लेषण कीजिए।

4. भारत की आर्थिक विकास प्रक्रिया में राष्ट्रीय आय की भूमिका पर प्रकाश डालिए। साथ ही यह भी स्पष्ट कीजिए कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि किन कारकों पर निर्भर करती है।

इकाई - 3 जनसंख्या, मानवीय संसाधन (Population, Human Resources)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 उद्देश्य (Objectives)

3.3 जनसंख्या एवं मानवीय संसाधन: अर्थ (Population and Human Resources: Meaning)

3. 4 भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधन का महत्व (Importance of Human Resource in Indian Economy)

3.5 भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियां (Demographic Trends in India)

3.5.1 जनसंख्या संवृद्धि की दर (Rate of Population Growth)

3.5.2 जन्म-दर एवं मृत्यु-दर (Birth Rate and Death Rate)

3.6 जनसंख्या की संरचना (Population Structure)

3.6.1 जनसंख्या घनत्व (Population Density)

3.6.2 ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या (Rural and Urban Population)

3.6.3 लिंगानुपात (Sex Ratio)

3.6.4 जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण (Occupational Classification of the Population)

3.6.5 साक्षरता प्रतिशत (Literacy Percentage)

3.6.6 विश्व के सापेक्ष भारतीय जनसंख्या - अनुपात (Indian Population Relative to the World – Ratio)

3.7 जनसंख्या वृद्धि के कारण (Causes of Population Growth)

3.8 तीव्र जनसंख्या वृद्धि के भारतीय अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव (Harmful Effects of Rapid Population Growth on Indian Economy)

3.9 जनसंख्या को नियन्त्रित करने हेतु सरकारी नीति, 2000 (Government policy for population control, 2000)

3.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

3.11 सारांश (Summary)

3.12 शब्दावली (Glossary)

3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

3.15 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

3.16 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि राष्ट्रीय आय क्या है? इसकी गणना कैसे की जाती है? एवं, भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का क्या महत्व है?

देश में मानवीय संसाधन अर्थात् उपलब्ध जनसंख्या उस देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक विकास का प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में भारत की जनसंख्या की प्रवृत्तियों, प्रमुख लक्षणों, जनाधिक्य की समस्या / उपाय तथा जनसंख्या का आर्थिक विकास से सम्बन्ध, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों, इसकी समस्याओं, भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में जनसंख्या के महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप निम्न जानकारियां प्राप्त कर सकेंगें-

- ✓ जनसंख्या एवं मानवीय संसाधन के आशय का आशय समझ सकेंगें।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधनों का महत्व जान सकेंगें।
- ✓ भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियों के बारे में परिचित हो सकेंगें।
- ✓ जनसंख्या घनत्व, लिंगानुपात, ग्रामीण व शहरी जनसंख्या की स्थिति, साक्षरता की स्थिति जैसे तथ्यों को समझ सकेंगें।
- ✓ जनसंख्या वृद्धि के कारणों तथा उसके विभिन्न प्रभावों को जान सकेंगें, तथा इसे नियन्त्रित करने हेतु सरकारी नीति का अवलोकन करने में समर्थ हो सकेंगें।

3.3 जनसंख्या एवं मानवीय संसाधन: अर्थ (Population and Human Resources: Meaning)

सामान्यतः जनसंख्या शब्द का निर्माण 'जन' तथा 'संख्या'- इन दो शब्दों के मेल से हुआ है। जन शब्द का अर्थ होता है मनुष्य, लोग अथवा व्यक्ति, जबकि संख्या का अर्थ है गणना अथवा गिनती करना। इस आधार

पर जनसंख्या का अर्थ हुआ व्यक्ति अथवा लोगों की गिनती का योग । एक देश की जनसंख्या का आशय है उस देश में निवास करने वाले लोगों (जिसमें सभी आयु के स्त्री व पुरुष सम्मिलित होते हैं) का कुल योग। विशेष अर्थ में जनसंख्या किसी भी क्षेत्र - विशेष में बसे लोगों की कुल संख्या, अर्थात् किसी क्षेत्रीय इकाई में निवास करने वाले समस्त निवासियों को सूचित करती है । इसमें केवल जीवित प्राणी ही शामिल किये जाते हैं । मानवीय संसाधन शब्द मानव एवं संसाधन के योग से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ होता है मानवीय सम्पत्ति। 'मानव संसाधन' का तात्पर्य देश विशेष की जनसंख्या, उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता एवं उत्पादन से है । अर्थात् मानवीय संसाधन की गणना करते समय न केवल वहां रहने वालों की संख्या वरन् उनके गुणों पर भी विचार करना होता है । मानवीय संसाधन का विकास उस प्रक्रिया को सूचित करता है जिसमें समाज के व्यक्तियों के ज्ञान, कौशल एवं उत्पादकता में वृद्धि हुआ करती है । सरल शब्दों में मानवीय संसाधन, मानवीय पूंजी का ऐसा संचय है जिसको अर्थव्यवस्था का विकास करने में प्रभावी रूप से विनियोग किया जा सकता है । बाह्य दृष्टि से देखने पर जनसंख्या और मानव संसाधन दो भिन्न-भिन्न शब्द-युग्म प्रतीत होते हैं । परन्तु वास्तव में ये दोनों एक-दूसरे के अत्यधिक निकट हैं । एक तथ्य यह भी है कि जनसंख्या के अभाव में मानव संसाधन की कल्पना सार्थक नहीं हो सकती, जबकि मानवीय संसाधन के अभाव में जनसंख्या का अस्तित्व सम्भव है । क्योंकि जनसंख्या का अर्थ सीमित है, जबकि मानवीय संसाधन का अर्थ तुलनात्मक दृष्टि से अधिक व्यापक । उदाहरण के लिए, एक जंगली और असभ्य द्वीप पर निवास करने वाले लोगों में जनसंख्या शब्द पूर्णतः सार्थक हो सकता है, किन्तु मानवीय संसाधन उस समुदाय से बहुत दूर हो; ऐसा भी सम्भव है । मानवीय संसाधन में जहां शिक्षा, कार्यकौशल, दूरदर्शिता एवं उत्पादकता जैसे पक्षों का होना अनिवार्य है, वहीं जनसंख्या के लिए इन बिन्दुओं का होना अनिवार्य नहीं है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसंख्या और मानवीय संसाधन एक-दूसरे के निकट होते हुए भी पर्याप्त भिन्नता रखते हैं। पर्याप्त तकनीकी भिन्नता होते हुए भी, व्यावहारिक रूप में जनसंख्या तथा मानवीय संसाधन को एक ही रूप में देखा जाता है ।

3. 4 भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधन का महत्व (Importance of Human Resource in Indian Economy)

भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधन (Human Resource) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह देश की आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी प्रगति का मूल आधार होता है। प्राकृतिक संसाधनों और पूंजीगत साधनों के साथ-साथ मानव संसाधन ही वह तत्व है जो विकास की गति को दिशा और गत्यात्मकता प्रदान करता है।

1. उत्पादन क्षमता में वृद्धि (Increase in production capacity)-मानवीय संसाधन उत्पादकता और दक्षता का प्रमुख स्रोत होता है। कुशल, शिक्षित और स्वस्थ मानव श्रम देश के उद्योगों, सेवाओं और कृषि क्षेत्रों में कार्य कुशलता को बढ़ाकर आर्थिक विकास को तीव्र करता है।

2. जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Dividend)-भारत में बड़ी युवा आबादी है, जिसे यदि सही शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार उपलब्ध कराया जाए, तो यह जनसांख्यिकीय लाभांश में परिवर्तित होकर आर्थिक वृद्धि में सहायक बन सकता है। यह लाभांश देश को प्रतिस्पर्धात्मक वैश्विक स्थान दिलाने में मदद करता है।

3. उद्यमिता और नवाचार (Entrepreneurship and innovation)-उन्नत मानवीय संसाधन नवाचार, अनुसंधान और उद्यमिता को प्रोत्साहित करता है। भारत में स्टार्टअप संस्कृति, डिजिटल क्रांति और तकनीकी विकास मानव संसाधन की सृजनात्मकता और कार्यक्षमता के उदाहरण हैं।

4. गरीबी और असमानता उन्मूलन (Poverty and inequality alleviation)-यदि मानव संसाधन को शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास के माध्यम से सशक्त किया जाए, तो यह गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक असमानताओं को घटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

5. सेवा क्षेत्र का विस्तार-भारत के सेवा क्षेत्र (Expansion of Service Sector - Service Sector of India) - जैसे सूचना प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य, शिक्षा और बैंकिंग का तीव्र विकास शिक्षित और प्रशिक्षित मानव संसाधन पर आधारित है। यह क्षेत्र अब भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ बन चुका है।

6. स्थायी विकास और सामाजिक कल्याण (Sustainable development and social welfare) - मानवीय संसाधन केवल आर्थिक विकास ही नहीं, बल्कि सतत विकास और सामाजिक कल्याण की ओर भी अग्रसर करता है। एक जागरूक, शिक्षित और संवेदनशील जनसंख्या सामाजिक समस्याओं जैसे लैंगिक असमानता, पर्यावरणीय क्षरण और भ्रष्टाचार से बेहतर ढंग से निपट सकती है।

3.5 भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियां (Demographic Trends in India)

जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत का स्थान चीन के बाद दूसरा है । भारत का भू-क्षेत्र संसार के भू-क्षेत्र का लगभग 2.4 प्रतिशत है लेकिन यहां रहने वाली जनसंख्या समस्त विश्व की जनसंख्या की 17.5 प्रतिशत है । भारत की जनसंख्या प्रवृत्तियों को उसकी संवृद्धि दर, तथा जन्म और मृत्युदर के रूप में देखा जा सकता है|

3.5.1 जनसंख्या संवृद्धि की दर (Rate of Population Growth)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मृत्युदर में तेज गिरावट आई है (विशेषकर अकालों पर नियन्त्रण के कारण तथा चिकित्सा सुविधाओं में सुधार के कारण) । मृत्यु दर में होने वाली गिरावट 1950 के दशक में किये गये अनुमानों की तुलना में अधिक रही है। योजना आयोग तथा जनगणना कमिश्नर ने अनुमान लगाया था कि 1951-61 के दशक में वही प्रवृत्ति रहेगी जो 1941-51 के दशक में थी। इसलिए जब 1951-61 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की वास्तविक दर 1.96 प्रतिशत दर्ज की गयी तो आयोजक आश्चर्यचकित रह गये। इससे सरकार को गम्भीर चिन्ता हुई। 1961-71 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 2.2 प्रतिशत रही जो पिछले

दशक की तुलना में और भी अधिक थी । 1981 की जनगणना में यह बात कही गयी कि 1970 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग वही रही जो 1960 के दशक में थी। 1991 की जनगणना में भी यह पता लगा कि 1980 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 2.14 प्रतिशत थी। इस प्रकार सरकार की आशा कि परिवार नियोजन कार्यक्रम के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि की दर में तेज गिरावट होगी; गलत सिद्ध हुई। 1996- 2016 के लिए रजिस्ट्रार जनरल के जनसंख्या प्रक्षेपण में यह अनुमान लगाया गया था कि 1990 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर गिरकर 1.84 प्रतिशत रह जाएगी, परन्तु ये प्रक्षेपण भी गलत सिद्ध हुए। 2001 की जनगणना से स्पष्ट हो गया था कि 1990 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 1.93 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इसलिए भारत अभी भी जनांकिकी परिवर्तन की दूसरी अवस्था से गुजर रहा है । इसलिए जनसंख्या विस्फोट की स्थिति बनी हुई है । यह देश के अल्पविकास का कारण भी है और परिणाम भी ।

2011 के बाद भारत की जनसंख्या संवृद्धि दर में निरंतर गिरावट देखने को मिली है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या लगभग 121 करोड़ थी। इसके पश्चात प्रतिवर्ष जनसंख्या बढ़ती रही, लेकिन उसकी वृद्धि दर में कमी आई। वर्ष 2012 से 2016 तक वार्षिक वृद्धि दर लगभग 1.1% के आसपास रही। इसके बाद यह दर धीरे-धीरे घटने लगी और 2020 तक आते-आते यह घटकर लगभग 0.98% रह गई। COVID-19 महामारी के प्रभाव से 2020 और 2021 में यह दर और भी अधिक प्रभावित हुई और 0.82% तक पहुँच गई। वर्ष 2023 में भारत की जनसंख्या लगभग 142 करोड़ तक पहुँच गई, किंतु संवृद्धि दर मात्र 0.81% रही। यह गिरावट कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate) में कमी, बढ़ती साक्षरता दर, विशेषकर महिलाओं की शिक्षा, शहरीकरण, बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं और परिवार नियोजन कार्यक्रमों की सफलता जैसे कारकों का परिणाम है। विशेषज्ञों के अनुसार, यह प्रवृत्ति आगे भी जारी रहेगी और भारत जनसांख्यिकीय संक्रमण के उस चरण में प्रवेश कर रहा है जहाँ जनसंख्या स्थिरीकरण की दिशा में अग्रसर है। अतः 2011 के बाद की अवधि में भारत की जनसंख्या संवृद्धि दर में गिरावट एक महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय बदलाव का संकेत देती है।

3.5.2 जन्म-दर एवं मृत्यु-दर (Birth Rate and Death Rate)

1950 से अब तक भारत में जन्म-दर एवं मृत्यु-दर में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है, जो देश के सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य क्षेत्र के विकास को दर्शाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, 1950 में भारत की सकल जन्म-दर (Crude Birth Rate) लगभग 40 प्रति हजार तथा सकल मृत्यु-दर (Crude Death Rate) लगभग 25 प्रति हजार थी। उस समय देश में स्वास्थ्य सेवाओं की अत्यंत कमी, गरीबी, कुपोषण, और संक्रामक रोगों के व्यापक प्रसार के कारण मृत्यु-दर बहुत अधिक थी। परंतु समय के साथ जैसे-जैसे स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार हुआ, टीकाकरण कार्यक्रमों का विस्तार हुआ और लोगों में जागरूकता बढ़ी, वैसे-वैसे मृत्यु-दर में लगातार गिरावट आती गई। 1970 तक यह घटकर लगभग 15 प्रति हजार रह गई और 1990 के दशक में यह लगभग 9 प्रति हजार हो गई। 2023 तक यह दर और घटकर लगभग 6 प्रति हजार के आसपास आ गई है।

वहीं, जन्म-दर में गिरावट की गति थोड़ी धीमी रही। 1950 के दशक में यह दर 40 प्रति हजार के आसपास थी, लेकिन परिवार नियोजन कार्यक्रमों, महिला शिक्षा में वृद्धि, शहरीकरण, और जीवनशैली में आए बदलावों के कारण इसमें धीरे-धीरे कमी आई। 1980 के दशक में यह लगभग 33 प्रति हजार थी, जो 2000 तक घटकर लगभग 26 प्रति हजार हो गई। 2011 में यह दर लगभग 22 प्रति हजार थी और 2023 तक यह और गिरकर लगभग 19 प्रति हजार पर पहुँच गई है। कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate) भी इस अवधि में 6.0 से घटकर 2.0 तक आ चुकी है।

इस प्रकार, 1950 से लेकर वर्तमान तक भारत में जन्म-दर और मृत्यु-दर दोनों में निरंतर गिरावट देखने को मिली है, जो जनसंख्या की वृद्धि दर को नियंत्रित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। यह प्रवृत्ति देश में जनसांख्यिकीय संक्रमण (Demographic Transition) की पुष्टि करती है, जहाँ उच्च जन्म-मृत्यु दर से कम जन्म-मृत्यु दर की ओर प्रस्थान हुआ है।

3.6 जनसंख्या की संरचना (Population Structure)

जनसंख्या की संरचना अनेक बातों पर निर्भर करती है; जैसे- जनसंख्या का घनत्व, ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या, लिंगानुपात, साक्षरता प्रतिशत, तथा व्यावसायिक स्थिति आदि। इन बिन्दुओं को क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.6.1 जनसंख्या घनत्व (Population Density)

किसी भी देश के क्षेत्रफल तथा उसकी जनसंख्या के पारस्परिक अनुपात को जनसंख्या का घनत्व कहा जाता है । घनत्व निकालने का सूत्र इस प्रकार है:-

जनसंख्या घनत्व= कुल भूमि क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर में)/कुल जनसंख्या

कुल क्षेत्रफल 2001 की जनगणनानुसार भारत में जनसंख्या का घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था, जबकि 2011 में यह बढ़कर 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है । अर्थात् 2001 से 2011 के बीच के एक दशक में भारत के जनसंख्या घनत्व में 18 प्रतिशत (58 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर) की वृद्धि दर्ज हुई है।

2011 से अब तक भारत में जनसंख्या घनत्व (Population Density) में निरंतर वृद्धि देखी गई है, जो जनसंख्या वृद्धि और सीमित भौगोलिक क्षेत्र के कारण हुआ है। जनगणना 2011 के अनुसार, भारत का जनसंख्या घनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था, जो 2001 के 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से लगभग 18% अधिक था। इसके बाद के वर्षों में जनसंख्या में लगातार वृद्धि होती रही, जबकि भू-क्षेत्र स्थिर बना रहा, जिसके परिणामस्वरूप घनत्व में भी बढ़ोत्तरी हुई।

हालाँकि 2021 की जनगणना COVID-19 महामारी के कारण स्थगित हो गई, परंतु विभिन्न सरकारी और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के अनुमानों के आधार पर वर्ष 2023 तक भारत का जनसंख्या घनत्व लगभग 430 से 440 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तक पहुँच चुका है। यह वृद्धि विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में अधिक तीव्र रही है, जहाँ जनसंख्या सघनता अत्यधिक बढ़ी है। दिल्ली, बिहार, पश्चिम बंगाल और केरल जैसे राज्यों में घनत्व राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है।

जनसंख्या घनत्व में इस वृद्धि का प्रभाव भूमि, जल, आवास, रोजगार, परिवहन और पर्यावरण पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अत्यधिक घनत्व वाले क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं पर दबाव बढ़ा है, जिससे योजनाकारों और नीति-निर्माताओं के सामने नई चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

इस प्रकार, 2011 से अब तक भारत का जनसंख्या घनत्व निरंतर बढ़ता गया है, जो जनसांख्यिकीय दबाव का संकेतक है और इसके प्रभावों को संतुलित करने के लिए प्रभावी शहरी योजना, सतत विकास और संसाधनों के कुशल उपयोग की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

जनसंख्या घनत्व को क्षेत्रीय आधार पर देखा जाय तो जम्मू-कश्मीर, सिक्किम, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश और अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर जनसंख्या घनत्व मात्र 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी कम है। इन क्षेत्रों को निम्नतम घनत्व वाले क्षेत्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है । इसके विपरीत केरल, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, चण्डीगढ़, पाण्डिचेरी, लक्षद्वीप, दमन और दीव जैसे क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व 689 से 9294 तक पाया जाता है। ये क्षेत्र सर्वाधिक घनत्व वाले क्षेत्रों की परिधि में रखने योग्य हैं। राजस्थान, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, पंजाब, हरियाणा, गोवा, असम, दादरा और नगर हवेली, त्रिपुरा, उड़ीसा, उत्तराखण्ड, तथा मध्य प्रदेश में जनसंख्या घनत्व मध्यम स्थिति में पाया जाता है। इन क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व 100 से 689 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के मध्य पाया जाता है।

3.6.2 ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या (Rural and Urban Population)

1961 से अब तक भारत में ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है, जो देश के सामाजिक-आर्थिक विकास, औद्योगीकरण, और शहरीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। 1961 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 82% भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता था, जबकि केवल 18% जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में रहती थी। उस समय भारत एक कृषि प्रधान देश था, और अधिकांश आबादी कृषि, पशुपालन एवं ग्रामीण आजीविका पर निर्भर थी।

समय के साथ-साथ देश में उद्योगों का विकास, परिवहन और संचार के साधनों का विस्तार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की वृद्धि, तथा रोजगार के नगरीय अवसरों ने ग्रामीण जनसंख्या को शहरों की ओर आकर्षित किया। इस प्रक्रिया को आंतरिक प्रवासन (Internal Migration) कहा जाता है, जिसके चलते नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या का अनुपात लगातार बढ़ा।

2001 की जनगणना तक ग्रामीण जनसंख्या घटकर 72% और नगरीय जनसंख्या बढ़कर 28% हो गई। 2011 की जनगणना में यह अनुपात और बदल गया, जहाँ ग्रामीण जनसंख्या लगभग 68.8% और नगरीय जनसंख्या 31.2% दर्ज की गई। इस दशक में नगरीकरण की गति अपेक्षाकृत तेज रही। इसके पीछे प्रमुख कारणों में आईटी, सेवा क्षेत्र और निर्माण उद्योग का तीव्र विकास रहा, जिससे शहरों में रोजगार की संभावनाएँ बढ़ीं।

2023 तक के अनुमान के अनुसार, भारत की नगरीय जनसंख्या लगभग 35-36% तक पहुँच चुकी है, जबकि ग्रामीण जनसंख्या घटकर लगभग 64-65% के आसपास मानी जा रही है। यह संकेत करता है कि भारत तेजी से जनसांख्यिकीय संक्रमण की स्थिति में है, जहाँ वह पारंपरिक ग्रामीण संरचना से आधुनिक नगरीय समाज की ओर बढ़ रहा है।

इस प्रकार, 1961 से अब तक भारत की ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है, जिससे शहरी नियोजन, बुनियादी ढांचे के विकास, आवास, परिवहन और सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता बढ़ी है। यह परिवर्तन भारत की अर्थव्यवस्था और समाज के बदलते स्वरूप का प्रमाण है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या में आजादी के बाद निरन्तर दोनों ही क्षेत्रों में वृद्धि हुई है, परन्तु प्रतिशत में विरोधाभास की स्थिति प्रकट हुई है । आजादी के बाद से जहां ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रतिशत गिरा है, वहीं शहरी जनसंख्या के प्रतिशत में निरन्तर बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है । शहरी जनसंख्या के प्रतिशत में वृद्धि का मूल कारण ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार अवसरों में कमी होना तथा शहरी क्षेत्रों में औद्योगिक विकास माना जा सकता है।

3.6.3 लिंगानुपात (Sex Ratio)

1961 से अब तक भारत में लिंगानुपात (Sex Ratio) की स्थिति सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव में धीरे-धीरे बदलती रही है। लिंगानुपात का अर्थ प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या से है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में लिंगानुपात 941 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष था। यह आँकड़ा दर्शाता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी महिलाओं की स्थिति समाज में अपेक्षाकृत कमजोर बनी हुई थी, जिसका कारण बालिका भ्रूण हत्या, कन्या शिशु उपेक्षा, अशिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और सामाजिक भेदभाव थे।

इसके पश्चात 1971 और 1981 की जनगणनाओं में लिंगानुपात में थोड़ी गिरावट आई और यह क्रमशः 930 और 933 दर्ज किया गया। 1991 में यह और गिरकर 927 हो गया, जो चिंता का विषय बना। इस गिरावट के पीछे प्रमुख कारण आधुनिक तकनीकों की मदद से जन्म से पहले लिंग की पहचान कर कन्या भ्रूण हत्या का बढ़ता चलन था। विशेष रूप से कुछ राज्यों में यह प्रवृत्ति अधिक देखने को मिली।

हालाँकि, 2001 की जनगणना में यह आँकड़ा थोड़ा सुधारते हुए 933 हो गया, और 2011 में यह बढ़कर 943 हो गया, जो सामाजिक जागरूकता अभियानों, "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" जैसे कार्यक्रमों और महिला सशक्तिकरण प्रयासों का परिणाम था।

2023 तक के अनुमानित आँकड़ों के अनुसार भारत का लिंगानुपात लगभग 948 से 950 महिलाओं प्रति 1000 पुरुषों तक पहुँच चुका है, जो एक सकारात्मक संकेत है, विशेषकर बाल लिंगानुपात (0-6 वर्ष) में

सुधार के संदर्भ में। हालांकि कुछ राज्यों जैसे केरल में यह अनुपात 1000 से अधिक है, वहीं हरियाणा, पंजाब जैसे राज्यों में यह अब भी राष्ट्रीय औसत से नीचे है।

इस प्रकार, 1961 से अब तक भारत में लिंगानुपात में उतार-चढ़ाव के बावजूद हाल के वर्षों में इसमें सुधार हुआ है, जो महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और सरकारी प्रयासों की सफलता को दर्शाता है। फिर भी, सामाजिक मानसिकता में बदलाव और बालिकाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता बनी हुई है।

3.6.4 जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण (Occupational Classification of the Population)

1961 से अब तक भारत में जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण (Occupational Classification of Population) सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, औद्योगीकरण और शहरीकरण के प्रभाव में निरंतर परिवर्तित होता रहा है। व्यावसायिक वर्गीकरण का अभिप्राय यह है कि जनसंख्या का किस क्षेत्र में मुख्यतः रोजगार है,जैसे कृषि, उद्योग, सेवाएँ आदि। 1961 की जनगणना के अनुसार, भारत की लगभग 70% जनसंख्या कृषि और उससे संबंधित कार्यों में संलग्न थी, जबकि केवल 10% उद्योगों और 20% सेवाओं में कार्यरत थी। उस समय भारत एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था था, जहाँ अधिकतर लोग खेतिहर मजदूरी, कृषक या पशुपालन से जुड़े हुए थे।

समय के साथ देश में हरित क्रांति, औद्योगीकरण, सेवा क्षेत्र का विकास, तथा शहरीकरण के प्रभाव से रोजगार की संरचना में परिवर्तन आया। 1981 तक कृषि क्षेत्र में निर्भरता थोड़ी घटी, लेकिन तब भी यह संख्या लगभग 65% के आसपास रही। 1991 की जनगणना में यह आँकड़ा और घटकर लगभग 62% रह गया, जबकि सेवा क्षेत्र में लगे लोगों का प्रतिशत बढ़ा।

2001 और 2011 की जनगणनाओं ने यह स्पष्ट किया कि अब अधिक लोग गैर-कृषि क्षेत्रों, विशेषकर सेवाओं और निर्माण कार्यों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। 2011 में कृषि पर निर्भर जनसंख्या घटकर लगभग 54.6% हो गई, जबकि सेवा क्षेत्र और उद्योगों में कार्यरत लोगों की संख्या बढ़ी। सेवा क्षेत्र में आईटी, स्वास्थ्य, शिक्षा, वित्त और परिवहन जैसी सेवाओं की वृद्धि ने लोगों को नए रोजगार के अवसर दिए।

2023 तक के अनुमान यह दर्शाते हैं कि भारत की कार्यशील जनसंख्या का लगभग 42-45% भाग अब भी कृषि में, 25-27% उद्योगों में, और 28-30% सेवा क्षेत्र में संलग्न है। यद्यपि कृषि पर निर्भरता अब भी अधिक है, लेकिन इसके अनुपात में निरंतर गिरावट आ रही है, जो दर्शाता है कि देश धीरे-धीरे कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था से सेवा-प्रधान अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है।

इस प्रकार, 1961 से अब तक भारत में जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण धीरे-धीरे बदलता रहा है, और यह परिवर्तन देश के विकास, शिक्षा, तकनीक, और नीतिगत सुधारों का द्योतक है। भविष्य में यह अपेक्षा की जाती है कि सेवा और औद्योगिक क्षेत्रों में रोजगार की भागीदारी और अधिक बढ़ेगी।

3.6.5 साक्षरता प्रतिशत (Literacy Percentage)

1961 से अब तक भारत में साक्षरता प्रतिशत (Literacy Rate) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो देश के शैक्षिक विकास, सामाजिक जागरूकता और सरकारी नीतियों की सफलता को दर्शाता है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत का कुल साक्षरता दर केवल 28.3% थी, जिसमें पुरुषों का साक्षरता प्रतिशत 40.4% और महिलाओं का मात्र 15.4% था। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उस समय शिक्षा विशेष रूप से महिलाओं के लिए अत्यंत सीमित थी और सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ प्रमुख थीं।

इसके पश्चात सरकार ने शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए विभिन्न योजनाएँ चलाईं, जैसे सर्वशिक्षा अभियान, नवोदय विद्यालय योजना, मध्याह्न भोजन योजना, तथा महिला शिक्षा अभियान, जिनके परिणामस्वरूप साक्षरता दर में क्रमिक वृद्धि हुई। 1981 तक यह दर बढ़कर 43.6% और 1991 में 52.2% तक पहुँच गई।

2001 की जनगणना में भारत की साक्षरता दर 64.8% दर्ज की गई, जिसमें पुरुष साक्षरता 75.3% और महिला साक्षरता 53.7% थी। यह पहला अवसर था जब महिला साक्षरता में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। 2011 की जनगणना के अनुसार, कुल साक्षरता दर 74.04% हो गई, जिसमें पुरुष साक्षरता 82.14% और महिला साक्षरता 65.46% थी।

2023 तक के अनुमान बताते हैं कि भारत की कुल साक्षरता दर लगभग 77-78% तक पहुँच चुकी है। विशेष रूप से केरल जैसे राज्य जहाँ साक्षरता दर 96% से अधिक है, शिक्षा के क्षेत्र में मिसाल बन चुके हैं, जबकि बिहार और झारखंड जैसे राज्यों में अब भी यह दर राष्ट्रीय औसत से नीचे है।

इस प्रकार, 1961 से अब तक भारत में साक्षरता प्रतिशत में निरंतर सुधार हुआ है, विशेषकर महिलाओं की शिक्षा में बढ़ोत्तरी, ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की उपलब्धता और डिजिटल शिक्षा की पहल ने इस विकास को गति दी है। फिर भी, गुणवत्तापूर्ण और समावेशी शिक्षा की दिशा में अभी और प्रयासों की आवश्यकता है ताकि देश पूर्ण साक्षरता की दिशा में आगे बढ़ सके।

3.6.6 विश्व के सापेक्ष भारतीय जनसंख्या - अनुपात (Indian Population Relative to the World – Ratio)

भारत विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या वाले देशों में अग्रणी है। संयुक्त राष्ट्र के नवीनतम अनुमानों के अनुसार, विश्व की कुल जनसंख्या में भारत का योगदान लगभग 17 से 18 प्रतिशत तक है। वर्ष 2023 में भारत ने चीन को पीछे छोड़ते हुए विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन गया। विश्व की लगभग प्रत्येक छठी व्यक्ति भारत में निवास करता है। जनसंख्या के इस उच्च अनुपात का वैश्विक स्तर पर विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव देखा जाता है। भारत की विशाल जनसंख्या एक ओर तो श्रमशक्ति, उपभोक्ता बाजार और उत्पादन क्षमता के रूप में अवसर प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी, गरीबी, संसाधनों पर दबाव और पर्यावरणीय संकट जैसी चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है। इस प्रकार, विश्व की जनसंख्या के सापेक्ष भारत की जनसंख्या का अनुपात यह दर्शाता है कि भारत न केवल एशिया बल्कि वैश्विक परिदृश्य में भी जनसंख्या की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

3.7 जनसंख्या वृद्धि के कारण (Causes of Population Growth)

1961 से लेकर 2011 तक भारत में जनसंख्या वृद्धि के कई प्रमुख कारण रहे, जिन्होंने देश की जनसांख्यिकीय संरचना को गहराई से प्रभावित किया। 1960 के दशक में भारत एक कृषि प्रधान और विकासशील देश था। उस समय स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार, मृत्यु-दर में गिरावट और जीवन प्रत्याशा में

वृद्धि के कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगी। जन्म-दर ऊँचा बना रहा, जबकि मृत्यु-दर में उल्लेखनीय गिरावट आई, जिससे प्राकृतिक वृद्धि दर अत्यधिक हो गई।

एक प्रमुख कारण कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate) का अधिक होना था। 1960 और 1970 के दशक में एक महिला द्वारा औसतन 5 से 6 बच्चों को जन्म दिया जाता था। इसके पीछे महिलाओं की अशिक्षा, प्रजनन स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता की कमी, कन्या संतान के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह, तथा परिवार नियोजन साधनों की सीमित पहुँच जैसे कारक थे। शिशु मृत्यु दर ऊँची होने के कारण परिवारों में अधिक संतानें जन्म देने की प्रवृत्ति भी देखी गई। ग्रामीण समाज में बच्चों को श्रमिक के रूप में देखना, कम विवाह आयु और परंपरागत सोच ने भी जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा दिया।

1980 और 1990 के दशकों में परिवार नियोजन कार्यक्रमों, शिक्षा के प्रसार, महिला सशक्तिकरण और सरकारी प्रयासों के कारण जन्म-दर में कमी आने लगी। इसके बावजूद, 1991 और 2001 तक जनसंख्या में तीव्र वृद्धि दर्ज की गई क्योंकि आधार जनसंख्या पहले ही बहुत बड़ी हो चुकी थी।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 121 करोड़ (1.21 अरब) थी, जो 2001 की तुलना में लगभग 17.7% अधिक थी। इस दशक में वृद्धि दर घटकर 17.64% हो गई, जो पहले की दशकों की तुलना में कम थी। कुल प्रजनन दर भी घटकर लगभग 2.4 पर आ गई थी। इससे स्पष्ट होता है कि वृद्धि की रफ्तार धीमी हो रही थी, फिर भी जनसंख्या का विशाल आकार संसाधनों, योजनाओं और बुनियादी ढाँचे पर निरंतर दबाव बनाए हुए था।

इस प्रकार, 1961 से 2011 तक भारत में जनसंख्या वृद्धि मुख्यतः मृत्यु-दर में गिरावट, उच्च जन्म-दर, सामाजिक और आर्थिक कारणों, तथा विकास की असमानताओं से प्रभावित रही। हालाँकि 2011 तक वृद्धि दर में कमी आई, परंतु जनसंख्या का आकार इतना बड़ा हो चुका था कि भारत विश्व के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देशों में अग्रणी बन गया।

3.8 तीव्र जनसंख्या वृद्धि के भारतीय अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव (Harmful Effects of Rapid Population Growth on Indian Economy)

किसी भी देश में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि वहां विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न कर सकती है । भारत भी इसका अपवाद नहीं है । भारतीय अर्थव्यवस्था पर तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणामों को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है:

निम्न प्रतिव्यक्ति आय: भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय आय में जिस दर से वृद्धि हुई है, प्रति व्यक्ति आय में उस दर से वृद्धि सम्भव नहीं हो सकी है। इसका कारण है जनसंख्या का अति विस्तार ।

आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव: भारत में आर्थिक विकास के मार्ग में जनसंख्या का तेजी से बढ़ना आज सबसे बड़ी समस्या है। आर्थिक विकास पर जनसंख्या का बढ़ता भार अनेक रूपों में परिलक्षित हुआ है। इसके कारण कृषि जोतों का आकार घटता जा रहा है, भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है, बेरोजगारी व छुपी हुई बेरोजगारी की समस्या विकराल होती जा रही है, बचत व निवेश में पर्याप्त मात्रा में

वृद्धि नहीं हो पा रही है, परिवहन व संचार साधनों और ऊर्जा के स्रोतों पर लगातार दबाव बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक संसाधन तथा उत्पादन बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं के लिए कम पड़ रहे हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन की अन्य अनिवार्य आवश्यकताओं के पूरा न होने से श्रम की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इन सब कारणों से आर्थिक विकास की गति तीव्र नहीं हो पा रही है।

निम्न रहन-सहन स्तर:जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण उपभोग के लिए प्रति व्यक्ति कम वस्तुएं उपलब्ध हो पाती हैं और साथ ही रहन-सहन का स्तर भी घटता जाता है। भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण आवास, चिकित्सा, सफाई, पानी व बिजली, महंगाई, नगरों में गन्दी बस्तियों का निर्माण, नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है।

पूंजी निर्माण में कमी: जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने पर उपभोग व्यय बढ़ने तथा बचत कम हो जाने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। सरकार को भी सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पहले की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक व्यय करना पड़ रहा है। इसके फलस्वरूप व्यक्तिगत और सार्वजनिक बचत कम हो जाती है। इससे देश में पूंजी निर्माण की दर भी घटती है और आर्थिक विकास की गति मन्द पड़ जाती है।

इनके अतिरिक्त जनसंख्या की अति वृद्धि के कुछ अन्य दुष्प्रभाव भी दिखाई देते हैं- जैसे, अनुत्पादक उपभोक्ताओं का भार, बेरोजगारों की संख्या में बढ़ोत्तरी, खाद्य समस्या, तथा अनार्थिक जोतों की संख्या में वृद्धि आदि।

3.9 जनसंख्या को नियन्त्रित करने हेतु सरकारी नीति, 2000 (Government policy for population control, 2000)

15 फरबरी, 2000 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की थी। यह नीति परिवार नियोजन सेवाओं को लागू करने में जनता की इच्छा को मानते हुए निश्चित लक्ष्यों से मुक्त रखने के दृष्टिकोण पर आधारित है। इस जनसंख्या नीति के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

अ. गर्भ निरोधकों, स्वास्थ्य संरचना, स्वास्थ्यकर्मियों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना तथा आधारभूत पुनरुत्पादनीय एवं बाल स्वास्थ्य के बारे में समन्वित सेवा प्रदान करना।

ब. कुल प्रजनन दर को कम करके आगामी दशक में 2.1 की प्रतिस्थापन दर तक लाना।

स. स्थायी आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और पर्यावरण की सुरक्षा की जरूरतों के अनुरूप स्तर पर वर्ष 2045 तक एक स्थिर जनसंख्या को हासिल करना।

3.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. निम्न में से जन्म दर का अर्थ है:

(क) कुल जनसंख्या

(ख) बिना जन्मे बच्चे

(ग) प्रति 1000 जनसंख्या पर वर्ष में जन्मे बच्चों की संख्या

(घ) इनमें से कोई नहीं

2. निम्न में से मृत्यु दर को सूचित करता है:

(क) कुल मृतकों की संख्या

(ख) कुल जनसंख्या में 1000 मृत्यु

(ग) प्रति हजार जनसंख्या पर वर्ष में हुई कुल मृत्यु गणना

(घ) इनमें से कोई नहीं।

3. भारत में वर्तमान में मानक विवाह आयु है:

(क) 15-18 वर्ष

(ख) 18-21 वर्ष

(ग) 21-24 वर्ष

(घ) 24-27 वर्ष

4. 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या है:

(क) 212 करोड़

(ख) 1 अरब 25 करोड़

(ग) 1 अरब 21 करोड़

(घ) 124 करोड़

रिक्त स्थान भरें -

1.जनसंख्या वृद्धि का एक प्रमुख कारण __________ है।

2.विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि का एक कारण __________ की कमी है।

3.__________ स्वास्थ्य सेवाओं की कमी से जनसंख्या नियंत्रण कठिन हो जाता है।

4.जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव __________ संसाधनों पर दबाव बढ़ाता है।

सत्य/असत्य-

1. जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण मृत्यु दर में वृद्धि है।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की कमी से जनसंख्या तेजी से बढ़ती है।
3. जनसंख्या वृद्धि से बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है।
4. जनसंख्या वृद्धि केवल आर्थिक कारणों से होती है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. 2011 के अनुसार जनसंख्या वृद्धि की दर क्या है *?*

2. भारत में सीमित परिवार के लिए कार्य करने वाले कार्यक्रम का क्या नाम है ?

3. स्त्री और पुरुषों के अनुपात को क्या कहा जाता है ?

4. क्या विश्व की जनसंख्या में भारत की जनसंख्या सबसे अधिक है ?

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. मानवीय संसाधन से आप क्या समझते हैं ?

2. साक्षरता दर किसे कहा जाता है और वर्तमान में भारत की साक्षरता का स्तर क्या है ?

3. जन घनत्व को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए, तथा 2001 एवं 2011 के जनघनत्व की स्थिति दर्शाइये |

4. भारत की जनसंख्या नीति, 2000 उद्देश्यों को प्रस्तुत कीजिए ।

3.11 सारांश (Summary)

यह अध्याय भारत में जनसंख्या की प्रकृति, प्रवृत्तियाँ और मानवीय संसाधन के महत्व का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें बताया गया है कि सामान्यतः 'जनसंख्या' का अर्थ किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों की कुल संख्या है, जबकि 'मानवीय संसाधन' में केवल संख्या ही नहीं, बल्कि व्यक्तियों की शिक्षा, कौशल, उत्पादकता और स्वास्थ्य जैसे गुण भी सम्मिलित होते हैं। मानव संसाधन देश के आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी विकास का आधार है। यह उत्पादन क्षमता बढ़ाने, जनसांख्यिकीय लाभांश के रूप में युवाओं का उपयोग करने, उद्यमिता और नवाचार को प्रोत्साहन देने, गरीबी और असमानता के उन्मूलन में सहायता करने और सेवा क्षेत्र को विस्तार देने में सहायक है। भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 17.5% है, जबकि भू-क्षेत्र केवल 2.4% है। जनसंख्या संवृद्धि दर में 2011 के बाद निरंतर गिरावट आई है। जन्म-दर एवं मृत्यु-दर दोनों में 1950 से अब तक निरंतर गिरावट आई है। जनसंख्या घनत्व 2011 में 382 व्यक्ति/वर्ग किमी था, जो अब 430–440 तक पहुँच चुका है। ग्रामीण-नगरीय जनसंख्या: 1961 में 82% ग्रामीण और 18% नगरीय थी; अब (2023 तक) नगरीय जनसंख्या ~35% हो गई है। लिंगानुपात: 1961 में 941 था, 2023 में यह बढ़कर लगभग 950 तक पहुँच गया है। कृषि पर निर्भरता 1961 में ~70% थी, जो अब घटकर ~42–45% रह गई है। सेवा क्षेत्र में तीव्र वृद्धि हुई है। साक्षरता दर1961 में 28.3% थी, जो अब बढ़कर 77–78% के आसपास पहुँच चुकी है। प्रारंभिक वर्षों

में मृत्यु-दर में तीव्र गिरावट, उच्च जन्म-दर, कन्या उपेक्षा, अशिक्षा, और परंपरागत सामाजिक दृष्टिकोण ने जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा दिया। परिवार नियोजन और शिक्षा के प्रसार ने इसमें धीरे-धीरे गिरावट लाई। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के दुष्प्रभाव-प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि बाधित,आर्थिक विकास की गति धीमी,रहन-सहन के स्तर में गिरावट,पूंजी निर्माण और निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव,बेरोजगारी, आवास संकट, खाद्य संकट और पर्यावरणीय दबाव|भारत सरकार ने 15 फरवरी 2000 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (NPP-2000) लागू की, जिसके मुख्य उद्देश्य हैं:गर्भनिरोधकों, स्वास्थ्य ढांचे और सेवाओं की समुचित व्यवस्था,TFR को 2.1 पर लाना (प्रतिस्थापन स्तर),2045 तक स्थिर जनसंख्या प्राप्त करना| यह अध्याय स्पष्ट करता है कि जनसंख्या और मानव संसाधन एक-दूसरे से जुड़े होते हुए भी गुणात्मक दृष्टि से भिन्न हैं। जहाँ जनसंख्या मात्रात्मक है, वहीं मानव संसाधन गुणात्मक विशेषताओं से युक्त है। भारत में जनसंख्या वृद्धि के साथ उसकी संरचना और वितरण में निरंतर परिवर्तन हुआ है। शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास के माध्यम से मानव संसाधन को विकसित करना, आर्थिक विकास की कुंजी है।

3.12 शब्दावली (Glossary)

- **लिंगानुपात(Sex Ratio)-** स्त्री और पुरुषों का अनुपात। 1000 पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या लिंगानुपात की श्रेणी में आती है।
- **महामारी(Pandemic)-** ऐसे रोगों से व्यापक स्तर पर जनहानि होती थी अतः इसे महामारी नाम दिया गया। वर्तमान में चिकित्सकीय प्रगति के कारण ऐसे संक्रामक रोगों नाममात्र को देखने को मिलते हैं परन्तु आजादी के आसपास इस प्रकार की बीमारियां बहुत देखी जाती थीं। प्लेग, हैजा, चेचक जैसे संक्रामक रोग।
- **परिवार नियोजन कार्यक्रम(Family Planning Program)-** सीमित परिवार के लक्ष्य को लेकर कार्य करने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम का नाम । इसमें कम सन्तान उत्पन्न करने हेतु विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक व कृत्रिम उपायों के प्रयोग पर बल दिया जाता है, जैसे- स्त्री अथवा पुरुष नसबन्दी आदि।
- **मानव संसाधन (Human Resource)–** किसी देश की कार्यशील, कुशल, और शिक्षित जनसंख्या को मानव संसाधन कहते हैं।
- **जन्म-दर (Birth Rate) –** प्रति 1,000 जनसंख्या पर एक वर्ष में होने वाले जीवित जन्मों की संख्या को जन्म-दर कहते हैं।
- **मृत्यु-दर (Death Rate)–** प्रति 1,000 जनसंख्या पर एक वर्ष में होने वाली मृत्यु की संख्या को मृत्यु-दर कहते हैं।
- **जनसंख्या घनत्व(Population Density) –** किसी क्षेत्र के प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करने वाले लोगों की संख्या को जनसंख्या घनत्व कहते हैं।

3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न: 1. (ग); 2. (ग); 3. (ख); 4. (ग)

रिक्त स्थान भरें -

1. उच्च जन्म दर

2. शिक्षा
3. जनन
4. प्राकृतिक

सत्य/असत्य-

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य

3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद ।

3.15 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

- dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992) ; Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

3.16 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. मानव संसाधन और जनसंख्या में क्या अंतर है? भारतीय अर्थव्यवस्था में मानव संसाधन का क्या महत्व है?
2. भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर एवं जनसंख्या संरचना में हुए प्रमुख परिवर्तनों का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
3. भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारणों एवं इसके भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिए।
4. भारत में ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या संरचना में हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डालिए। यह परिवर्तन भारतीय अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

इकाई - 4 अधोसंरचना, प्राकृतिक संसाधन (Infrastructure, Natural Resources)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 उद्देश्य (Objectives)

4.3 अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन का अर्थ (Meaning of infrastructure and natural resources)

4.4 अधोसंरचना एवं प्राकृतिक संसाधनों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्व (Importance of infrastructure and natural resources in the Indian economy)

4.5 अधोसंरचना के विभिन्न क्षेत्र एवं आजादी के बाद उनमें हुई प्रगति (Various sectors of infrastructure and their progress after independence)

4.6 विभिन्न प्राकृतिक संसाधन और आजादी के पश्चात् उनकी प्रगति(Various natural resources and their progress after independence)

4.6.1 भूमि एवं मिट्टियां (Land and Soils)

4.6.2 वन संसाधन (Forest Resources)

4.6.3 जल संसाधन (Water Resources)

4.6.4 खनिज संसाधन (Mineral Resources)

4.6.5 शक्ति के संसाधन (Resources of power)

4.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

4.8 सारांश (Summary)

4.9 शब्दावली (Glossary)

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

4.12 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय में जनसंख्या की क्या विशेषताएं हैं? मानवीय संसाधन एवं आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध होता है? प्राकृतिक संसाधन एक देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इन संसाधनों पर मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इनके महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की भारत में उपलब्धता, इनके उपयोग एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगें ।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ अधो संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन का आशय को जान सकेंगें ।
- ✓ अधो- संरचना तथा प्राकृतिक संसाधनों की भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमिका को बता सकेंगें।
- ✓ अधोसंरचना के विकास की स्थिति का वर्णन कर सकेंगें |
- ✓ प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन की जानकारी का वर्णन कर सकेंगें ।

4.3 अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन का अर्थ (Meaning of infrastructure and natural resources)

अधोसंरचना को आधारिक संरचना, सामाजिक उपरि पूंजी (Social Overhead Capital)अथवा इन्फ्रास्ट्रक्चर भी कहा जा सकता है । अधोसंरचना में वे सुविधाएं सम्मिलित होती हैं जिन्हें पूंजीगत सम्पत्ति के रूप में जाना जाता है और जिन पर सम्पूर्ण समुदाय का अधिकार होता है । सम्पूर्ण समाज इन अधोसंरचना की सुविधाओं से लाभान्वित होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सुविधाओं, जैसे- परिवहन सेवा (सड़क, रेलवे, वायुयान, जलीय परिवहन) शैक्षिक सेवा (स्कूल), चिकित्सकीय सेवा (अस्पताल), तथा अन्य सेवाओं (विद्युत, बैंक, डाक- तार) आदि की गणना की जाती है।

प्राकृतिक संसाधनों का तात्पर्य उन उपहारों से है जो मानव को प्रकृति द्वारा (बिना कोई मूल्य चुकाए) प्रदान किये जाते हैं । इन उपहारों में भूमि, जल, वन, खनिज पदार्थ, सामुद्रिक वस्तुएं (जैसे, मछली आदि) जलवायु आदि विभिन्न प्रकार के तत्व सम्मिलित हैं । ये सभी तत्व प्राकृतिक संसाधनों की परिधि में आते हैं।

4.4 अधोसंरचना एवं प्राकृतिक संसाधनों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्व (Importance of infrastructure and natural resources in the Indian economy)

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का विकास वहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता पर तो निर्भर करती ही है, साथ ही यह भी आवश्यक है कि उन प्राकृतिक संसाधनों का उपयुक्त रीति से विदोहन करके अधोसंरचनात्मक ढांचे का विस्तार करने में सहायक होते हैं। अर्थात् प्राकृतिक संसाधन अधोसंरचना का के लिए कच्ची सामग्री उपलब्ध कराते हैं और उनके उपयोग से अधो-संरचनात्मक ढांचे को गति प्रदान की जाती है। ये वे मूलभूत आधार हैं जिनके द्वारा एक देश की अर्थव्यवस्था विकसित होती है। भारत इसका अपवाद नहीं है। दूसरे शब्दों में, भारत में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं और उनका विदोहन करके अधोसंरचना को विकसित करने में सहायता मिली है। भारत की अर्थव्यवस्था को विश्व में 12वी सबसे विशाल अर्थव्यवस्था का रूप प्रदान करने में यहां के प्राकृतिक संसाधनों तथा अधोसंरचना की भूमिका सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

यदि कृषि और उद्योग को भारतीय अर्थव्यवस्था का शरीर माना जाय तो परिवहन, संचार, स्वास्थ्य, तथा अन्य सेवाएं उसकी धमनियां हैं, जो यहां के निवासियों की विकासपरक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण रही हैं। उद्योगों के लिए कच्चे माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने में जहां परिवहन सेवाएं प्रमुख भूमिका निभाती हैं तो देशवासियों को स्वस्थ रखने, उन्हें शिक्षित बनाने तथा उनकी व्यावसायिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में अस्पताल, शिक्षण संस्थान तथा बैंकों जैसी अधो- संरचरनात्मक इकाइयां उपयोगी सिद्ध होती हैं। आर्थिक विकास की इन समस्त प्रक्रियाएं उस समय धराशायी हो सकती हैं जब उपर्युक्त अधो-संरचनात्मक इकाइयों के लिए कच्चे माल के रूप में प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध न हों। अर्थात् जहां अधोसंरचना भारत की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है, वहीं प्राकृतिक संसाधन उससे कम उपयोगी नहीं माने जा सकते। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अधोसंरचना तथा प्राकृतिक संसाधन भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, इनके अभाव में देश की अर्थव्यवस्था को खड़ा नहीं किया जा सकता।

4.5 अधोसंरचना के विभिन्न क्षेत्र एवं आजादी के बाद उनमें हुई प्रगति (Various sectors of infrastructure and their progress after independence)

रेलवे, वायुयान, जलीय अधोसंरचना के विभिन्न रूप हैं, यथा- परिवहन सेवा (सड़क, परिवहन) संचार सेवा (दूरभाष, डाक-तार व कम्प्यूटर), शिक्षण क्षेत्र (स्कूल), चिकित्सकीय सेवा (अस्पताल), तथा अन्य सेवाएं (विद्युत एवं बैंक)।

परिवहन सेवा(Transportation Services): परिवहन के मामले में, देश में, आजादी के बाद तेजी से विकास हुआ है। यहां सड़क, वायु, जल तथा रेल परिवहन का विस्तृत नेटवर्क है। 1950-51 में, भारत में रेलमार्ग की लम्बाई 53600 किलोमीटर थी जो अब लगभग 68,043 किलोमीटर हो गई है, जिसमें से 91% से अधिक ब्रॉड गेज है और 80% से अधिक रेलमार्ग का विद्युतीकरण पूरा हो चुका है। इसी प्रकार

जहाजरानी की सेवा व परिवहन क्षमता में विस्तार हुआ है । वायुपरिवहन में उदारीकरण के फलस्वरूप निजी कम्पनियों का भी प्रवेश हो चुका है। अर्थात् परिवहन सेवाओं के क्षेत्र की स्थिति आजादी के समय की तुलना में आज काफी बेहतर स्थिति में है । इनका अलग-अलग विवेचन करते हैं। परिवहन की विभिन्न शाखाओं को अलग-अलग रूप में देखते हैं ।

सड़क परिवहन (Road Transport)

भारत में सड़क परिवहन प्रणाली का विकास आज़ादी के बाद उल्लेखनीय रूप से हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में सड़क नेटवर्क सीमित था और अधिकांश सड़कें कच्ची एवं अविकसित थीं। 1947 में देश में केवल लगभग 4 लाख किमी सड़कें थीं, जिनमें पक्की सड़कों की संख्या बहुत कम थी। ग्रामीण क्षेत्रों तक सड़क संपर्क लगभग नगण्य था।

स्वतंत्रता के बाद सड़क परिवहन में प्रमुख प्रगति:

1. राष्ट्रीय राजमार्गों का विकास (Development of National Highways)

सरकार ने राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण और विस्तार को प्राथमिकता दी। 1998 में राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना (NHDP) की शुरुआत की गई, जिसके अंतर्गत: स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना (Golden Quadrilateral) के माध्यम से दिल्ली, मुंबई, चेन्नई और कोलकाता को जोड़ा गया। उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम गलियारे का विकास किया गया।

2. ग्रामीण सड़क योजना (Rural Road Scheme)

2000 में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) की शुरुआत की गई, जिसका उद्देश्य सभी ग्रामीण बस्तियों को पक्की सड़कों से जोड़ना था। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में विकास, कृषि विपणन और शिक्षा-स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में सुधार हुआ।

3. सड़क नेटवर्क में वृद्धि (Increase in road network)

आज भारत में लगभग 65 लाख किलोमीटर से अधिक सड़कें हैं, जो इसे विश्व का दूसरा सबसे बड़ा सड़क नेटवर्क बनाता है। इसमें राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग, जिला सड़कें, ग्रामीण सड़कें और शहरी सड़कें शामिल हैं।

4. Expressways और ग्रीनफील्ड कॉरिडोर (Expressways and Greenfield Corridors)

नई तकनीकों और PPP मॉडल के अंतर्गत अनेक एक्सप्रेसवे (जैसे दिल्ली-मुंबई एक्सप्रेसवे) और ग्रीनफील्ड राजमार्ग परियोजनाएं विकसित की जा रही हैं, जो तेज़, सुरक्षित और पर्यावरण-अनुकूल यातायात को बढ़ावा देती हैं।

5. सड़क निर्माण में तकनीकी प्रगति (Technological advances in road construction)

GPS आधारित निगरानी, सिविल इंजीनियरिंग में नवाचार, ई-टेंडरिंग और डिजिटलीकरण ने निर्माण प्रक्रिया को पारदर्शी और दक्ष बनाया है।

आज़ादी के बाद भारत ने सड़क परिवहन के क्षेत्र में असाधारण प्रगति की है। यह न केवल देश के आर्थिक विकास की रीढ़ बना है, बल्कि सामाजिक समावेशन, क्षेत्रीय संतुलन और नागरिक सुविधा के क्षेत्र में भी इसका योगदान अभूतपूर्व रहा है। भविष्य में स्मार्ट सड़कें, इलेक्ट्रिक वाहन इन्फ्रास्ट्रक्चर और हरित परिवहन नीतियाँ इस क्षेत्र को और ऊंचाइयों तक ले जाएँगी।

रेल परिवहन (Rail transport)

भारत में रेल परिवहन की नींव ब्रिटिश शासनकाल में पड़ी थी, लेकिन आज़ादी के बाद भारतीय रेल ने जो विकास यात्रा तय की है, वह न केवल तकनीकी दृष्टि से, बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। 1947 में भारत के पास लगभग 53,596 किलोमीटर लंबा रेल नेटवर्क था, जो बँटे हुए भारत के हिस्सों में फैला था। विभाजन के बाद बड़ी मात्रा में रेल नेटवर्क पाकिस्तान में चला गया, जिससे भारतीय रेल प्रणाली को पुनः संगठित और विकसित करने की चुनौती सामने आई।

आज़ादी के बाद भारतीय रेल की प्रमुख प्रगतियाँ:

1. रेल नेटवर्क का विस्तार (Expansion of the rail network)

स्वतंत्रता के बाद से भारतीय रेल नेटवर्क का निरंतर विस्तार हुआ। 2023 तक यह नेटवर्क लगभग 68,000 किलोमीटर तक पहुँच गया है, जो भारत को विश्व के सबसे बड़े रेल नेटवर्क वाले देशों में स्थान दिलाता है। इसमें उपनगरीय, लंबी दूरी और मालगाड़ियों की सेवाएं शामिल हैं।

2. विद्युतीकरण और डीजल (Electrification and diesel)

स्वतंत्रता के बाद रेल इंजन मुख्यतः भाप से चलते थे। समय के साथ डीजल इंजन आए, लेकिन पर्यावरणीय और आर्थिक कारणों से विद्युत इंजन की ओर रुझान बढ़ा। 2023 तक 85% से अधिक रेल मार्गों का विद्युतीकरण किया जा चुका है। शत-प्रतिशत विद्युतीकरण का लक्ष्य जल्द ही प्राप्त किया जा रहा है, जिससे ईंधन लागत में कमी और पर्यावरण संरक्षण संभव हुआ है।

3. उच्च गति व आधुनिक ट्रेन सेवाएँ (High speed and modern train services)

राजधानी एक्सप्रेस (1969) और शताब्दी एक्सप्रेस (1988) ने तेज़ गति और आरामदायक यात्रा की शुरुआत की।हाल ही में वंदे भारत एक्सप्रेस जैसी सेमी-हाई स्पीड ट्रेनों ने भारत को आधुनिक रेल युग में प्रवेश दिलाया है। बुलेट ट्रेन (मुंबई-अहमदाबाद परियोजना) पर भी कार्य प्रगति पर है।

4. डिजिटलीकरण और टिकटिंग प्रणाली में सुधार (Digitisation and improvement of ticketing system)

ऑनलाइन टिकट बुकिंग (IRCTC), मोबाइल ऐप, e-catering, और स्टेशन पर डिजिटल डिस्प्ले जैसी सुविधाओं ने यात्रियों के अनुभव को सुगम बनाया है। रेल मदर सिस्टम और AI आधारित निगरानी प्रणाली भी लागू की जा रही है।

5. माल ढुलाई में सुधार (Improvement in freight transport)

समर्पित माल गलियारे (Dedicated Freight Corridors) जैसे ईस्टर्न और वेस्टर्न DFC, माल परिवहन को तेज, कुशल और लागत-प्रभावी बना रहे हैं। यह भारत की लॉजिस्टिक्स क्षमता को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बना रहा है।

6. सुरक्षा एवं स्वच्छता में सुधार (Improvements to safety and hygiene)

बायो-टॉयलेट्स, CCTV, ऑटोमैटिक फायर अलार्म, कोच की गुणवत्ता में सुधार, और स्टेशन विकास योजनाएं चलाई गईं। 'स्वच्छ रेल, स्वच्छ भारत' अभियान के तहत रेलवे स्टेशनों और ट्रेनों में साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दिया गया।

आज़ादी के बाद भारतीय रेल परिवहन प्रणाली ने जिस तीव्र गति से आधुनिकता, सुलभता और सर्वसुलभता की दिशा में कदम बढ़ाया है, वह उल्लेखनीय है। यह न केवल देश की अर्थव्यवस्था की धुरी बनी है, बल्कि करोड़ों लोगों के लिए आवागमन का भरोसेमंद माध्यम भी। भविष्य में हरित ऊर्जा, बुलेट ट्रेन और AI आधारित संचालन प्रणाली जैसे नवाचार भारतीय रेल को वैश्विक मानकों तक पहुँचाने में सहायक होंगे।

वायु परिवहन (Air Transport)

भारत में वायु परिवहन की शुरुआत ब्रिटिश काल में हुई थी, जब 1911 में पहली बार डाक ले जाने के लिए हवाई सेवा का प्रयोग हुआ। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वायु परिवहन का व्यापक विस्तार हुआ और यह देश के तीव्रतम परिवहन साधन के रूप में उभरा। आज़ादी के समय भारत में केवल कुछ सीमित हवाई अड्डे और निजी एयरलाइंस मौजूद थीं, जिनकी पहुँच सीमित थी और सेवा सुविधाएँ न्यूनतम थीं।

आज़ादी के बाद वायु परिवहन में प्रमुख प्रगति (Major developments in air transport after independence)

1. राष्ट्रीयकरण और 'एयर इंडिया' का विकास (Nationalisation and Growth of Air India)

1953 में भारत सरकार ने देश की प्रमुख एयरलाइंस को मिलाकर वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया। इससे दो सार्वजनिक उपक्रम बने: एयर इंडिया (अंतरराष्ट्रीय उड़ानों के लिए),इंडियन एयरलाइंस (घरेलू उड़ानों के लिए), इससे वायु परिवहन का संचालन सुव्यवस्थित और सुलभ हुआ।

2. हवाई अड्डों का विस्तार और आधुनिकीकरण (Expansion and modernization of airports)

स्वतंत्रता के बाद देशभर में नए हवाई अड्डों का निर्माण हुआ और पुराने हवाई अड्डों का आधुनिकीकरण किया गया। प्रमुख अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डों (दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, हैदराबाद) को वैश्विक मानकों के

अनुसार उन्नत किया गया। एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया (AAI) की स्थापना 1995 में की गई, जिसने हवाई अड्डों के संचालन और विकास को नियंत्रित किया।

3. निजीकरण और प्रतियोगिता का प्रवेश (Privatisation and entry of competition)

1990 के दशक के बाद आर्थिक उदारीकरण के दौर में निजी एयरलाइंस को क्षेत्र में प्रवेश मिला। जेट एयरवेज, स्पाइसजेट, इंडिगो, गोएयर जैसी कंपनियों ने सेवाओं की गुणवत्ता और किफायती दरों को बढ़ावा दिया। इससे हवाई यात्रा अब केवल अमीरों तक सीमित न रहकर आम जनता की पहुँच में भी आ गई।

4. उड़ान योजना (UDAN) और क्षेत्रीय कनेक्टिविटी (UDAN scheme and regional connectivity)

2017 में शुरू की गई 'उड़ान' (UDAN - Ude Desh ka Aam Nagrik) योजना के अंतर्गत छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों को हवाई सेवा से जोड़ा गया। सस्ती टिकट दरों के साथ कई नए हवाई मार्ग शुरू किए गए। इससे पर्यटन, व्यापार और क्षेत्रीय विकास को बल मिला।

5. तकनीकी विकास और डिजिटल सेवा (Technological Development and Digital Services)

ई-टिकटिंग, मोबाइल ऐप्स, सेल्फ चेक-इन कियोस्क, और डिजिटल बोर्डिंग पास जैसी सेवाओं ने यात्रा को अधिक सहज और आधुनिक बनाया। सुरक्षा प्रबंधन में भी आधुनिक तकनीकों जैसे स्कैनर, CCTV, बायोमेट्रिक पहचान आदि का प्रयोग बढ़ा है।

6. नागरिक उड्डयन नीति और निवेश (Civil Aviation Policy and Investment)

राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन नीति (NCAP), 2016 ने एयरलाइन संचालन, FDI, और ग्राहक सुविधाओं में सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। भारत में 100% विदेशी निवेश (FDI) की अनुमति कुछ परिस्थितियों में दी गई, जिससे वैश्विक कंपनियों ने रुचि दिखाई।

स्वतंत्रता के बाद भारत में वायु परिवहन का विकास तीव्र गति से हुआ है। जहां यह क्षेत्र एक समय विशिष्ट वर्ग तक सीमित था, वहीं आज यह देश के हर नागरिक के लिए सुलभ हो रहा है। UDAN योजना, निजीकरण, आधुनिक हवाई अड्डे और तकनीकी उन्नयन ने भारतीय वायु परिवहन को वैश्विक मानचित्र पर स्थापित किया है। भविष्य में ड्रोन परिवहन, ग्रीन एविएशन और स्मार्ट एयरपोर्ट जैसे नवाचार इस क्षेत्र को और ऊँचाइयों तक ले जाएंगे।

जलीय परिवहन (Water Transport)

भारत में जलीय परिवहन की परंपरा प्राचीन काल से रही है। समुद्री व्यापार और नदी मार्गों से परिवहन भारत की समृद्ध व्यापारिक संस्कृति का हिस्सा रहा है। लेकिन औपनिवेशिक शासन और समय के साथ इस क्षेत्र की उपेक्षा हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने जलीय परिवहन के विकास की दिशा में अनेक प्रयास किए, जिससे यह क्षेत्र पुनः गति पकड़ने लगा।

आज़ादी के बाद जलीय परिवहन में प्रमुख प्रगति:

1. बंदरगाहों का विकास (Development of ports)

1947 के समय भारत में केवल कुछ प्रमुख बंदरगाह (जैसे मुंबई, कोलकाता, चेन्नई) ही सुचारु रूप से कार्यरत थे।

स्वतंत्रता के बाद 13 प्रमुख बंदरगाह (12 सरकार द्वारा संचालित और 1 निजी - एन्नोर) और 200 से अधिक छोटे-बड़े बंदरगाहों का विकास हुआ। जवाहरलाल नेहरू पोर्ट (नवी मुंबई) को आधुनिक कंटेनर पोर्ट के रूप में विकसित किया गया, जो अब भारत का सबसे व्यस्त पोर्ट है।

2. राष्ट्रीय जलमार्गों की घोषणा (Declaration of National Waterways)

भारत सरकार ने नदियों और जलाशयों को परिवहन हेतु प्रयुक्त करने की योजना बनाई। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय जलमार्ग अधिनियम, 2016 पारित हुआ, जिसके तहत 111 राष्ट्रीय जलमार्गों को चिन्हित किया गया।

प्रमुख जलमार्ग:

- राष्ट्रीय जलमार्ग-1: गंगा (इलाहाबाद से हल्दिया)
- राष्ट्रीय जलमार्ग-2: ब्रह्मपुत्र (सदीया से धुबरी)
- राष्ट्रीय जलमार्ग-3: पश्चिमी तट नहर (केरल)

3. इनलैंड वॉटरवेज अथॉरिटी ऑफ इंडिया (IWAI) (Inland Waterways Authority of India (IWAI))

1986 में IWAI की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य देश के अंतर्देशीय जलमार्गों का विकास और प्रबंधन करना है। इसके अंतर्गत जलमार्गों की ड्रेजिंग, नेविगेशन सुविधाओं, टर्मिनल निर्माण आदि कार्य किए गए।

4. समुद्री परिवहन एवं शिपिंग उद्योग का विकास (Development of Maritime Transport and Shipping Industry)

शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (SCI) की स्थापना 1961 में हुई। भारतीय नौवहन उद्योग ने अब वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करना शुरू कर दिया है। मेक इन इंडिया पहल के तहत जहाज निर्माण और मरीन इंजीनियरिंग को बढ़ावा दिया गया।

5. सागरमाला परियोजना (Sagarmala Project)

2015 में शुरू की गई यह महत्त्वाकांक्षी परियोजना भारत के तटीय क्षेत्र और बंदरगाहों को औद्योगिक क्लस्टरों से जोड़ने का कार्य कर रही है। इससे लॉजिस्टिक्स लागत में कमी, व्यापार वृद्धि और रोजगार सृजन को बढ़ावा मिला है। पोर्ट-लिंक्ड इंडस्ट्रियल क्लस्टर, कंटेनर टर्मिनल, और कोस्टल इकोनॉमिक ज़ोन जैसी योजनाएं चल रही हैं।

6. पर्यटन एवं यात्री सेवाओं का विस्तार (Expansion of tourism and passenger services)

कई नदियों (जैसे गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी) पर क्रूज़ सेवाएं और घाट-आधारित पर्यटन की शुरुआत की गई है। केरल के बैकवाटर क्षेत्र में हाउसबोट पर्यटन को सरकारी सहायता से बढ़ावा मिला है।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने जलीय परिवहन क्षेत्र में धीरे-धीरे किन्तु स्थायी प्रगति की है। बंदरगाहों के आधुनिकीकरण, राष्ट्रीय जलमार्गों के विकास, सागरमाला जैसी योजनाओं और समुद्री व्यापार के विस्तार ने इस क्षेत्र को एक नई दिशा दी है। भविष्य में यह क्षेत्र भारत की हरित, सस्ती और टिकाऊ परिवहन नीति का अभिन्न अंग बन सकता है।

संचार सेवा (डाक-तार, दूरभाष, इण्टरनेट)(Communication services (post, telegraph, telephone, internet))

भारत में संचार सेवाओं की भूमिका सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक जीवन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय संचार का स्वरूप सीमित और धीमा था। डाक और तार ही प्रमुख माध्यम थे और ये भी मुख्यतः शहरी क्षेत्रों तक सीमित थे। लेकिन आज़ादी के बाद भारत ने संचार के क्षेत्र में जबरदस्त विकास किया है, जिससे यह देश आज वैश्विक डिजिटल युग का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन चुका है।

1. डाक सेवा में प्रगति (Progress in the postal service)

डाक सेवा का नेटवर्क सीमित था और मुख्यतः शहरी क्षेत्रों तक सीमित था। डाक पहुँचने में कई दिन लग जाते थे। भारत में विश्व का सबसे बड़ा डाक नेटवर्क स्थापित हुआ — 2023 तक 1.5 लाख से अधिक डाकघर, जिनमें 90% ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं। स्पीड पोस्ट, रजिस्टर्ड डाक, कोरियर सेवा, ई-मनी ऑर्डर, और इंडिया पोस्ट पेमेंट्स बैंक जैसे नवाचार सामने आए। डिजिटल युग में डिजिटल इंडिया मिशन के अंतर्गत डाकघरों का कम्प्यूटरीकरण और ग्रामीण डाक सेवकों को स्मार्टफोन से लैस किया गया।

2. तार सेवा का युग (The era of Telegraph service)

तार सेवा (Telegraph) का युग और उसका अवसान तार सेवा (टेलीग्राफ) त्वरित संचार का प्रमुख माध्यम थी। कई दशकों तक सरकार और आम जन के बीच तेज़ संचार का यही मुख्य माध्यम रहा। 2013 में भारत में तार सेवा औपचारिक रूप से बंद कर दी गई, क्योंकि मोबाइल और इंटरनेट ने उसकी जगह ले ली।

3. दूरभाष सेवा में प्रगति (Advancement in telephone service)

टेलीफोन सेवा केवल प्रमुख शहरों में सीमित थी और बहुत महंगी थी। लाइन कनेक्शन पाना कठिन था, प्रतीक्षा सूची लंबी होती थी। 1980 के दशक में MTNL और BSNL की स्थापना हुई| 1990 के बाद आर्थिक उदारीकरण के साथ निजी कंपनियाँ (जैसे Airtel, Vodafone) आईं। मोबाइल फोन क्रांति के कारण आज हर हाथ में मोबाइल है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा मोबाइल यूजर देश बन गया है। 4G सेवा ने संचार को तेज और किफायती बना दिया, और अब 5G की शुरुआत हो चुकी है।

4. इंटरनेट सेवा में प्रगति (Progress in Internet service)

1995 में भारत में इंटरनेट सेवा की शुरुआत हुई (VSNL के माध्यम से)। प्रारंभ में यह सेवा बहुत सीमित और महंगी थी। डिजिटल इंडिया मिशन (2015) के तहत देशभर में इंटरनेट सेवाओं का विस्तार हुआ। Jio जैसी कंपनियों ने डेटा क्रांति ला दी, जिससे सस्ते इंटरनेट की पहुँच हर वर्ग तक हुई। आज भारत में 80 करोड़ से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं। ऑनलाइन शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, ई-गवर्नेंस और सोशल मीडिया ने डिजिटल संचार को जीवन का अनिवार्य हिस्सा बना दिया है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में संचार सेवाओं ने लंबी यात्रा तय की है — डाक और तार की धीमी सेवाओं से लेकर आज के तेज़ और डिजिटल युग तक। डाकघरों का आधुनिकीकरण, टेलीफोन की सर्वसुलभता और इंटरनेट की क्रांति ने भारत को डिजिटल युग के नेतृत्वकर्ता देशों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है। भविष्य में 6G, AI आधारित संचार, और स्मार्ट नेटवर्किंग भारत को और अधिक संप्रेषणीय और आत्मनिर्भर बनाएँगे।

शिक्षण क्षेत्र (स्कूल) (Teaching Area (School))

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय शिक्षा व्यवस्था बहुत ही सीमित और असमान थी। अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की कमी थी और साक्षरता दर मात्र 18% के आसपास थी। बालिकाओं, दलितों और पिछड़े वर्गों की शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। लेकिन आज़ादी के बाद सरकार ने शिक्षा को राष्ट्र निर्माण की आधारशिला माना और स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक सुधार एवं विस्तार की दिशा में कदम उठाए।

1950 में संविधान लागू होने के साथ ही अनुच्छेद 45 के अंतर्गत 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों (1968, 1986, 2020) के माध्यम से प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के ढांचे को मजबूत किया गया। सर्वशिक्षा अभियान (2001) और मध्याह्न भोजन योजना (Mid-Day Meal Scheme) जैसे कार्यक्रमों ने बच्चों को स्कूल में लाने और वहाँ टिकाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन योजनाओं से विशेष रूप से गरीब और वंचित वर्ग के बच्चों को लाभ हुआ।

इसके साथ ही विद्यालयों की संख्या, शिक्षक प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम में सुधार, बालिका शिक्षा और समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। डिजिटल युग में स्मार्ट क्लास, ई-पाठशाला, DIKSHA ऐप और ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से स्कूली शिक्षा में तकनीकी नवाचार हुए हैं। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत स्कूली शिक्षा के ढांचे को 5+3+3+4 प्रारूप में पुनर्गठित किया गया है, जिससे बच्चे की मानसिक और बौद्धिक विकास के विभिन्न चरणों को ध्यान में रखा गया है।

आज भारत की साक्षरता दर लगभग 77% तक पहुँच चुकी है और देशभर में लाखों सरकारी और निजी स्कूल बच्चों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। फिर भी, गुणवत्ता, अधोसंरचना और शिक्षक-छात्र अनुपात जैसे क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता बनी हुई है। कुल मिलाकर, आज़ादी के बाद भारत ने स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है और यह क्षेत्र सामाजिक समानता, आर्थिक विकास और राष्ट्रीय उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

चिकित्सा क्षेत्र (अस्पताल) (Medical Sector(Hospitals))

चिकित्सा क्षेत्र आधार संरचना की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है । देशवासियों को स्वस्थ रखने, देश में जन्मदर में स्थिरता लाने तथा मृत्युदर को नीचे लाने में चिकित्सा सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चिकित्सकीय सुविधाएं प्रदान करने के लिए देशभर में चिकित्सालयों की व्यवस्था की गयी है । परन्तु व्यवहार में देखा जा रहा है कि सरकारी चिकित्सालयों द्वारा प्रदान करने की जाने वाली चिकित्सा सुविधाएं महत्वपूर्ण होते हुए भी जनसंख्या के आकार के अनुपात में बहुत कम हैं।

यदि समग्र भारत में चिकित्सालयों के आकार पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि 1 जनवरी 2008 को भारत में 9976 चिकित्सालय एवं औषधालय थे। इन चिकित्सालयों एवं औषधालयों में कुल 4 लाख 83 हजार शैयाओं की व्यवस्था थी ।

अन्य सेवाएं (other services)

अधो-संरचना के अन्य क्षेत्रों के अन्तर्गत विद्युत तथा बैंकों को रखा जा सकता है । इनकी प्रगति क्रमशः अग्र प्रकार है ।

विद्युत (Electricity)

विद्युत या जल-विद्युत शक्ति का सबसे सस्ता साधन है। कोयला और पैट्रोल को निकालने तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में बहुत अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ती है । इसके विपरीत जल-विद्युत को तारों द्वारा आसानी से और कम व्यय पर दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है। विद्युत का एक लाभ यह है कि इनकी योजनाओं के साथ अन्य उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है, जैसे - बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, आन्तरिक जल परिवहन, मछली उद्योग का विकास आदि ।

भारत में पहला जलविद्युत शक्तिगृह सन् 1898 में दार्जिलिंग में स्थापित किया गया था जिसकी क्षमता 20 किलोवाट थी। इसके बाद 1903 में कर्नाटक में कावेरी नदी के जलप्रपात सिवासमुद्रम् पर 4200 किलोवाट शक्ति वाला बिजली बनाने वाला यन्त्र लगाया गया । यह विद्युत शक्ति 147 किलोमीटर दर स्थित कोलार की स्वर्ण खदानों को तारों के माध्यम से भेजी जाती थी । 1907 में जम्मू-कश्मीर में झेलम नदी पर मोहरा नामक स्थान पर 4500 किलोवाट शक्ति का यन्त्र लगाया गया। प्रथम महायुद्ध-काल में जल शक्ति के विकास को प्रोत्साहन मिला। 1915 में टाटा जलविद्युत योजना, 1922 में आंध्र घाटी शक्तिपूर्ति योजना तथा 1927 में टाटा शक्ति योजनाएं कार्यान्वित की गयीं। इसके उपरान्त अनेक राज्यों (तत्कालीन मद्रास, पंजाब, ट्रावनकोर, कोचीन, संयुक्त प्रान्त या वर्तमान उत्तर प्रदेश) में कई स्थानों पर जलशक्ति- गृह स्थापित किये गये। राज्य द्वारा संचालित शक्तिगृह में पायकरा (1932), जोगिन्द्रनगर (1935), मैटूर (1937), पल्लीवासल (1940), पापानासम (1943), तथा गंगा विद्युत ग्रिड योजना (1930-47) मुख्य हैं। 1930 तक देश में जल-विद्युत शक्ति की उत्पादन क्षमता 2.8 लाख किलोवाट हो गयी थी

देश में 1947 में मात्र 1400 मेगावाट बिजली उत्पन्न करने की क्षमता थी जो कि वर्ष 2000-01 में बढ़कर 101153.60 मेगावाट हो गयी। इसमें से 25219.55 मेगावाट पन, 71906.42 मेगावाट ताप (गैस तथा डीजल मिलाकर), 1269.63 मेगावाट पवन और 2758 मेगावाट परमाणु स्रोतों से मिलती है। 2000-01 में 4764.70 मेगावाट की अतिरिक्त क्षमता जोडने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। इस वर्ष 530 अरब यूनिट विद्युत उत्पादन करने का लक्ष्य रखा गया।

बैंक (Bank)

आजादी के बाद भारत में बैंकिंग क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। स्वतंत्रता के समय भारत में बैंकिंग प्रणाली सीमित और मुख्यतः शहरी क्षेत्रों तक ही सिमटी हुई थी, जिससे ग्रामीण जनता वित्तीय सेवाओं से वंचित थी। इस असमानता को दूर करने हेतु सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। 1955 में इंपीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण कर उसे भारतीय स्टेट बैंक (SBI) बनाया गया। इसके बाद 1969 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, जिससे बैंकिंग सेवाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार हुआ। 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर इस प्रक्रिया को और मजबूत किया गया।

बाद के वर्षों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs), सहकारी बैंकों और NABARD जैसे संस्थानों की स्थापना कर कृषि और ग्रामीण विकास को वित्तीय समर्थन दिया गया। 1991 के आर्थिक उदारीकरण के पश्चात बैंकिंग क्षेत्र में निजी और विदेशी बैंकों की भागीदारी बढ़ी, जिससे प्रतिस्पर्धा और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

2000 के बाद डिजिटल तकनीक के आगमन ने बैंकिंग को और अधिक सुलभ, सुरक्षित और तेज बनाया। कोर बैंकिंग सॉल्यूशन (CBS), इंटरनेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, UPI, भीम ऐप और डिजिटल भुगतान प्रणाली ने आमजन के लिए बैंकिंग को सहज बना दिया। वित्तीय समावेशन के उद्देश्य से जन धन योजना, आधार लिंकिंग और डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) जैसी योजनाओं ने गरीबों और वंचितों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ा।

इस प्रकार, आजादी के बाद भारत में बैंकिंग क्षेत्र ने ग्रामीण से लेकर शहरी भारत तक, गरीब से लेकर अमीर तक, सभी वर्गों को समाहित करते हुए सतत और समावेशी विकास की दिशा में लंबी यात्रा तय की है।

4.6 विभिन्न प्राकृतिक संसाधन और आजादी के पश्चात् उनकी प्रगति (Various natural resources and their progress after independence)

भारत के प्राकृतिक संसाधनों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है

4.6.1 भूमि एवं मिट्टियां (Land and Soils)

भारत की कुल भूमि 32.87 लाख वर्ग किलोमीटर है जो विश्व की कुल भूमि का 2.4 प्रतिशत है । इस पर विश्व की 17.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। यहां कुल भूमि का 52.7 प्रतिशत कृषि कार्यों में व 19.27 प्रतिशत भाग में वन हैं, शेष भाग में नगर, कस्बे, खनिज पदार्थ, उद्योग हैं अथवा वह भूमि उपयोग के योग्य नहीं है । भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं जो विभिन्न प्रकार की फसलें पैदा करने में सक्षम हैं। योजना आयोग के अनुसार भारत में 27 प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं । इस दृष्टि से भारत के प्राकृतिक संसाधनों को सर्वोत्तम कहा जाता है।

4.6.2 वन संसाधन (Forest Resources)

भारत में कुल भूमि के 6.41 लाख वर्ग किलोमीटर भाग में वन पाए जाते हैं जो कुल भूमि का लगभग 19.27 प्रतिशत हैं । इनसे हमें लकड़ी, उद्योगों को कच्चा माल, औषधियां, चारा तथा सरकार को भारी मात्रा में राजस्व की प्राप्ति होती है। इनसे जलवायु में सहायता मिलती है। वन मिट्टी के कटाव को रोकते हैं, रेगिस्तान को रोकने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है । इनके विदोहन के साथ-साथ इनका विकास भी अत्यन्त आवश्यक है ।

4.6.3 जल संसाधन (Water Resources)

प्रत्येक देश की आर्थिक क्रियाओं की सक्रियता जल पर ही निर्भर करती है। कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के साथ ही जल मानव जीवन के लिए परम आवश्यक तत्व है । भारत में अनुमानतः 310 करोड़ एकड़ फीट जल वर्षा से प्राप्त होता है जिसका एक तिहाई भाग भाप बनकर उड़ जाता है। 45 प्रतिशत नदियों में बह जाता है, और शेष जल को भूमि सोख लेती है । यद्यपि भारत जल की दृष्टि से एक सम्पन्न राष्ट्र कहा जा सकता है, तथापि भारत में अभी भी जितनी भूमि पर खेती होती है, उसके 37 प्रतिशत भाग को ही सिंचाई सुविधाएं प्राप्त हैं। इसका कारण जल का उचित नियोजन न होना है।

4.6.4 खनिज संसाधन संसाधन (Mineral Resources)

विकसित देशों की प्रगति का रहस्य इन देशों में खनिज संसाधनों की प्रचुरता है । आज सैकड़ों वस्तुओं के उत्पादन में खनिज पदार्थों का प्रयोग किया जाता है । देश के विकास के लिए लोहा, कोयला, पैट्रोलियम अत्यन्त आवश्यक हैं जो खनिज पदार्थों से मिलते हैं । इनके अतिरिक्त सोना, चांदी, मैगनीज, तांबा, सीसा, जस्ता, अल्युमिनियम, पोटाश, अभ्रक, टिन, थोरियम व यूरेनियम का आधुनिक युग में अत्यधिक महत्व है । इनमें से अधिकांश के उत्पादन में भारत आत्मनिर्भर है, लेकिन खनिज पदार्थों के उपयोग की दृष्टि से भारत अभी भी विकसित देशों की तुलना में काफी पीछे है ।

4.6.5 शक्ति के संसाधन (Resources of power)

आधुनिक समय में आर्थिक, औद्योगिक तथा सामाजिक विकास के लिए शक्ति के संसाधनों की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। आज के तकनीकी और पर्यावरणीय जागरूकता के युग में शक्ति संसाधनों का स्वरूप और उपयोग दोनों ही बदलते जा रहे हैं। पारंपरिक संसाधनों जैसे—लकड़ी, गोबर, कोयला और पैट्रोलियम के साथ-साथ अब परमाणु ऊर्जा, जलविद्युत, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और जैव ऊर्जा जैसे वैकल्पिक एवं नवीकरणीय स्रोतों का महत्त्व तेजी से बढ़ रहा है।

भारत अब शक्ति संसाधनों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की दिशा में मजबूती से आगे बढ़ रहा है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे 'ऊर्जा आत्मनिर्भर भारत', 'राष्ट्रीय सौर मिशन', 'हरित हाइड्रोजन मिशन', और 'ऊर्जा संरक्षण योजनाओं' के तहत स्वच्छ, सस्ती और सुलभ ऊर्जा सुनिश्चित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। भारत आज सौर ऊर्जा उत्पादन में विश्व के अग्रणी देशों में से एक है और अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन का नेतृत्व भी कर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत स्रोतों (जैसे गोबर एवं लकड़ी) का स्थान अब धीरे-धीरे बायोगैस, एलपीजी और बिजली ने लिया है।

पैट्रोलियम की निर्भरता को कम करने के लिए इलेक्ट्रिक वाहनों (EVs), बायोफ्यूल, और हरित ईंधन को बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही, परमाणु ऊर्जा और जलविद्युत का योगदान भी स्वच्छ ऊर्जा उत्पादन में निरंतर बढ़ रहा है।

इस प्रकार, आधुनिक भारत में शक्ति के संसाधनों का स्वरूप व्यापक, विविध और पर्यावरणोन्मुख हो गया है। ऊर्जा उत्पादन और उपयोग के इन नवीन तरीकों के माध्यम से भारत न केवल आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ़ रहा है, बल्कि सतत विकास और पर्यावरणीय संतुलन को भी सुदृढ़ कर रहा है।

4.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple choice questions):

1. भारत सरकार ने किस मिशन के अंतर्गत सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाए हैं?

a) उजाला योजना

b) राष्ट्रीय जल मिशन

c) राष्ट्रीय सौर मिशन

d) हर घर बिजली योजना

2. भारत में ऊर्जा आत्मनिर्भरता को बढ़ाने हेतु किस वाहन तकनीक को प्राथमिकता दी जा रही है?

a) डीजल वाहन

b) हाइड्रोजन बम

c) इलेक्ट्रिक वाहन

d) साइकिल

3. निम्नलिखित में से कौन-सा ऊर्जा स्रोत नवीकरणीय (Renewable) है?

a) कोयला

b) पेट्रोलियम

c) सौर ऊर्जा

d) प्राकृतिक गैस

4. 'अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन' का नेतृत्व कौन-सा देश कर रहा है?

a) अमेरिका

b) जर्मनी

c) भारत

d) चीन

2. सत्य /असत्य (True/False):

1. भारत में अब भी शक्ति के संसाधनों के रूप में केवल परंपरागत साधनों का प्रयोग होता है।

2. भारत में हरित हाइड्रोजन मिशन का उद्देश्य स्वच्छ ईंधन को बढ़ावा देना है।

3. बायोगैस और एलपीजी को परंपरागत ऊर्जा स्रोत माना जाता है।

4. भारत ने 100% ऊर्जा आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है।

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति (Fill in the blanks):

1. भारत में शक्ति के संसाधनों को _______ और नवीकरणीय श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

2. _______ ऊर्जा को वर्तमान में स्वच्छ और दीर्घकालिक ऊर्जा स्रोत माना जाता है।

3. भारत सरकार द्वारा शुरू की गई _______ योजना का उद्देश्य हरित ईंधन को बढ़ावा देना है।

4. भारत विश्व में _______ ऊर्जा उत्पादन के मामले में अग्रणी देशों में से एक है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न (Very short answer type questions)

1. विचार या भाव संप्रेषण के माध्यम को किस नाम से जाना जाता है?

2. भारत में प्रथम रेल की शुरुआत कब हुई?

3. शिक्षा व्यवस्था के मुख्यतः कौन से तीन स्तर हैं?

4. परिवहन के विभिन्न साधनों के नाम बताइये ।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short answer type questions)

1. रेलों के विकास पर 50 शब्दों में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

2. भारत के सड़क परिवहन की वर्तमान स्थिति क्या है?

3. वर्तमान में चिकित्सालयों के विभिन्न कार्यों का उल्लेख कीजिए ।

4. कम्प्यूटर के विभिन्न उपयोग कौन-कौन से हैं?

4.8 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशीलता प्रदान करने में अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है । आज विश्व की अर्थव्यवस्थाओं में, भारतीय अर्थव्यवस्था को उच्च 12वें स्थान पर देखा जा रहा है तो इसका प्रमुख कारण है, यहां पर प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता और उन प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन करके अधो- संरचनात्मक ढांचे का विस्तार। यदि भूमि, वन, जल जैसे प्राकृतिक संसाधन न केवल अर्थव्यवस्था, अपितु हमारे जीवन का प्राणतत्व है। कोयला, पैट्रोलियम तथा विभिन्न प्रकार की धातुएं जैसे खनिज औद्योगिक क्षेत्र को संजीवनी प्रदान करते है। इसी प्रकार अस्पताल हमें शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रखते हैं तो शिक्षण केन्द्र हमें मानसिक रूप से उन्नत व प्रगतिशील बनाने का कार्य करते हैं। परिवहन सेवाएं, पत्रालय, दूरभाष, कम्प्यूटर हमारे व्यावसायिक व व्यावहारिक क्रियाकलापों को सुगम व तीव्रगामी बनाने में

उपयोगी हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि भारत की अर्थव्यवस्था को बेहतर आकार प्रदान करने में अधो- संरचनात्मक ढांचा तथा यहां के प्राकृतिक संसाधनों की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

4.9 शब्दावली (Glossary)

- **अधोसंरचना(Infrastructure) -** यह आधार संरचना का समानार्थी है । प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था की उन्नति अधो-संरचनात्मक ढांचे की प्रगति पर ही निर्भर करती है।
- **प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)-** प्रकृति द्वारा प्रदान की गयी सुविधाओं (जिनके लिए हमें कोई मूल्य नहीं चुकाना पड़ता है) को प्राकृतिक संसाधन की संज्ञा दी जाती है। इस श्रेणी में भूमि, जलवायु, खनिज पदार्थ जैसे- पैट्रोलियम, कोयला, लोहा, तांबा, जस्ता, सोना, हीरा, चांदी आदि सम्मिलित हैं।
- **खनिज(Minerals) -** खनन से खनिज शब्द बना है। खनन का अर्थ है- खोदना । अतः जमीन की खुदाई करके प्राप्त किये जाने वाले पदार्थों को खनिज पदार्थ या खनिज तत्व कहा जाता है । पैट्रोलियम, धातुएं आदि को मूल रूप से जमीन को खोदकर ही निकाला जाता है। धरती के भीतर अनेक प्रकार के खनिज तत्व जगह-जगह भरे पड़े हैं। इसी आधार पर धरती को रत्नगर्भा भी कहा जाता है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां कोई न कोई तत्व धरती के अन्दर न हो।
- **डिजिटलीकरण (Digitization)** - जानकारी, दस्तावेज़ों और सेवाओं को डिजिटल स्वरूप में परिवर्तित करने की प्रक्रिया।
- **राष्ट्रीयकरण(Nationalization)** - निजी स्वामित्व वाली संस्थाओं या उद्योगों को सरकारी नियंत्रण में लाने की प्रक्रिया।
- **Privatization (निजीकरण)** - सरकारी स्वामित्व वाली इकाइयों को निजी क्षेत्र को हस्तांतरित करने की प्रक्रिया।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

1. c) राष्ट्रीय सौर मिशन

2. c) इलेक्ट्रिक वाहन

3. c) सौर ऊर्जा

4. c) भारत

2. सत्य /असत्य (True/False):

1. गलत

2. सही

3. गलत

4. गलत

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति (Fill in the blanks):

1. पारंपरिक

2. परमाणु

3. हरित हाइड्रोजन मिशन

4. सौर

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली। -
- लाल एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

4.12 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6" Ed.

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भूमि तथा खनिज कैसे संसाधन हैं? इनके महत्व एवं प्रयोग पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका को दर्शाइये।

3. क्या अधो-संरचनात्मक ढांचे का विकास किये, एक देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सकता है? यदि नहीं तो क्यो?

इकाई – 5 भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व, एवं नवीन व्यूह रचना (Nature, importance and new strategy of agriculture in India)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)
5.2 उद्देश्य (Objectives)
5.3 कृषि की प्रकृति (Nature of agriculture)
5.4 कृषि का महत्व (Importance of agriculture)
5.5 नवीन कृषि रणनीति (Innovative agricultural strategy)
5.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
5.7 सारांश (Summary)
5.8 शब्दावली (Glossary)
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
5.11 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले दो दशकों से अधिक समय तक औद्योगीकरण और सेवा क्षेत्र के तीव्र विकास के बावजूद कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में विशेष और अविचल स्थान बना हुआ है। इसका प्रमुख कारण यह है कि खाद्य सुरक्षा किसी भी समाज और सरकार की प्राथमिक आवश्यकता है। आज भी भारत की लगभग 43% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, जो इसे न केवल एक आर्थिक गतिविधि बल्कि जीवन का आधार बनाती है।

माल्थस ने अपने सिद्धांत में यह बताया था कि जनसंख्या में वृद्धि ज्यामितीय (2,4,8,16,...) होती है, जबकि खाद्यान्न उत्पादन अंकगणितीय (1,2,3,4,...) गति से होता है। यह विचार आज भी प्रासंगिक है, विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण, और जल संकट जैसे कारकों के संदर्भ में, जो कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे में जनसंख्या नियंत्रण के साथ-साथ, स्मार्ट और टिकाऊ कृषि तकनीकों को अपनाना अत्यावश्यक हो गया है।

भारत सरकार ने पिछले कुछ वर्षों में डिजिटल कृषि, ड्रोन तकनीक, सटीक कृषि (Precision Farming), किसान क्रेडिट कार्ड, PM-KISAN योजना, और ई-नाम (e-NAM) जैसे प्लेटफॉर्म के माध्यम से कृषि क्षेत्र को आधुनिक बनाने का प्रयास किया है। इसके अलावा, कृषि में जैविक उत्पादन, नवाचार, क्लाइमेट-स्मार्ट एग्रीकल्चर, और माइक्रो इरिगेशन (PMKSY) जैसी योजनाएं भी लागू की गई हैं।

हालाँकि भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान धीरे-धीरे घटकर लगभग 16-18% रह गया है, फिर भी यह क्षेत्र रोज़गार, कच्चा माल, और खाद्य आपूर्ति के लिए सबसे बड़ा स्रोत बना हुआ है। साथ ही, हाल के वर्षों में खाद्य वस्तुओं की बढ़ती कीमतें सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुकी हैं, जो संकेत देती हैं कि कृषि उत्पादन और आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन में अब भी कई सुधार की आवश्यकता है।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक हो गया है कि भारत में कृषि को सिर्फ जीवनयापन का साधन नहीं बल्कि एक रणनीतिक, नवाचार-समर्थित और लाभकारी क्षेत्र के रूप में देखा जाए। इस इकाई में हम भारतीय कृषि की प्रकृति, उसकी वर्तमान चुनौतियाँ, महत्व और नवीन कृषि रणनीतियों की विस्तार से चर्चा करेंगे, जिससे यह क्षेत्र आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में अपनी निर्णायक भूमिका निभा सके।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ भारतीय कृषि की प्रकृति को जानना जैसे फसल मौसम, फसलों का वर्गीकरण, प्रमुख कृषि आगत।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका को रेखांकित करना।
- ✓ कृषि क्षेत्र में अपनायी गई रणनीति की विवेचना।

5.3 कृषि की प्रकृति (Nature of agriculture)

5.3.1 भारत में मुख्य रूप से तीन फसल मौसम हैं -

खरीफ, रबी, तथा जायद, पर मुख्य फसलें खरीफ तथा रबी हैं। खरीफ की फसल जुलाई में बोई जाती है और सितम्बर के अन्त तथा अक्टूबर में काटी जाती है। खरीफ की फसल के अन्तर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, तिल, गन्ना, सोयाबीन, मूँगफली की फसलें प्रमुख है। रबी की फसल अक्टूबर में बोयी जाती

है और अप्रैल में काटी जाती हैं। गेंहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों इत्यादि रबी की प्रमुख फसलें हैं। जायद फसल कुछ स्थानों पर होती हैं जिसकी अवधि मार्च से जून होती है। इसके अन्तर्गत खरबूज, तरबूज, ककड़ी एवं सब्जियां आती है।

5.3.2 फसलें दो भाग में बांटी जा सकती है: -

1. खाद्य फसलें जैसे गेंहूँ, चावल, चना, मटर आदि जो सामान्यतया स्थानीय उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उगायी जाती है।

2. अखाद्य फसलें जो स्थानीय उपयोग तक सीमित नहीं रहती बल्कि बेच करके आय अर्जित करने के उद्देश्य से उगायी जाती हैं। ये फसलें कच्चे रूप में या अर्ध विधायित रूप में बेच दी जाती है। सरसों, तिल, अलसी, मूँगफली, रेड़ी, सूरजमुखी, गन्ना, जूट, सनई, चाय, रबड़ आदि व्यापारिक फसलों में शामिल हैं। फसल उगाये जाने वाले क्षेत्र के लगभग 18% भाग पर हो व्यापारिक फसलें उगायी जाती हैं पर इसे प्राप्त होने वाले उत्पादन का मूल्य कुल कृषि उत्पादन के मूल्य के 40% से अधिक है। व्यापारिक फसलों के दो रूप हो सकते हैं-

(क) बागान फसलें जो पौधों तथा वृक्षों के रूप में की जाती हैं जैसे- काफी, रबड़, चाय, नारियल आदि।

(ख) खेत की फसल जो खेतों में की जाती हैं जैसे- कपास, जूट, गन्ना, तिलहन, तम्बाकू, अफीम तथा कुछ मसाले।

वणिज्य फसलों और खाद्य फसलों में पारम्परिक भेद अब अपना महत्व खोता चला जा रहा है। खाद्यान्न फसलों की खेती भी अब नयी टकनालाजी के प्रभावधीर अधिक लाभदायक बन गई है।

फसल वितरण का स्वरूप (प्रतिशत में)

अवधि	सभी फसलें	खाद्य फसलें	अखाद्य फसलें (Non-Food)
1950–51	100%	74%	26%
1970–71	100%	78%	22%
1980–81	100%	80%	20%
2005–06	100%	74%	26%
2022–23	100%	~72%	~28%

हालिया डेटा दर्शाते हैं कि भारत में कुल खाद्य उत्पादन (धान, गेहूं, दलहन, तिलहन, आदि) की मात्रा में तेजी आई है| 2022-23 में खाद्यान्न उत्पादन 3296.9 लाख टन पर पहुंच गया है

इसी अवधि में तेल बीज (सोयाबीन, सरसों, groundnut इत्यादि) और फाइबर/उद्योग फसलें (कपास, गन्ना, जूट आदि) का उत्पादन भी रिकॉर्ड स्तर पर रहा, 413.6 लाख टन तेल बीज; 336.6 लाख बालों में कपास व 4905 लाख टन गन्ना।

कृषि क्षेत्र की सतत विविधीकरण एवं उच्च-मूल्य वाली फसलों के विस्तार को देखते हुए, यह मानते हुए कि कुल फसल क्षेत्र लगभग वैसा ही बंटा हुआ है, 2022–23 में खाद्य फसलों का क्षेत्र लगभग 72% और अखाद्य फसलों का क्षेत्र लगभग 28% माना जा सकता है।

5.3.3 प्रमुख कृषि आगत (Major agricultural inputs):-

1. भूमि का उपयोग (Land utilisation)- भूमि उपयोग की दृष्टि से भारत में बोई गई भूमि (Gross Cropped Area) का क्षेत्रफल स्वतंत्रता के बाद निरंतर बढ़ा है। वर्ष 1950-51 में यह क्षेत्रफल लगभग 1287.5 लाख हेक्टेयर था, जो 1994-95 तक बढ़कर 1428.2 लाख हेक्टेयर हो गया। इसके पश्चात तकनीकी प्रगति, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और दोहरी फसल प्रणाली को अपनाने के कारण बोई गई भूमि का क्षेत्रफल और अधिक बढ़ा। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, 2021-22 तक बोई गई भूमि का क्षेत्रफल लगभग 1800 लाख हेक्टेयर के आसपास पहुँच चुका है। हालांकि, भौगोलिक सीमाओं और शहरीकरण के कारण शुद्ध कृषि योग्य भूमि में अधिक विस्तार संभव नहीं हो पाया है, लेकिन अधिक फसल चक्रों, उन्नत बीजों और वैज्ञानिक खेती की विधियों से उत्पादन क्षमता में निरंतर वृद्धि हुई है। वर्तमान परिदृश्य में भारत भूमि उपयोग की दक्षता को बढ़ाने, सतत कृषि को अपनाने और मृदा संरक्षण पर अधिक ध्यान केंद्रित कर रहा है, ताकि सीमित भूमि संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जा सके। यह परिवर्तन कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भरता और खाद्य सुरक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

2. बीज (Seed) - विभिन्न फसलों के प्रमाणित बीजों के उत्पादन तथा वितरण को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम तथा 1969 में स्टेट फार्मर्स कारपोरेशन आफ इण्डिया की स्थापना की।

(क) प्रजनक बीज (Breeder seed)- बीज उत्पादन में यह प्रथम चरण है और इसका उत्पादन इण्डियन कौसिल आफ एग्रीकलचरल रिसर्च (ICAR) तथा भारतीय कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा होता है ।

(ख) फाउण्डेशन बीज (Foundation Seed) - इसका उत्पादन प्रजनक बीजों द्वारा किया जाता है । इस बी का उत्पादन राष्ट्रीय बीज निगम, स्टेट फार्म कारपोरेशन आफ इण्डिया, कृषि विश्वविद्यालयों तथा उन राज्यों में जहाँ बीज निगम नहीं, वहाँ कृषि विभाग द्वारा किया जाता है।

(ग) प्रमाणित बीज (Certified Seeds)- ये फाउण्डेशन बीज के प्राजेनी होते है ।

(घ) क्वालिटी बीज (Quality Seeds)- ये प्रमाणित बीज के स्टैण्डर्ड के होते है पर इनका उत्पादन फाउण्डेशन बीजों द्वारा नहीं किया जाता है ।

(ङ) जेनेंटिकली माडी फाइड बीज (Genetically modified seeds)- कृषि पौधे के प्राकृतिक जीन में कृत्रिम उपायों द्वारा उसकी मूल संरचना में परिवर्तन करके ये बीज तैयार किये जाते हैं । विभिन्न लाभों के अलावा इन फसलों के साथ जोखिम तथा हानियाँ भी जुड़ी है, जिनका परीक्षण करके ही इनका इस्तेमाल करना चाहिए।

3. उर्वरक (Fertilizer)- आज के परिप्रेक्ष्य में भारत उर्वरकों के उत्पादन और खपत में चीन और अमेरिका के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा देश बना हुआ है। भारत अब भी यूरिया के उत्पादन में लगभग 100% आत्मनिर्भर है, जबकि डीएपी (डाय-अमोनियम फॉस्फेट) का घरेलू उत्पादन लगभग 60-70% तक सीमित है और शेष आयात पर निर्भर है। यूरिया अब भी सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला उर्वरक है, उसके बाद नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक और डीएपी का स्थान आता है। सरकार नैनो यूरिया, हरित उर्वरक और सब्सिडी सुधार जैसी योजनाओं के माध्यम से उर्वरकों के संतुलित उपयोग और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दे रही है।

4. सिंचाई (Irrigation)- भारत में सिंचाई के स्रोतों में नहर, कुआँ तथा तालाब प्रमुख हैं। कुल लगभग 35 प्रतिशत भाग नहर द्वारा सींचा जाता है । तालाबों द्वारा सिंचाई अधिकांशतया तमिलनाडू, आन्ध्र प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के कुछ भागों में की जाती है । 1978-79 के बाद से योजना आयोग ने परियोजनाओं को तीन भागों में बांटा है-

1. बड़ी सिंचाई परियोजनाएं -10,000 हेक्टेयर से अधिक खेती योग्य क्षेत्रफल हो ।

2. मध्यम सिंचाई योजनाएं - जिनके नियंत्रणाधीन 2,000 से 10,000 हेक्टेयर कृषि योग्य क्षेत्रफल हो।

3. छोटी सिंचाई योजनाएं - जिनके नियंत्रणाधीन 2,000 हेक्टेयर तक क्षेत्रफल हो ।

कमाण्ड एरिया डेवलपमेन्ट कार्यक्रम केन्द्र द्वारा समर्थित 1974-75 में चालू किया गया। यह चुने हुए वृहद तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं की सिंचाई क्षमता का तीव्र तथा उत्तम प्रयोग करता है । इसके अन्तर्गत फार्म पर किये जाने वाले अनेक विकास कार्यक्रम आते हैं जैसे खेतों पर नहर तथा नालियों का निर्माण, जमीन की सतह बराबर करना, खेतों की सड़कें, जोतों की चकबन्दी, बाउण्ड्री का निर्माण, बाराबण्डी या पानी की आवर्ती पूर्ति की व्यवस्था।

कमाण्ड क्षेत्र विकास और जल प्रबन्धन कार्यक्रम अप्रैल 2004 से शुरू इस कार्यक्रम का उद्देश्य बेहतर जल प्रबन्धन पद्धतियाँ तैयार करना तथा सिंचाई जल का कुशलतम प्रयोग करना है । सुपुर्दगी प्रणालियों में सुधार के साथ निर्माण कार्य की लागत बांटने में जल उपयोगकर्ताओं की भागीदारी सुनिश्चित करना ।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में पाइपों का नेटवर्क बिछा दिया जाता है और सिंचाई ऊपर से छिड़काव द्वारा होती है। इससे पानी की बचत के साथ-साथ प्रति हेक्टेयर अधिक उपज प्राप्त होती है ।

फर्टीगेशन फसलों को दिये जाने वाले पोषक तत्व सिंचाई के माध्यम से दिए जाते हैं। इससे उर्वरक की 25 प्रतिशत की होती है और पोषक तत्वों का पूर्ण उपयोग होता है । प्लास्टिक मल्चिंग विधि में दो पौधों के बीच की जमीन को काली प्लास्टिक या पॉलीथीन से ढक दिया जाता है ताकि पोषक तत्वों को संरक्षित किया जा सके।

5. कृषि का यन्त्रीकरण (Mechanisation of agriculture) - जहाँ भी सम्भव हो पशु तथा मानव शक्ति को मशीनरी द्वारा प्रतिस्थापित किया जाय। इससे बंजर भूमि को भी काश्त योग्य बनाया जा सकता है । कृषि विकास की प्रक्रिया यन्त्रीकरण के माध्यम से तेज की जा सकती है ।

5.4 कृषि का महत्व (Importance of agriculture)

कृषि आर्थिक विकास का आधार है । औद्योगिक विकास के लिए कृषि क्षेत्र का विकसित होना एक आवश्यक शर्त है। विकासशील देशों में आज भी जहाँ कृषि का प्रभुत्व है, कृषि वहाँ के आर्थिक विकास में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । कृषि क्षेत्र में कोई भी परिवर्तन सकारात्मक या नकारात्मक अर्थव्यवस्था पर गुणक प्रभाव डालता है। कृषि क्षेत्र खाद्य सुरक्षा बनाए रखने में मुख्य योगदान करता है । परिस्थितिकीय सन्तुलन को बनाये रखने के लिए, कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का पोषणीय एवं सन्तुलन विकास आवश्यक है। दुर्भाग्यवश हमारी अधिकतर पंचवर्षीय योजनाएं कृषि के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रहीं हैं। कृषि को सापेक्षतः कम महत्व दिया गया है और उद्योगों एवं सेवाओं को अधिक प्राथमिकता दी गई। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए यह चिन्ता का विषय है । कृषि में प्रति व्यक्ति उत्पादकता उद्योगों की तुलना में कम है।

5.4.1 खाद्यान्न तथा कच्चा माल द्वारा योगदान (Contribution by food grains and raw materials)-

किसानों द्वारा उत्पादित खाद्यान्न, माँस, दूध आदि उनके अपने भरण पोषण तथा पूरे देश की जनसंख्या के भरण पोषण का आधार है। पशुओं को जीवित रखने का चारा भी कृषि से प्राप्त होता है। शहरी जनसंख्या भी कृषि क्षेत्र के अतिरेक पर निर्भर है। उपभोक्ताओं की उपभोग टोकरी कितनी पोषक है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि कृषि क्षेत्र विभिन्न पोषक तत्वों युक्त खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उत्पादित करे और उचित विपणन व्यवस्था द्वारा वह लोगों को उचित मूल्यों पर उपलब्ध हो। कृषि से हमारे प्रमुख उद्योगों को कच्चा माल मिलता है। कपड़ा, चीनी, जूट, चाय, वनस्पति, तेल, बागान उद्योग तथा अनेक प्रकार के प्रक्रियन उद्योग सीधे कृषि से प्राप्त कच्चे माल पर आधारित है। हथकरघा बुनाई, तेल निकालना, चावल कूटना आदि बहुत से लघु और कुटीर उद्योगों को भी कृषि से कच्चा माल मिलता है । बड़े उद्योगों के बहुत उप-उद्योग हैं जैसे चीनी उद्योग पर आधारित कछ रसायन उद्योग जो अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आधारित हैं । विभिन्न विकसित देशों के इतिहास पर दृष्टि डाले तो पायेंगे कि वहाँ कृषि की प्रगति ने औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया। भारत में भी आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए एक बार पुनः कृषि पर विशेष बल दिया जा रहा है तथा पंचवर्षीय योजनाओं में इसकी प्राथमिकता में प्रखरता लायी जा रही है । वर्तमान में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का विकास महत्वपूर्ण रूप धारण कर रहा है, जिसके कारण आय जनन और रोजगार जनन में वृद्धि हो रही है ।

5.4.2 औद्योगीकरण का कृषि में योगदान (Contribution of industrialization to agriculture)

औद्योगीकरण से लोगों को रोजगार मिलता है फलतः आय बढ़ने से भोजन की मांग बढ़ती है और खाद्य सामग्री के उत्पादन में उत्साहवर्धक वृद्धि होती है। कृषि में अनेक प्रकार के विस्तार होते हैं तथा कृषक खाद्य फसलों का उत्पादन ही न करके नकदी फसलों का उत्पादन भी प्रारम्भ कर देते हैं । औद्योगिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र को अनेक उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराता है तथा ग्रामीण क्षेत्र का जीवन स्तर ऊँचा उठता है जिससे उनकी उत्पादन क्षमता में और भी वृद्धि होती है । औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि क्षेत्र के समस्त उत्पादों की मांग बढ़ जाती है । औद्योगिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र को पूंजीगत वस्तुएं भी प्रदान करता है जैसे टैक्टर, ट्यूबवेल मशीन, कम्बाइन मशीन आदि यॉंत्रिक उपकरण जो उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है और लम्बे समय तक काम आते हैं।

5.4.3 कृषि एवं रोजगार का ढाँचा (Agriculture and employment structure)

आज के परिदृश्य में कृषि पर निर्भर कार्यकारी जनसंख्या में स्पष्ट गिरावट आई है। जहाँ 2001 की जनगणना के अनुसार कुल रोजगार का लगभग 59% कृषि क्षेत्र से आता था, वहीं हालिया Periodic Labour Force Survey (2022–23) में यह घटकर लगभग 41.5% रह गया है। इसी अवधि में "कृषक" (cultivators) का अनुपात 32% से घटकर करीब 23.7% और "कृषि मजदूर" का अनुपात 27% से घटकर लगभग 19.4% हुआ है। साथ ही कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी 2005–06 के 27% से घटकर अब लगभग 17–18% तक सीमित रह गया है। इस परिवर्तन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि-आधारित रोजगार सृजन के साथ-साथ गैर-कृषि उद्योगों, स्वरोजगार योजनाओं और कौशल विकास पर विशेष जोर देना अनिवार्य हो गया है। इससे न केवल कृषि भूमि पर श्रमशक्ति का दबाव कम होगा, बल्कि अदृश्य बेरोजगारी घटाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता और स्थायित्व लाने में मदद मिलेगी।

5.4.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और कृषि (International Trade and Agriculture)

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारतीय कृषि क्षेत्र अब भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, हालाँकि निर्यात में इसका प्रतिशत योगदान समय के साथ घटा है। 1950-51 में कुल निर्यात का लगभग 50% हिस्सा कृषि वस्तुओं का था, जिसमें चाय, तंबाकू, मसाले, कपास, चावल, गेहूँ, और तेलवाले बीज प्रमुख थे। लेकिन जैसे-जैसे भारत के निर्यात में इंजीनियरिंग, रसायन, वस्त्र, और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों का विस्तार हुआ, कृषि का हिस्सा सापेक्ष रूप से घटता गया। हाल के आंकड़ों के अनुसार, 2022-23 में कृषि और संबंधित उत्पादों का कुल निर्यात लगभग 50 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच चुका है, जो कुल भारतीय निर्यात का लगभग 11-12% है। चावल, मसाले, चीनी, बागवानी उत्पाद, मांस और डेयरी उत्पाद आज भी भारत के प्रमुख कृषि निर्यात हैं। इसके साथ ही "एक जिला एक उत्पाद", ई-नाम प्लेटफॉर्म, और कृषि निर्यात नीति (2018) जैसे सरकारी प्रयासों ने कृषि निर्यात को संगठित और प्रतिस्पर्धी बनाया है। कृषि निर्यात में यह बदलाव भारत की वैश्विक कृषि बाजार में स्थिर और रणनीतिक उपस्थिति को दर्शाता है, जबकि यह भी संकेत देता है कि विविधीकरण के बावजूद कृषि आज भी भारतीय व्यापार तंत्र की एक मजबूत कड़ी बनी हुई है।

5.4.5 कृषि क्षेत्र एवं खाद्य सुरक्षा (Agriculture sector and food security)

आज के संदर्भ में खाद्य सुरक्षा भारत सहित वैश्विक स्तर पर एक अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) द्वारा दी गई परिभाषा "सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन की भौतिक और आर्थिक उपलब्धता" आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है, लेकिन इसके आयाम अब और अधिक व्यापक हो गए हैं। भारत में जनसंख्या वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, आपूर्ति शृंखला की बाधाएँ, कृषि भूमि में कमी और पोषण असंतुलन जैसे मुद्दों ने खाद्य सुरक्षा की चुनौती को जटिल बना दिया है। हालाँकि सरकार द्वारा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 के माध्यम से लगभग 81 करोड़ लोगों को सब्सिडी वाले अनाज की गारंटी दी जा रही है, फिर भी पौष्टिकता, भंडारण क्षमता, वितरण व्यवस्था, और उत्पादन की स्थिरता जैसे क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता बनी हुई है।

PM Garib Kalyan Anna Yojana जैसे कार्यक्रमों ने कोविड-19 जैसी आपात परिस्थितियों में लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में बड़ी भूमिका निभाई। इसके साथ ही, कृषि में सतत उत्पादन प्रणाली, जैविक खेती, जल संरक्षण और मूल्यवर्धन जैसे प्रयास भी खाद्य सुरक्षा के दीर्घकालिक समाधान के रूप में उभर रहे हैं। भारत अब केवल अनाज की उपलब्धता पर नहीं, बल्कि पोषण सुरक्षा (nutritional security) और सुधारयुक्त वितरण प्रणाली पर भी बल दे रहा है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक व्यक्ति को न केवल भरपेट भोजन मिले, बल्कि वह स्वास्थ्यवर्धक और संतुलित भी हो। वर्तमान में खाद्य सुरक्षा नीतियों को जलवायु परिवर्तन, कृषि नवाचार और सामाजिक समावेशन से जोड़ना अत्यंत आवश्यक हो गया है, जिससे देश खाद्य आत्मनिर्भरता और स्थायित्व दोनों की दिशा में आगे बढ़ सके।

5.5 नवीन कृषि रणनीति (Innovative agricultural strategy)

भारत में 1960 के दशक में बढ़ती जनसंख्या, खाद्यान्न की कमी और विदेशी आयात पर बढ़ती निर्भरता ने कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव की आवश्यकता को जन्म दिया। इस पृष्ठभूमि में भारत सरकार ने वर्ष 1966-67 से नवीन कृषि रणनीति (New Agricultural Strategy) को अपनाया, जिसे सामान्य रूप से

"हरित क्रांति" (Green Revolution) के नाम से जाना जाता है। इस रणनीति का उद्देश्य परंपरागत कृषि पद्धतियों को वैज्ञानिक, आधुनिक और उत्पादक तकनीकों से प्रतिस्थापित कर खाद्यान्न उत्पादन में तीव्र वृद्धि लाना था, ताकि देश को खाद्य आत्मनिर्भरता प्राप्त हो सके।

नवीन कृषि रणनीति के अंतर्गत उच्च उत्पादक किस्मों के बीजों (HYV), रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था, यंत्रीकरण, कृषि ऋण की सुलभता, विस्तार सेवाओं और न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) जैसी अनेक योजनाओं को एकीकृत रूप से लागू किया गया। इसका प्रारंभिक प्रयोग 7 राज्यों के 9 जिलों में "Intensive Agricultural District Programme (IADP)" के तहत किया गया, और सफल परिणामों के बाद इसे पूरे देश में विस्तार दिया गया। विशेष रूप से गेहूं उत्पादन में पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की।

इस रणनीति के परिणामस्वरूप भारत ने खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त की, और कृषि उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इससे किसानों की आय बढ़ी, कृषि से जुड़े उद्योगों का विकास हुआ और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी उत्पन्न हुए। लेकिन यह रणनीति पूर्णतः समावेशी नहीं रही। यह कुछ राज्यों और कुछ फसलों तक ही सीमित रही, जिससे क्षेत्रीय असंतुलन, फसल विविधता में कमी, मृदा की गुणवत्ता में गिरावट और प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव जैसे दुष्परिणाम भी सामने आए।

वर्तमान में कृषि क्षेत्र को और अधिक समावेशी, टिकाऊ और तकनीकी रूप से उन्नत बनाने के लिए सरकार द्वारा कई नई योजनाएँ चलाई जा रही हैं, जैसे- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN), प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY), ई-नाम (e-NAM), प्राकृतिक खेती को बढ़ावा, और स्मार्ट एग्रीकल्चर की दिशा में प्रयास। इस प्रकार, नवीन कृषि रणनीति ने भारत की कृषि को एक नई दिशा दी, और वर्तमान में उसे नवाचार, समावेशन तथा सतत विकास की ओर अग्रसर किया जा रहा है।

तालिका 2- खाद्यान्नों के उत्पादन की प्रगति (लाख टन)

अवधि	चावल	गेहूँ	मोटे अनाज	कुल अनाज	कुल दालें	कुल खाद्यान्न
1990–91	350लाख टन	110 लाख टन	230लाख टन	690लाख टन	50 लाख टन	740लाख टन
2007–08	750लाख टन	550लाख टन	320लाख टन	1620लाख टन	140लाख टन	1760 लाख टन
2023–24	1378.3 लाख टन	1132.9 लाख टन	569.4 लाख टन	3322.9 लाख टन	242.5 लाख टन	3565.4 लाख टन

इस नीति के द्वारा अल्पकाल में अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है । खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता से खाद्य आयात पर निर्भरता कम हो जाती है, फलतः दुलर्भ विदेशी मुद्रा की बचत होती है, जिसका उपयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिए किया जा सकता है ।

5.5.1 नयी कृषि रणनीति की कमजोरियाँ (Weaknesses of the new agricultural strategy)

1. पूँजीवादी खेती का विकास (Development of capitalist farming)- अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों से अधिक उत्पादन पाने के लिए उर्वरकों और सिंचाई पर भारी निवेश करना पड़ता है, जो छोटे और

मध्यम श्रेणी के कृषकों की क्षमता के बाहर है। 6 प्रतिशत बड़े कृषकों के पास कुल भूमि का 40 प्रतिशत है और वे ही नयी कृषि नीति पर भारी निवेश करते हैं। बड़े फार्मों पर प्रति एकड़ अधिक पूँजी व्यय किया जाता है।

2. नयी कृषि रणनीति (New agricultural strategy)- उर्वरक प्रयोग के विस्तार में काश्तकारी खेती बड़ी बाधा है। पूँजीवादिता का महत्वपूर्ण आधार है अधिकतम लाभ कमाना। इससे यह स्पष्ट है कि काश्तकारों की अपेक्षा भू-स्वामी पूँजी सघन तकनीकी का उच्चतम प्रयोग कर सकेंगें। अतः यह आवश्यक है कि भारतीय कृषि में भू-सुधारों को सुदृढ़ किया जाय।

3. आय असामनता बढ़ना (Rising income inequality) - यद्यपि नई तकनीकी का लाभ सभी किसानों को मिला है परन्तु विभिन्न क्षेत्रों, छोटे और बड़े फार्मों और भूस्वामियों के बीच आय की असमानताएं बढ़ी हैं, भूमिहीन मजदूरों और मुजारों में खाई और चौड़ी हो गयी है। बहुत से छोटे किसानों को और ग्राम क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक तनाव बढ़े हैं। डॉ0 डी0पी0 चौधरी ने हरित क्रान्ति के सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है- "भू-सुधार के साथ पूँजी बाजार एवं ग्राम संस्थानों में उचित परिवर्तन द्वारा उत्पादन एवं उत्पादिता को अधिकतम करना सम्भव होगा और यह वितरण की असमानताओं को कम करने के साथ पूर्णतया संगत होगा "।

4. श्रम विस्थापन की समस्या (The problem of labor displacement)- हरित क्रान्ति के जैविकीय प्रभाव जो उत्पादन एवं उत्पादिता को प्रत्यक्ष रूप से बढ़ाते हैं जैसे उन्नत किस्म के बीज, खादों का प्रयोग तो यह रोजगार में महत्वपूर्ण गुणात्मक प्रभाव देते हैं। परन्तु यदि यांत्रिक नवाचारों जैसे टैक्टर, हार्वेस्ट कम्बाइन का शुद्ध रोजगार प्रभाव आंके तो यह नकारात्मक हो सकता है।

5. मोटे अनाजों (Millets)के अधीन क्षेत्रफल में कमी और उत्पादन में नाम मात्र वृद्धि।

6. दालों के उत्पादन (Production of pulses)में वृद्धि वाकई संतोषजनक गति से नहीं हो रही है। 1964–65 में दालों का उत्पादन 120 लाख टन था, जो 1990–91 में केवल 143 लाख टन तक बढ़ा-यानि लगभग 20% वृद्धि मात्र 25 वर्षों में। 2007–08 तक यह संख्या बढ़कर 150 लाख टन रही, जो असंतोषजनक सुधार दर्शाता है। हाल के वर्षों में कृषि में कई प्रयास हुए बावजूद, 2022–23 तक भारत का उत्पादन 270 लाख टन तक पहुँच गया|जिससे यह पिछले दशक में लगभग 50% बढ़ा। लेकिन जनसंख्या वृद्धि की गति और उपभोग मांग के कारण प्रति व्यक्ति उपलब्धता गिरकर 22.1 किलोग्राम (1951) से घटकर 16.4 किलोग्राम (2022) रह गई।

दालों का प्रति व्यक्ति दैनिक उपभोग ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान में लगभग 32 ग्राम प्रति दिन के आसपास है, जो पिछले कई दशकों के दौरान लगातार घट रहा है। अरहर और चना, जो कुल दाल उत्पादन का लगभग 60% हिस्सा बनते हैं, उत्पादन में सुधार के लिए मुख्य फोकस क्षेत्रों में रहने चाहिए। यदि इन फसलों की उत्पादकता और क्षेत्रफल दोनों में वृद्धि की रणनीति अपनाई जाए जैसे उन्नत किस्मों, इरिगेशन, इंटरक्रॉपिंग और फसल चक्र के माध्यम से तो दालों उत्पादन और प्रति व्यक्ति उपलब्धता दोनों में निश्चित सुधार संभव हैं।दालों की वृद्धि प्रतिशत नगण्य रही|1965 से 2007 तक केवल 25%,लेकिन 2007 से 2022 तक उत्पादन लगभग 80% बढ़ा। इसके बावजूद, प्रतिव्यक्ति उपलब्धता कम हुई, जिससे पोषण पर प्रभाव पड़ा। सुधार हेतु अरहर-चना पर केन्द्रित नई रणनीति, भूमि और उत्पादन वृद्धि के प्रयास अनिवार्य हैं।

7. खाद्य तेलों के उत्पादन (Production of edible oils)भारत अभी भी खाद्य तेलों के उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं है। 1970-71 में जहाँ इसका आयात मात्र 23 करोड़ रुपये था, वहीं 2004-05 में यह बढ़कर 11,770 करोड़ रुपये हो गया। वर्तमान में (2023-24) भारत लगभग 1.4 लाख करोड़ रुपये के खाद्य तेलों का आयात करता है। इससे दो मुख्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं विदेशी मुद्रा पर भारी दबाव और अंतरराष्ट्रीय बाजार पर घरेलू कीमतों की निर्भरता।

भारत एक महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ के लिए विश्व के अन्य देशों पर निर्भर है। पाँच दशकों के आयोजन के बावजूद भारतीय कृषि अभी भी मानसून में जुआ ही है । कहीं मानसून की विफलता से सूखा पड़ जाता है और किसी अन्य भाग में अतिवृष्टि के कारण बाढ़ से फसल बर्बाद हो जाती है। किसी भी योजना में सिंचाई सम्बन्धी लक्ष्य पूरे नहीं किये जा सके हैं।

5.5.2 कृषि विकास में भावी सम्भावनाएँ (Future prospects in agricultural development)

विगत वर्षों में भारत सरकार ने कृषि क्षेत्र में समावेशी एवं टिकाऊ विकास सुनिश्चित करने हेतु विविध रणनीतियाँ अपनाई हैं। 2004 में डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय कृषक आयोग की सिफारिशों के आधार पर 2007 में राष्ट्रीय कृषक नीति घोषित की गई थी, जिसमें कृषि संसाधनों का न्यायोचित उपयोग, किसानों की आय में वृद्धि और खाद्य सुरक्षा को केंद्र में रखा गया। वर्तमान में इस नीति के अनेक बिंदुओं को कृषि सुधार कार्यक्रम और प्रधानमंत्री कृषि योजना जैसे कार्यक्रमों के अंतर्गत क्रियान्वित किया जा रहा है। 2023-24 तक नीति के अद्यतन स्वरूप में निम्नलिखित बिंदु उल्लेखनीय हैं: न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) को अब लागत + 50% के आधार पर घोषित किया जा रहा है, जैसा कि स्वामीनाथन आयोग ने अनुशंसा की थी। यह किसानों की आय सुरक्षा की दृष्टि से एक बड़ा कदम माना गया है।

डिजिटल गाँव एवं ज्ञान केंद्र: अब प्रत्येक ब्लॉक व क्लस्टर स्तर पर कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) तथा डिजिटल कृषि ज्ञान केंद्र की स्थापना की जा रही है, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), ड्रोन टेक्नोलॉजी, सैटेलाइट मैपिंग जैसे अत्याधुनिक साधनों का उपयोग किया जा रहा है।

भूमि स्वास्थ्य सुधार हेतु सॉइल हेल्थ कार्ड योजना को और उन्नत किया गया है ताकि सूक्ष्म पोषक तत्वों के आधार पर फसल चक्र निर्धारण हो सके।****

जल संरक्षण में पर ड्रॉप मोर क्रॉप, जल शक्ति अभियान और माइक्रो इरिगेशन फंड जैसी योजनाओं ने सूखा प्रभावित और वर्षा आधारित कृषि को नया संबल दिया है।

कृषि ऋण और बीमा के क्षेत्र में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना ने बीमा कवरेज को पारदर्शी और तकनीक-सहाय बनाया है। साथ ही, केसीसी (Kisan Credit Card) को पशुपालन और मत्स्यपालन के साथ जोड़ा गया है।

महिला किसानों की भागीदारी बढ़ाने हेतु महिला कृषक सशक्तिकरण परियोजना (MKSP) लागू की गई है, जिससे वित्तीय एवं तकनीकी प्रशिक्षण बढ़ा है। उत्पादक और उपभोक्ता मूल्य अंतर को कम करने के लिए ई-नाम पोर्टल, फार्मर प्रोड्यूसर ऑर्गनाइजेशन (FPO) और कृषि इंफ्रास्ट्रक्चर फंड जैसी योजनाओं का विस्तार किया गया है।पर्यावरणीय संतुलन को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक कृषि, जैविक खेती, मिट्टी-जल संरक्षण, और कम इनपुट आधारित कृषि को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

पोषणीय कृषि - यह 1991 में प्रचलन में आई इसका अर्थ है पर्यावरण पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले हुए पोषक चक्र नाइट्रोजन स्थिरीकरण के द्वारा “कृषि विकास” आर्गेनिक कृषि या ऐसी कृषि प्रणाली का विकास

जिससे ऐसे आगतों का न्यूनतम प्रयोग हो जो पर्यावरण, किसानों तथा उपभोक्ताओं को हानि पहुंचाते हों। आर्गेनिक फार्मिंग में रसायनिक खादों तथा कीटनाशक दवाइयों के स्थान पर जैविकीय खाद या प्राकृतिक खादों का प्रयोग। जैव तकनीक एवं अनुवांशिक इंजीनियरिंग के अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बैक्टीरिया और नीले हरे शैवाल नाइट्रोजन निश्चक के रूप में पौधों के पोषण में सहायक हैं । बायो फर्टिलाइजर का सर्वाधिक प्रयोग धान की खेती में करते हैं। यह अधिक पर्यावरण मैत्री तथा अधिक स्वास्थ्य मैत्री खेती है । अतः इसके प्रयोग पर बल दिया जा रहा है किन्तु प्रति हैक्टेयर उत्पादकता कम होने और अधिक लागत के कारण इससे उपजे खाद्यान्नों की कीमत अधिक होती है। अक्टूबर 2004 में " नेशनल प्रोजेक्ट ऑन डेवलपमेन्ट एण्ड व्यूज़ ऑफ बायोफर्टिलाइजर " को नेशनल प्रोजेक्ट ऑन आर्गेनिक फार्मिंग में मिला दिया गया और राष्ट्रीय जैविकीय विकास केन्द्र का नाम बदलकर नेशनल सेन्टर फॉर आर्गेनिक फार्मिंग कर दिया गया। इसके प्रमुख कार्य हैं -

I. आर्गेनिक उत्पादों का प्रमाणीकरण की प्रणाली विकसित करना ।
II. सेवा आपूर्ति के द्वारा क्षमता निर्माण ।
III. आर्गेनिक आगतों जैसे फल तथा सब्जियों के वेस्ट कम्पोस्ट इकाइयों तथा जैविकीय उर्वरकों की उत्पादक इकाइयों को वित्तीय सहायता प्रदान करना ।
IV. आर्गेनिक फार्मिंग के विस्तार प्रोत्साहन तथा विपणन विकास को बढ़ावा देना ।

शोध विस्तार, प्रमाणीकरण तथा विपणन के पर्याप्त संस्थागत समर्थन न मिलने से भारत में आर्गेनिक खेती का विकास अवरोधित हुआ है । कृषि विज्ञान केन्द्र आर्गेनिक खेती के सन्दर्भ में किसानों को प्रशिक्षित करेंगे तथा प्रमाणीकरण प्रक्रिया कृषक मैत्री तथा वहनीय बनायी जायेगी। देश में आर्गेनिक जोन्स की पहचान की जायेगी। जैसे पर्वतीय प्रदेश, आइलैण्ड्स जहाँ रसायनिक खादों का प्रयोग अत्यन्त कम होता है तथा औषधीय प्लाण्ट के लिए कीटनाशक दवाइयों तथा रसायनिक खादों के प्रयोग की राय नहीं दी जाती।

हरित (ग्रीन) कृषि (Green Agriculture)- हरित कृषि में खनिज उर्वरकों तथा रसायनिक कीटनाशकों के सुरक्षित तथा आवश्यक न्यूनतम प्रयोग की अनुमति रहती है। यह एक ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें संयोजित पेस्ट कन्ट्रोल प्रबन्धन, फसल के पोषणीय तत्व की आपूर्ति तथा प्राकृतिक संसाधनों के एकीकृत प्रबन्धन का मिश्रण हो। यह जेनेटिक समायोजन द्वारा विकसित फसल की किस्मों के प्रयोग की भी स्वीकृति देता है ।

संरक्षित (हरित गृह कृषि) (Protected (Greenhouse Agriculture))- यह वह संरक्षित निर्मित दायरा या घर है जिसके भीतर तापमान, आर्द्रता तथा नमी के स्तर को इस प्रकार कायम रखा जाता है जिससे वांछनीय सब्जी, फल, फूल (गैर मौसमी) आदि उगाये जा सकें। इसके अन्तर्गत जल तथा उर्वरक के प्रयोग के मितव्ययिता पूर्ण तरीके जैसे फर्टीगेशन ड्रिप सिंचाई को बढ़ावा देना।

सूक्ष्म (प्रेसेज़न फार्मिंग) (Micro (Precision Farming))- यह एक समन्वित कृषि प्रबन्धन प्रणाली है। इसके अन्तर्गत किसी खेत के भीतर फसल के सम्बन्ध में तथा मिट्टी के सम्बन्ध में होने वाली विभिन्नताओं को चिन्हित किया जाता है। उनकी मैपिंग की जाती है और फिर प्रबन्धकीय व्यवस्था की जाती है तथा इनके सम्बन्ध में होने वाली विभिन्नता का स्थायी आंकलन किया जाता है और उसमें आवश्यक सुधार किया जाता है। टेक्नोलॉजी संयत्र जो इसके अन्तर्गत प्रयुक्त होते हैं, वे हैं- ग्लोबल पोजिसनिंग सिस्टम जो सेटेलाइट नेटवर्क है। भौगोलकीय सूचना प्रणाली उत्पादकता मानीटर वैरियेबिल रेट टेक्नोलॉजी तथा रिमोट सेन्सिंग। यह मितव्ययितापूर्ण तथा पर्यावरण मैत्री है। फसल की स्वस्थता की मानीटरिंग विजातीय घासों की पहचान करना तथा उनका प्रबन्धन, कीटों की पहचान, प्लाटों के पोषणीय तत्व की पहचान, उत्पादन प्रक्षेपण जैसी

अनेक वैज्ञानिक विधियों का इस्तेमाल किया जाता है । इसके परिणाम आशा से कहीं अधिक सन्तोषजनक रहे हैं। भारत में इस तकनीक का प्रयोग तमिलनाडू सरकार सब्जियों के उत्पादन के सम्बन्ध में कर रही है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (National Food Security Mission)- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM) की शुरुआत वर्ष 2007-08 के रबी मौसम से एक केंद्र प्रायोजित योजना के रूप में की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य चावल, गेहूँ और दलहनों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि के साथ-साथ रोजगार सृजन, किसानों का विश्वास पुनः स्थापित करना, और सतत कृषि विकास को बढ़ावा देना था। मिशन को भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अधीन कृषि सहयोग एवं किसान कल्याण विभाग द्वारा संचालित किया जा रहा है।

प्रारंभिक लक्ष्यों (2007-12) में शामिल थे: चावल उत्पादन में 10 मिलियन टन की वृद्धि, गेहूँ उत्पादन में 8 मिलियन टन की वृद्धि, दलहनों के उत्पादन में 2 मिलियन टन की वृद्धि|

वर्तमान स्थिति (2024 तक): वर्ष 2024 तक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन का विस्तार 28 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों के 700+ जिलों में हो चुका है। मिशन के अंतर्गत चावल, गेहूँ और दलहन के साथ-साथ तिलहन, कोर्स अनाज (मोटे अनाज), और कमर्शियल फसलों जैसे गन्ना, कपास, जूट आदि को भी शामिल किया गया है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन 2024 में "आत्मनिर्भर कृषि और पोषण सुरक्षा" के लक्ष्य को लेकर कार्य कर रहा है और मिशन मोड में कृषि क्षेत्र में तकनीकी, संरचनात्मक और सामाजिक सुधारों को सशक्त बना रहा है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (National Agricultural Development Scheme)- इसका आरम्भ अगस्त 2007 में हुआ। इसका उद्देश्य कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का सम्पूर्ण विकास सुनिश्चित करके 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 4.0 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में प्राप्त करना । इस योजना के प्रमुख बिन्दु हैं -

1. कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में गिरते हुए निवेश, जी0डी0पी0 में कृषि के गिरते हुए अंश तथा किसानों की आय में वृद्धि लाना है तथा कृषि और कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों में विकास को प्रेरित करना है ।

2. केन्द्र समर्थित स्कीम है जिसके लिए केन्द्र सरकार से 100 प्रतिशत अनुदान प्राप्त होता है ।

3. राज्य योजना के अन्तर्गत चलने वाली स्कीम है । इस योजना के तहत सहायता की अर्हता राज्य योजना में कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों के लिए व्यवस्था इसके अलावा राज्य सरकार द्वारा कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र पर बेसलाइन व्यय पर निर्भर करेगी।

4. कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों के अन्तर्गत क्राप हसबैण्ड्री जिसमें हार्टीकल्चर सम्मिलित है, पशुपालन, कृषि शोध तथा शिक्षा, कृषि विपणन, खाद्य भण्डारण, मृदा तथा जल संरक्षण, कृषि वित्तीय संस्थायें तथा कृषि कार्यक्रम तथा सहकारिता सम्मिलित है ।

5. राज्य की इसके अन्तर्गत अर्हता तथा उसको फण्ड का आवंटन योजना आयोग द्वारा होगा।

6. इसके अन्तर्गत संसाधनों का आवंटन तीन कसौटियों पर निर्भर करता है ।

i. सिंचित क्षेत्रफल की असिंचित क्षेत्रफल में अनुपात - 20 प्रतिशत

ii. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक सकल राज्य घरेलू उत्पाद की प्रक्षेपित वृद्धि पर - 30 प्रतिशत

iii. कृषि तथा सम्बद्ध में कुल योजनान्तर्गत व्यय में वृद्धि - 50 प्रतिशत ।

7. राज्य कृषि विभाग नोडल विभाग के रूप में कार्य करेगा।

2010-11 में आर.के.वी.वाई. के तहत प्रारम्भ निम्नलिखित तीन नई पहलों के लिए विशिष्ट आवंटनः- Specific allocations for the following three new initiatives launched under RKVY in 2010-11:

1. अनुशंसित कृषि प्रौद्योगिकियों के माध्यम से गहन खेती के द्वारा क्षेत्र की फसल उत्पादकता वृद्धि हेतु असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल सहित देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र तक हरित क्रान्ति का विस्तार करना।
2. चिन्हित वाटर शेडो में 60,000 दलहन और तिलहन गाँवों का आयोजन कर शुष्क भूमि क्षेत्रों में दलहनों और तिलहनों के लिए विशेष पहल |
3. राष्ट्रीय केसर मिशन कार्यान्वयन (2010-11) के दौरान जम्मू एवं कश्मीर केसर क्षेत्र का आर्थिक पुनरूत्थान।
4. आइसोपॉम योजना कृषि मंत्रालय ने तिलहन, दलहन, ऑयल पाम और मक्का विकास कार्यक्रम को नये सिरे से केन्द्र प्रायोजित "तिलहन, दलहन, ऑयल पाम और मक्के की एकीकृत योजना।" आइसोपाम के रूप में संरचित किया है।
5. इस योजना का क्रियान्वयन, तिलहन और दलहन के लिए 14 प्रमुख राज्यों, मक्के के लिए 15 राज्यों और ऑयल पाम के लिए 10 राज्यों में किया जा रहा है।
6. योजना के तहत ऑयल पाम विकास कार्यक्रम आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू, गुजरात, गोवा, ओडिशा, केरल, त्रिपुरा, असम और मिजोरम राज्यों में किया जा रहा है।

भारत में कृषि क्षेत्र की कुछ क्रान्तियाँ

- **हरित क्रान्ति (Green Revolution)- खाद्यान्न उत्पादन (गेहूँ, मक्का, धान)**
- **श्वेत क्रान्ति (white revolution) - दुग्ध उत्पादन**
- **भूरी क्रान्ति (Brown Revolution) - उर्वरक उत्पादन**
- **पीली क्रान्ति (Yellow revolution)- सरसों**
- **लाल क्रान्ति (Red Revolution)- मांस / टमाटर**
- **सुनहरी क्रान्ति (Golden revolution)- बागवानी**
- **गुलाबी क्रान्ति (Pink revolution)- झींगा उत्पादन**
- **नीली क्रान्ति (Blue Revolution)- मत्स्य उत्पादन**
- **रजत क्रान्ति (Silver Revolution)- अण्डा एवं मुर्गी उत्पादन**
- **गोल क्रान्ति (Round Revolution)- आलू उत्पादन**
- **ब्लैक क्रान्ति (Black Revolution)- वैकल्पिक ऊर्जा**
- **इन्द्रधनुषी क्रान्ति (Rainbow Revolution)- मसालों का उत्पादन**

5.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. रिक्त स्थान भरो (Fill in the blanks)-

1. राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा होता...... जा रहा है।

2. जायद फसलों की अवधि .... से होती है ।

3. हरित क्रान्ति के अन्तर्गत सबसे अधिक वृद्धि..... में दर्ज हुई।

4. औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि क्षेत्र के उत्पादों की मांग जाती है ।

5. हरित क्रान्ति नाम देने का श्रेय ....को जाता है ।

2. मेल करिए (Match the following)

1. श्वेत क्रान्ति	(a) मसाला का उत्पादन
2. सुनहरी क्रान्ति	(b) दुग्ध उत्पादन
3. बादामी क्रान्ति	(c) बागवानी
4. गुलाबी क्रान्ति	(d) माँस / टमाटर
5. लाल क्रान्ति	(e)झींगा उत्पादन

3. सत्य/ असत्य (True/False)-

1. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन की शुरुआत 2007-08 के खरीफ मौसम से की गई थी।

2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन का उद्देश्य चावल, गेहूँ और दलहन उत्पादन को बढ़ाना है।

3. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन केवल तीन राज्यों में लागू किया गया है।

4. NFSM के अंतर्गत किसानों के लिए रोजगार सृजन और आत्मविश्वास बहाली को भी लक्ष्य बनाया गया है।

4. बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple choice questions)-

1. भारत में हरित क्रांति (Green Revolution) मुख्यतः किस फसल से जुड़ी हुई थी?

A) जौ और मक्का

B) गेहूं और चावल

C) गन्ना और कपास

D) दालें और तिलहन

2. भारत में "श्वेत क्रांति" (White Revolution) का संबंध किससे है?

A) कपास उत्पादन

B) दुग्ध उत्पादन

C) मछली पालन

D) सिंचाई व्यवस्था

3. "नीली क्रांति" (Blue Revolution) का उद्देश्य क्या था?A) समुद्री लहरों की ऊर्जा उपयोग

B) जल संरक्षण

C) मछली उत्पादन को बढ़ावा देना

D) जल प्रदूषण रोकना

4. "स्वर्ण क्रांति" (Golden Revolution) का संबंध किस कृषि क्षेत्र से है?

A) गेहूं उत्पादन

B) शहद और फल उत्पादन

C) धान उत्पादन

D) तिलहन उत्पादन

5.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान गये हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में भारतीय कृषि की प्रकृति, उसके महत्व और नवीन व्यूह रचना की विस्तृत चर्चा की । कृषि की प्रकृति के अन्तर्गत तीन फसल मौसम रबी, खरीफ, जायद की बोवाई तथा कटाई और उनमें वर्गीकृत होने वाली फसलों के बारे में इंगित किया गया। कृषि में प्रयुक्त सभी आदानों जैसे- भूमि, बीज, उर्वरक, सिंचाई, यंत्रों आदि की जानकारी दी गई। इनमें पारम्परिक तरीकों के साथ-साथ नवीन तरीकों को भी सम्मिलित किया गया। कृषि के महत्व को भारतीय परिदृश्य में रेखांकित किया गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि उद्योग तथा कृषि एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करेंगे तभी तीव्र विकास होगा और गरीबी, बेरोजगारी की समस्या से निपटा जा सकेगा। कृषि के आगत जो हरित क्रान्ति प्रारम्भ होने के बाद इस्तेमाल हो रहे हैं| हमें उद्योगों से मिलते हैं और कृषि के निर्गत उद्योगों में आगत के रूप में इस्तेमाल होते हैं । अन्त में हमने चर्चा की कि नवीन व्यूह रचना है क्या, उसके क्या प्रभाव हुए और कृषि विकास में भावी सम्भावनाओं के रूप में कौन-कौन से प्रोग्राम चल रहे हैं ।

5.8शब्दावली (Glossary)

- **खरीफ फसलें (Kharif Crops) -** वे फसलें जो वर्षा ऋतु में (जून से अक्टूबर) बोई और काटी जाती हैं, जैसे धान, मक्का।
- **रबी फसलें (Rabi Crops)-** वे फसलें जो सर्दियों में (अक्टूबर से मार्च) बोई जाती हैं और गर्मी में काटी जाती हैं, जैसे गेहूं, चना।
- **बागान फसलें (Plantation Crops) -** वे व्यावसायिक फसलें जिन्हें बड़े पैमाने पर स्थायी रूप से लगाया जाता है, जैसे चाय, कॉफी, रबड़।
- **प्रजनक बीज (Breeder Seed) -** मूल बीज जिसे वैज्ञानिक या अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित किया जाता है और यह शुद्धतम किस्म होती है।
- **फाउण्डेशन बीज (Foundation Seed) -** प्रजनक बीज से उत्पादित बीज जो प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है।
- **जेनेटिकली मॉडिफाइड बीज (Genetically Modified Seed) -** ऐसे बीज जिनके जीन कृत्रिम रूप से बदलकर उन्हें कीट, रोग या मौसम के प्रतिरोधी बनाया गया हो|

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

1. रिक्त स्थान भरिए -

1. कम 2. मार्च, जून 3. गेहूँ 4. बढ़ 5 विलियम गैड

2. मेल करिए-

1. b 2. c 3. a 4. e 5. d

3. सत्य/ असत्य-

1. असत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य

4. बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. B) गेहूं और चावल

2. B) दुग्ध उत्पादन

3.C) मछली उत्पादन को बढ़ावा देना

4. B) शहद और फल उत्पादन

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947 Academic Foundation.
- Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- Rao, Hanumantha C. H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
- दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद ।
- मुज़म्मिल, मोहम्मद (1997), कृषि अर्थशास्त्र, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ|

5.11 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- Economic Survey 2010-11, Ministry of Finance, Government of India.

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय कृषि में प्रयुक्त विभिन्न आगतों की विस्तृत चर्चा कीजिए?

2. भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका की विवेचना कीजिए?

3. नवीन कृषि रणनीति के उद्विकास पर प्रकाश डालिए?

4. हरित क्रान्ति की कमजोरियों की व्याख्या कीजिए?

इकाई - 6 भारत में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ(Trends in agricultural production and productivity in India)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)
6.2 उद्देश्य (Objectives)
6.3 कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक एवं प्रवृत्तियाँ (Factors and trends affecting agricultural production and productivity)
6.4 पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन कृषि की प्रगति (Progress of Agriculture under Five Year Plans)
6.5 न्यून कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कारण (Reasons for low agricultural production and productivity)
6.6 निम्न उत्पादकता को दूर करने के प्रयास(Efforts to overcome low productivity)
6.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
6.8 सारांश (Summary)
6.9 शब्दावली (Glossary)
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
6.12 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
6.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में यह जानने की चेष्टा करेंगे कि भारतीय कृषि क्षेत्र में उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्व क्या हैं और आँकड़े क्या प्रवृत्तियाँ दर्शाते हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि कृषि वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक रहे। नवीन कृषि रणनीति सुधारों के साथ साठ के दशक से प्रयोग में है किन्तु अभी भी कृषि मानसून में जुआ ही है। ज्यादातर किसान जीवन यापन कृषि से करते हैं, उनके पास जोतों का आकार छोटा है। भू-सुधार लागू होने के बाद भूमि का पुनर्वितरण कुछ हद तक हुआ किन्तु भू-सुधार की कमियाँ सीमान्त तथा भूमिहीन कृषकों की दशा सुधारने में बहुत सफल नहीं हो पाये। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा से यह ज्ञात होता है कि उतार चढ़ाव के बावजूद उत्पादन बढ़ा है, जिन वर्षों में मौसम अनुकूल रहा है उस साल उत्पादन अच्छा रहा है और प्रतिकूल प्राकृतिक दशाओं से कृषि उत्पादन में गिरावट आई है।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारणों को जान सकेंगे।
- ✓ भारतीय कृषि में उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्ति जान सकेंगे।
- ✓ निम्न उत्पादकता के कारणों की जाँच कर सकेंगे।
- ✓ विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उद्देश्यों एवं उपलब्धियों की समीक्षा कर सकेंगे। |

6.3 कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक एवं प्रवृत्तियाँ (Factors and trends affecting agricultural production and productivity)

कृषि उत्पादन में वृद्धि दो कारणों से मुख्यता सम्भव है:-

(क) जोत में आने वाली भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि (क्षैतिजीय विस्तार) द्वारा

(ख) उत्पादकता में वृद्धि जिसे ऊर्ध्वाधर विस्तार कहते हैं, उत्पादकता में वृद्धि भूमि तथा कृषि श्रमिक दोनों की उत्पादकता में वृद्धि से सम्बन्धित है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए जोत में आने वाली भूमि की वृद्धि दो प्रकार से की जा सकती हैदोहरी या बहुफसल उगाकर तथा जोत में न आयी बंजर या पानी से भरी जमीन को जोत में लाकर।

1950-51 में आयोजन के शुरूआत से अब तक की तस्वीर यह है कि कृषि आधीन क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हुई। प्रति हेक्टेयर उत्पादन (कृषि उत्पादिता) में भी लगातार वृद्धि हुई। क्षेत्रफल में वृद्धि के साथ-साथ प्रति हेक्टेयर उत्पादन में भी वृद्धि दर्ज हुई फलस्वरूप सभी फसलों के कुल उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई। खाद्यान्नों और वाणिज्यिक दोनों फसलों के सन्दर्भ में कृषि क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है किन्तु वाणिज्यिक फसलों के जोत क्षेत्रफल में अधिक वृद्धि आयी है। भारत कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता की दृष्टि से काफी धनी देश है। यहाँ कुल क्षेत्रफल का लगभग 47 प्रतिशत भाग शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। भारत की जलवायु विशेषकर तापमान, वर्ष भर कृषि उत्पादन के अनुकूल रहता है। जलवायु की विविधता के कारण भारत में उष्ण, उपोष्ण व शीतोष्ण सभी फसलें उगाई जाती हैं। भारत में कुल कृषित भूमि के लगभग 75 प्रतिशत भाग पर खाद्यान्न फसलें उगाई जाती हैं। शेष 25 प्रतिशत भाग वाणिज्यिक फसलों के अधीन है। भारत में

खेतों का औसत आकार काफी छोटा है लगभग (1.7 हेक्टेयर) है। 1985-86 में देश में जब जोतों का औसत आकार 1.69 हेक्टेयर था, तब राजस्थान में यह सर्वाधिक 4.34 हेक्टेयर था। उसके बाद पंजाब में यह 3.77 हेक्टेयर था। इसके विपरीत केरल में जोतों का औसत आकार न्यूनतम 0.36 हेक्टेयर था।

1949-50 के पश्चात् क्षेत्रफल में वृद्धि हुई। नई कृषि रणनीति अपनाने के पहले अतिरिक्त भूमि काश्त में लाई गई और सिंचाई सुविधाओं के विस्तार द्वारा बंजर भूमि में भी खेती की जाने लगी। कुछ परिस्थितियों में व्यर्थ भूमियों और वन आधीन भूमियों को भी बढ़ाया गया। आलू की खेती में इस अवधि में सबसे अधिक क्षेत्र वृद्धि हुई अर्थात् 4.4 प्रतिशत प्रति वर्ष, फिर रूई 3.3 प्रतिशत प्रति वर्ष । गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 1.7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि रिकार्ड की गई। हरित क्रान्ति के बाद की अवधि (1965-2002) में, क्षेत्रफल में वार्षिक वृद्धि दर काफी कम थी। सभी फसलों में 0.1 प्रतिशत, खाद्यान्नों में 0.1 प्रतिशत और अखाद्य फसलों में 0.3 प्रतिशत। इस अवधि में केवल चावल की फसल के आधीन क्षेत्रफल में 22 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 92 प्रतिशत वृद्धि हुई । इस कारण चावल के आधीन क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि दर केवल 0.6 प्रतिशत थी। खाद्य भिन्न फसलों में आलू के आधीन क्षेत्रफल में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई (वार्षिक वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत) और बागान फसलों में यह वृद्धि 67 प्रतिशत थी ।

प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि- कृषि उत्पादकता हम दो तरीकों से माप सकते हैं- प्रति हेक्टेयर कृषि उपज से और प्रति व्यक्ति उपज के मूल्य से। प्रति हेक्टेयर कृषि उपज से अभिप्राय एक हेक्टेयर में कितना उत्पादन होता है। इसे खेत की उत्पादकता कहते हैं । प्रति श्रमिक उपज से अभिप्राय है एक खेत की कुल उपज के मूल्य में उसमें कार्य करने वाले श्रमिकों का भाग देकर जो फल आता है । यह खेत की प्रति श्रमिक उत्पादकता है। भारत में उत्पादकता प्रति हेक्टेयर तथा प्रति श्रमिक दोनों ही दृष्टि से कम है। निम्न आंकड़े इस तथ्य को सिद्ध करते हैं - "भारत में गेहूँ का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2,671 किलोग्राम है सापेक्षतया ब्रिटेन में 7,468 किलोग्राम व फ्रांस में 6,632 किलोग्राम है । भारत में चावल व धान का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2,127 किलोग्राम है, जबकि मिश्र में 8,567 किलोग्राम, जापान में 6,416 किलोग्राम, अमरीका में 6,609 किलोग्राम व चीन में 6,331 किलोग्राम है । सम्पूर्ण भारत में प्रति श्रमिक उत्पादकता 1,213 रूपये प्रति हेक्टेयर है किन्तु क्षेत्रीय दृष्टि से भारत में कृषि उत्पादकता में समानता नहीं देखने को मिलती। भारत में जलवायु एवं भूमि की उर्वरकता अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न है तथा अन्य अवस्थापना सुविधाएं जैसे- सिंचाई, बिजली, यातायात की सुविधायें आदि में भी काफी असमानता देखने को मिलती हैं । जहाँ ये सारी सुविधायें उपलब्ध हैं और जहाँ नकद फसलें अधिक होती हैं वहाँ प्रति हेक्टेयर उत्पादन का मूल्य अधिक है जैसे केरल रू0 2,072, पंजाब रू0 3,195, हरियाणा रू0 2,922, गुजरात रू0 1,457, उत्तर प्रदेश रू0 1,236 तथा मध्य प्रदेश में रू0 859 है । भारतीय कृषि में अन्य देशों की तुलना में श्रम उत्पादकता कम है जो डालरों में 395 डॉलर है, जबकि आस्टेलिया में 31,432 डॉलर, ब्रिटेन में 34,730 डॉलर व जापान में 30,620 डॉलर है। स्वतंत्रता पूर्व जो कृषि क्षेत्र में निम्न उत्पादकता थी उसको आयोजन शुरू होने के बाद बढ़ाने का प्रयास किया गया। सिंचाई में विस्तार और कृषि सघन प्रणाली के उपयोग और आधुनिक कृषि रणनीति द्वारा सभी फसलों के प्रति हेक्टेयर उत्पादन में धीरे-धीरे निरन्तर वृद्धि पाई गई। हरित क्रान्ति से पूर्व की अवधि के दौरान चावल की उत्पादकता में काफी प्रभावी वृद्धि दरें रिकार्ड की गयीं 1949-50 में 7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर से 1964-65 में लगभग 11 क्विंटल तक। इसी अवधि में गेहूँ की वृद्धि दर मर्यादित थी। गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 1949-50 में 6.6 क्विंटल से बढ़कर 1964-65 में 9.1

क्विंटल हो गई। खाद्य भिन्न फसलों, रूई एवं गन्ने की उत्पादिता में भी मर्यादित वृद्धि रिकार्ड हुई। दूसरी अवधि यानि हरित क्रान्ति के पश्चात 1964-65 से 2007-08 में गेहूँ में सबसे अप्रत्याशित वृद्धि दर (2.63 प्रतिशत) और आलू में 3.1 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि दर प्राप्त की गई। गेहूँ का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2007- 08 में 27.85 क्विंटल और 2008-09 में 28.06 क्विंटल था किन्तु यह चावल में 2007-08 में 22.03 क्विंटल और 2008-09 में 21.77 क्विंटल प्रति हेक्टेयर रहा। 1964-65 में 2007-08 में चावल में 1.67 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की गई । अन्य सभी फसलों में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि या तो मर्यादित थी, या बहुत कम। नयी जीव रसायन टेक्नोलॉजी गेहूँ के उत्पादन के लिए विशेष रूप में उचित थी किन्तु यह अन्य फसलों के सन्दर्भ में प्रभावी नहीं थी ।

कुछ कृषि अर्थशास्त्री इस बात को लेकर सन्देह में हैं भारत की उत्पादकता ठण्डे देशों के स्तर तक पहुंच पायेगी। उत्पादकता में कुछ हद तक बढ़ोत्तरी की जा सकती है किन्तु 3 से 5 गुना बढ़ाना व्यवहारिक नहीं है क्योंकि भारत में गेहूँ सम्बन्धी अर्द्ध बौनी अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की अवधि 60 दिन है, जबकि ठण्डे देशों में 10 महीने की गेहूँ की फसल से उच्च उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है | अतः भारत में किसान एक फसल की अपेक्षा बहु फसल प्रणाली की ओर परिवर्तित होने के कारण पूरे वर्ष भर की उत्पादकता बढ़ा सकता है|

प्रमुख फसलों का उत्पादन (Million Tonnes में)

फसल / श्रेणी	**2008–09**	**2023–24**
कुल खाद्यान्न (Foodgrains)	229.9	3322.98
चावल (Rice)	99.4	1378.25
गेहूँ (Wheat)	77.6	1132.92
मोटे अनाज (Coarse Cereals)	38.7	569.36
दालें (Pulses)	6.2	242.46

उपरोक्त तालिका भारत में प्रमुख खाद्यान्न फसलों के वर्ष 2008-09 और 2023-24 के उत्पादन की तुलनात्मक स्थिति को दर्शाती है। यह आंकड़े भारतीय कृषि क्षेत्र में पिछले डेढ़ दशक के दौरान हुए उल्लेखनीय विकास को स्पष्ट रूप से उजागर करते हैं।

कुल खाद्यान्न उत्पादन 2008-09 में 229.9 मिलियन टन था, जो 2023-24 में बढ़कर 3322.98 लाख टन (332.3 मिलियन टन) हो गया है। यह लगभग 44% की वृद्धि को दर्शाता है, जो कृषि तकनीक में सुधार, उन्नत किस्मों के बीज, सरकारी योजनाओं तथा किसानों के बढ़ते योगदान का परिणाम है।

चावल (Rice) का उत्पादन 2008-09 में 99.4 मिलियन टन था, जो 2023-24 में बढ़कर 1378.25 लाख टन (137.8 मिलियन टन) हो गया है। यह खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से एक अत्यंत सकारात्मक संकेत है, क्योंकि चावल भारत की प्रमुख खाद्य फसल है।

गेहूँ (Wheat) का उत्पादन भी इसी अवधि में 77.6 मिलियन टन से बढ़कर 1132.92 लाख टन (113.3 मिलियन टन) तक पहुँच गया, जो देश की रबी फसलों की उत्पादकता में निरंतर सुधार को दर्शाता है।

मोटे अनाज (Millets) जैसे ज्वार, बाजरा, रागी आदि का उत्पादन 2008-09 में 38.7 मिलियन टन से बढ़कर 569.36 लाख टन (56.9 मिलियन टन) हो गया। यह वृद्धि भारत सरकार की "श्री अन्न" पहल और पोषण-समृद्ध अनाजों को पुनर्प्रचलित करने के प्रयासों का परिणाम है।

दालों (Pulses) का उत्पादन 2008-09 में केवल 6.2 मिलियन टन था, जबकि 2023-24 में यह बढ़कर 242.46 लाख टन (24.2 मिलियन टन) हो गया है। यह भारत की प्रोटीन आत्मनिर्भरता की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि भारत दालों का विश्व का सबसे बड़ा उपभोक्ता है।

यह तालिका दर्शाती है कि भारत ने कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, जिससे देश की खाद्य सुरक्षा मजबूत हुई है और किसानों की आय में वृद्धि की संभावनाएँ भी बेहतर हुई हैं।।

फसलवार प्रति हेक्टेयर उत्पादन – तुलनात्मक दृष्टि

क्र.सं.	फसल	2008–09	2023–24
1	कुल खाद्यान्न	1,857 किग्रा	~2,525 किग्रा
2	दालें	617 किग्रा	~907 किग्रा
3	चावल	2,177 किग्रा	खरीफ 2,226 किग्रा; रबी: 2,917 किग्रा
4	गेहूँ	2,806 किग्रा	रबी: 3,509 किग्रा (आंकड़े समूह: cereals)
5	मक्का	2,302 किग्रा	मक्का समूह: 3,321 किग्रा
6	तिलहन	1,016 किग्रा	तेलबीज समूह: 1,316 किग्रा
7	मूंगफली	1,169 किग्रा	मूंगफली: 2,179 किग्रा
8	रेपसीड एवं सरसों	1,155 किग्रा	रेपसीड & सरसों: 1,443 किग्रा
9	गन्ना (टन/हेक्टेयर)	66 टन	79 टन/हेक्टेयर
10	कपास	418 किग्रा	436 किग्रा
11	जूट	2,168 किग्रा	2,795 किग्रा (जूट)

उपरोक्त तालिका भारत में प्रमुख फसलों की उत्पादकता (Yield per hectare) में वर्ष 2008-09 से 2023-24 के दौरान हुए परिवर्तन को दर्शाती है। यह तुलनात्मक विवरण स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि भारत ने कृषि उत्पादकता में व्यापक सुधार किया है, जो वैज्ञानिक खेती, तकनीकी हस्तक्षेप, उच्च गुणवत्ता वाले बीजों और सरकारी सहायता योजनाओं का परिणाम है।

कुल खाद्यान्न की उत्पादकता 2008-09 में प्रति हेक्टेयर 1,857 किग्रा थी, जो 2023-24 में बढ़कर लगभग 2,525 किग्रा हो गई है। यह 36% की वृद्धि को दर्शाता है, जो खाद्य सुरक्षा और आत्मनिर्भरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

दालों की उत्पादकता में भी सराहनीय सुधार हुआ है 617 किग्रा/हेक्टेयर से बढ़कर लगभग 907 किग्रा/हेक्टेयर हो गई है। यह वृद्धि भारत की प्रोटीन आवश्यकताओं को पूरा करने और दालों के आयात को घटाने में सहायक है।

चावल की उत्पादकता में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष 2023-24 में खरीफ चावल की उत्पादकता 2,226 किग्रा और रबी चावल की 2,917 किग्रा/हेक्टेयर है, जबकि 2008-09 में यह औसतन 2,177 किग्रा/हेक्टेयर थी।

गेहूँ की उत्पादकता 2008-09 में 2,806 किग्रा थी, जो 2023-24 में बढ़कर 3,509 किग्रा/हेक्टेयर हो गई यह विशेष रूप से रबी मौसम में गेहूँ की खेती में तकनीकी उन्नयन और सिंचाई सुविधा के विस्तार को दर्शाता है।

मक्का की उत्पादकता भी उल्लेखनीय रूप से 2,302 किग्रा से बढ़कर 3,321 किग्रा/हेक्टेयर हो गई है, जो अनाज विविधीकरण की दिशा में एक सकारात्मक संकेत है।

तेल बीजों की श्रेणी में भी सुधार देखने को मिला है तिलहन की उत्पादकता 1,016 किग्रा से बढ़कर 1,316 किग्रा हो गई। मूंगफली और रेपसीड-सरसों जैसी विशिष्ट फसलों की उत्पादकता भी क्रमशः 2,179 किग्रा और 1,443 किग्रा/हेक्टेयर तक पहुँच चुकी है।

गन्ना, जो भारत की नकदी फसल है, उसकी उत्पादकता 66 टन से बढ़कर 79 टन प्रति हेक्टेयर हो गई है, जो गन्ना मिलों की स्थिरता और चीनी उद्योग के लिए लाभकारी है।

कपास की उत्पादकता में हल्की वृद्धि (418 से 436 किग्रा/हेक्टेयर) और जूट की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि (2,168 से 2,795 किग्रा/हेक्टेयर) दर्ज की गई है।

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत ने फसल विविधता के साथ-साथ उत्पादकता में भी समग्र रूप से प्रगति की है। यह बदलाव कृषि क्षेत्र के टिकाऊ विकास, किसानों की आय बढ़ाने, और देश की खाद्य व पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत उपयोगी साबित हो रहा है।

खाद्यान्न उत्पादन 2003–04 से 2023–24 तक (मिलियन टन में)

फसल	2003–04	2004–05	2005–06	2006–07	2007–08	2008–09	2023–24
चावल	88.5	83.1	91.8	93.4	96.7	99.4	1378.25
गेहूँ	72.2	68.6	69.4	75.8	78.6	77.6	1132.92
मोटे अनाज	37.6	33.5	34.1	33.9	40.8	38.7	569.36
दालें	6.9	13.1	13.4	6.2	6.8	6.2	242.46
कुल खाद्यान्न	213.2	198.4	208.6	217.3	230.8	229.9	3322.98

उपरोक्त तालिका में भारत में प्रमुख खाद्यान्न फसलों के उत्पादन का वर्षवार विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो 2003-04 से लेकर 2023-24 तक की स्थिति को दर्शाता है। वर्ष 2003-04 से 2008-09 तक खाद्यान्न उत्पादन में उतार-चढ़ाव देखा गया, जबकि 2023-24 में सभी प्रमुख फसलों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

चावल के उत्पादन में 2004-05 में गिरावट (83.1 मिलियन टन) देखने को मिली थी, परंतु यह लगातार बढ़ते हुए 2023-24 में 1378.25 लाख टन (यानि 137.8 मिलियन टन से अधिक) पर पहुँच गया है, जो अब तक का सर्वाधिक स्तर है। इसी तरह, गेहूँ का उत्पादन भी 2004-05 में 68.6 मिलियन टन से बढ़कर 2023-24 में 1132.92 लाख टन (113.3 मिलियन टन) हो गया है, जो तकनीकी सुधार, उच्च उपज वाले बीजों और सरकारी सहायता योजनाओं का परिणाम है।

मोटे अनाज (जैसे ज्वार, बाजरा आदि) का उत्पादन 2003-04 से 2008-09 के बीच कुछ स्थिर रहा, परंतु 2023-24 में यह 569.36 लाख टन (56.9 मिलियन टन) तक पहुँच गया, जो पोषण संवर्धन और मोटे अनाजों को "श्री अन्न" के रूप में प्रोत्साहन का परिणाम है। दालों के उत्पादन में 2004-05 से थोड़ी गिरावट के बाद 2023-24 में 242.46 लाख टन (24.2 मिलियन टन) की उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई, जिससे आत्मनिर्भरता की दिशा में भारत ने कदम बढ़ाए हैं।

कुल खाद्यान्न उत्पादन में भी लगातार सुधार हुआ है। 2003-04 में 213.2 मिलियन टन से यह 2023-24 में 3322.98 लाख टन (332.3 मिलियन टन) हो गया है। यह वृद्धि हरित क्रांति के बाद की तकनीकी उन्नति, सिंचाई सुविधाओं में सुधार, उर्वरकों के उचित प्रयोग, और कृषि नीति सुधारों की सफलता को दर्शाती है।

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत ने पिछले दो दशकों में कृषि उत्पादन, विशेषकर खाद्यान्न क्षेत्र में बड़ी प्रगति की है और वह वैश्विक खाद्य सुरक्षा में एक सशक्त योगदानकर्ता बनकर उभरा है।

महत्वपूर्ण बिन्दु-

- ✓ हरित क्रान्ति के पहले की अवधि में क्षेत्र विस्तार के कारण कृषि उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा। 1965 के बाद की अवधि में कृषि उत्पादकता में वृद्धि कृषि उत्पादन में वृद्धि का मुख्य कारण थी। अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के तहत क्षेत्रफल में विस्तार के कारण 1980-81 के बाद चावल के उत्पादन में वृद्धि हुई।
- ✓ नवीन कृषि टेक्नोलॉजी अपनाने के बावजूद गेहूँ को छोड़ कर बाकी फसलों की वृद्धि दर कायम नहीं रखी जा सकी। आधुनिक टेक्नोलॉजी को अच्छी वर्षा वाले क्षेत्रों या उचित सिंचित क्षेत्रों में लागू किया गया और तिलहनों, मोटे अनाजों और दालों का उत्पादन निम्न कोटि की भूमि पर किया जाने लगा। परिणामतः इन फसलों की उत्पादकता और कुल उत्पादन में अधिक वृद्धि नहीं हासिल हो सकी। है पर फसलों के उत्पादन में साल दर साल उतार चढ़ाव होते रहते हैं। 2001-02 से 2007-08 की अवधि में खाद्यान्नों के उत्पादन की वृद्धि दर गिरकर 1.74 प्रतिशत हो गयी जो जनसंख्या की 1.8 प्रतिशत की वृद्धि दर से भी कम थी।
- ✓ राज्यों के फसल प्रतिरूप में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव हुए। जैसे- देश के पूर्वी क्षेत्र (पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार, असम और उत्तर पूर्वीय राज्यों) का चावल में भाग 38 प्रतिशत से कम होकर 28 प्रतिशत हो गया। इसके विपरीत उत्तरी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश) का भाग 10 प्रतिशत से बढ़कर 23 प्रतिशत हो गया।

प्रमुख खाद्यान्न एवं कृषि उत्पादों में भारत का विश्व में स्थान

जिंस (उत्पादन)	2025 में भारत का विश्व में स्थान	टिप्पणी / स्रोत
दूध / डेयरी उत्पाद	1- विश्व का सबसे बड़ा दूध	भारत विश्व दूध उत्पादन में

	उत्पादक; ~209 मिलियन टन (2022-23 में)	~24–25 % योगदान करता है
	2- चीन के बाद दूसरा स्थान; ~137 miljoen टन (2023 में)	चावल उत्पादन में भारत की दूसरी सबसे बड़ी स्थिति
गेहूँ	2 - दूसरी सबसे बड़ी उत्पादन क्षमता (~113 million टन, 2023)	गेहूँ उत्पादन में चीन के बाद स्थान
गन्ना	2 - शुगरकैन उत्पादन में दूसरे स्थान पर; भारत 23 % हिस्सेदारी	गन्ना में विश्व स्तर पर भारत का दूसरा स्थान
फल (कुल – जैसे केला, आम आदि)	2 - विश्व उत्पादन में ~10.9 % भागीदारी	फल और सब्जियों में भारत विश्व स्तर पर दूसरा स्थान रखता है
सब्जियाँ	2 - विश्व उत्पादन में ~8.6 % भागीदारी	सब्जियों में भी भारत दूसरे उच्चतम उत्पादक देशों में सूचीबद्ध है
केला	1- दुनिया में पहले स्थान पर; 2021 में ~30.8 मिलियन टन	केला उत्पादन में भारत अग्रणी है
नारियल	3- तीसरे स्थान पर (~14.7 मिलियन टन, 2024)	नारियल उत्पादन में भारत तीसरे नंबर का देश है
जूट (Jute)	1 - विश्व का सबसे बड़ा जूट उत्पादक	जूट उत्पादन में भारत का पहला स्थान
मिलेट	1- सूर्य में सबसे बड़ा उत्पादन वाला देश	मिलेट उत्पादन में भारत टॉप पर है
आम (Mango)	1 विश्व में पहले स्थान पर (~24 million ton, 2024)	आम उत्पादन में भारत अग्रणी है
आलू	2- विश्व में दूसरे स्थान पर (~58.99 million ton, 2023)	आलू उत्पादन में भारत दूसरे स्थान पर है
मसाले (Spices)	1- विशेष मसालों जैसे हल्दी, अदरक आदि में प्रथम स्थान	मसाले उत्पादन में भारत अग्रणी है
चाय	2 - विश्व में दूसरे स्थान पर (≈1.34 million ton, 2018)	चाय उत्पादन में भारत की दूसरी स्थिति

वर्ष 2025 के लिए भारत के प्रमुख कृषि जिंसों के वैश्विक उत्पादन में स्थान का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि भारत विश्व कृषि परिदृश्य में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और अग्रणी भूमिका निभा रहा है। सबसे पहले, भारत दूध उत्पादन में विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक बना हुआ है, जहाँ उसका योगदान लगभग 24-

25% है। इसी प्रकार, चावल और गेहूँ के उत्पादन में भी भारत क्रमशः दूसरे स्थान पर है, जो इसे वैश्विक खाद्य सुरक्षा में एक अहम स्तंभ बनाता है।

गन्ना, फल, सब्जियाँ, और आलू जैसे जिंसों में भी भारत का स्थान दूसरा है, जो दर्शाता है कि खाद्यान्नों के अलावा बागवानी फसलों में भी भारत का प्रदर्शन उत्कृष्ट है। केला, आम, जूट, मिलेट (श्री अन्न), और मसालों के उत्पादन में भारत विश्व में पहले स्थान पर है। इससे पता चलता है कि भारत की कृषि विविधता केवल खाद्यान्नों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह बागवानी, वानस्पतिक और औद्योगिक फसलों में भी अग्रणी है।

नारियल उत्पादन में भारत तीसरे स्थान पर है, जो दक्षिण भारत के राज्यों में इसकी विशेष भूमिका को दर्शाता है। वहीं, चाय उत्पादन में भारत का स्थान दूसरा है, जो न केवल घरेलू खपत बल्कि निर्यात के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार, यह तालिका दर्शाती है कि भारत वैश्विक कृषि में एक व्यापक और शक्तिशाली स्थान रखता है। यह न केवल खाद्यान्न बल्कि औद्योगिक फसलों, बागवानी उत्पादों, और मसालों में भी अग्रणी है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारत की कृषि विविध, टिकाऊ और विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी होती जा रही है।

कृषि क्षेत्र: मुख्य संकेतक (प्रतिशत)

क्र. सं.	मद	मौजूदा स्थिति (2023-24 'वित्तीय वर्ष' 2024-25)
1. सकल घरेलू उत्पाद (सकल मूल्य वर्धन) में हिस्सा व वृद्धि	कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों की सकल मूल्य वर्धनवृद्धि दर (%)	लगभग 3.3–3.5% (2022-23: ~3.3%; Q2 FY25 में 3.5%)
GVA में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का हिस्सा (%)	लगभग 18.2–18.3% (2022-23: 18.3%; (सरकारी अनुमान)	
2. सकल पूंजी निर्माण (GCF) में हिस्सा	कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का हिस्सा (%)	अनुमानतः वर्तमान GCF में 8–9% के आसपास (पिछले रूपरेखा जैसा अनुपात)
3. आयात–निर्यात में योगदान	कृषि आयात (% राष्ट्रीय आयात में)	वर्गीय डेटा उपलब्ध नहीं; पर निर्यात में कृषि का हिस्सा ~14.1% (2022 में)
4. रोजगार में योगदान	कृषि क्षेत्र में कार्यरत कुल कामगारों का हिस्सा (%)	लगभग 45–46% (2023-24 में 45.8%; महिला: 64.4%

स्रोतः केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय तथा कृषि और सहकारिता विभाग ।

कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का कुल आर्थिक उत्पादन में हिस्सा धीरे-धीरे घट रहा है,1990 के लगभग 30–35% से घटकर अब लगभग18% के स्तर पर पहुँचा हुआ है |

पिछले पाँच वर्षों में कृषि की औसत वार्षिक वृद्धि दर लगभग 4% रही है। 'वित्तीय वर्ष' 2023- 24 में यह दर 1.4% पर आ गई, जबकि 24-25 के दूसरी तिमाही में वृद्धि दर मामूली सुधार के साथ 3.5% दर्शाती है

कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों का इंफ्रास्ट्रक्चर एवं पूंजी निवेश में हिस्सा लगभग 8% के आसपास माना जा सकता है, जैसा कि 2008-09 के आंकड़ों में भी था। यह सूक्ष्म परिवर्तनों के साथ स्थिर बना हुआ है

कृषि निर्यात, देश के कुल निर्यात का लगभग 14.1% हिस्सा है, जबकि कृषि आयात का सकल आयात में हिस्सा अपेक्षाकृत कम है और विशिष्ट आंकड़े वर्तमान में व्यापक स्रोतों में उपलब्ध नहीं हैं

लगभग 45-46% आबादी कृषि एवं सम्बद्ध गतिविधियों से जुड़ी हुई है,एक दशक पहले की तुलना में रोजगार में कृषि क्षेत्र का हिस्सा कम न होकर बढ़ रहा है, जबकि उद्योग व सेवा क्षेत्रों में रोजगार अपेक्षाकृत घट रहा है उल्लेखनीय रूप से, महिला श्रमिकों की हिस्सेदारी 64.4% तक बढ़ गई है, जबकि पुरुष की हिस्सेदारी में गिरावट आई है

इस प्रकार, पुरानी तालिका को आधुनिक संदर्भ में अद्यतन करने पर स्पष्ट होता है कि कृषि आज भी भारत की सामाजिक-आर्थिक रचना के केंद्र में है, चाहे 'सकल मूल्य वर्धन'में इसकी हिस्सेदारी घट रही हो, लेकिन रोजगार और निर्यात में इसकी क्षमता और प्रभाव अभी भी व्यापक स्तर पर मौजूद है।

6.4 पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन कृषि की प्रगति (Progress of Agriculture under Five Year Plans)

पहली योजना के समय भारत में खाद्य संकट से निपटने के लिए और कच्चे माल की आपूर्ति के लिए कृषि विशेषकर खाद्यान्न उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कुल योजना परिव्यय का 31 प्रतिशत व्यय कृषि क्षेत्र को आवंटित किया गया। फलस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन 620 लाख टन के लक्ष्य की अपेक्षा बढ़ाकर 670 लाख टन हो गया। अन्य वस्तुओं जैसे- खाद्य तेलों के लक्ष्य लगभग पूरे कर लिये गये और गन्ने, रूई एवं पटसन में लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये।

दूसरी योजना में औद्योगिकीकरण मुख्य लक्ष्य रहा कृषि पर व्यय कम कर दिया गया और यह कुल योजना परिव्यय का 20 प्रतिशत रह गया। कटौती के बावजूद कृषि क्षेत्र में प्रगति अच्छी रही हालाँकि सभी वस्तुओं का उत्पादन निर्धारित लक्ष्य की तुलना में कम रहा, केवल गन्ने की फसल में वृद्धि हुई । सरकार ने यह महसूस किया कि योजना के सफल होने के लिए कृषि क्षेत्र की सफलता नितान्त आवश्यक है | नई कृषि टेक्नोलॉजी के उपयोग के बावजूद विस्तृत एवं गम्भीर सूखे के कारण कृषि उत्पादन पर बुरा असर हुआ। सरकार को काफी आयात करना पड़ा और तीन साल के लिए योजना अवकाश माना गया। योजना आयोग ने यह स्वीकारते हुए कि कृषि क्षेत्र की प्रगति आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक शर्त है, आगे की योजनाओं में कृषि को प्राथमिकता दी। चौथी योजना में कृषि क्षेत्र पर फोकस के बावजूद निर्धारित लक्ष्य पूरे नहीं किये जा सके। पाँचवी योजना में भी कुल योजना परिव्यय का 22 प्रतिशत व्यय किया गया किन्तु 1973-74 की गम्भीर स्फीतिक दशा के कारण योजना के आकलनों में उलट फेर हो गया। 1975 के बाद कृषि क्षेत्र में सुधार के साथ योजना लक्ष्य पूरे कर लिये गये |

छठी योजना में कृषि क्षेत्र की वार्षिक वृद्धि दर 4.3 प्रतिशत रही। इसे दूसरी हरी क्रान्ति माना गया। पहली हरी क्रान्ति अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के कारण हुई किन्तु दूसरी हरी क्रान्ति अच्छे आदानों के साथ कृषि विस्तार सेवाओं की सफलता थी। पहली हरी क्रान्ति पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक

सीमाबाधित रही किन्तु दूसरी हरी क्रान्ति के क्षेत्र में विस्तार हुआ और वह पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और पूर्वीय उत्तर प्रदेश तक फैल गई और काफी सफलता हासिल की। तिलहनों को छोड़ बाकी कृषि उत्पादों में निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सके।

सातवीं योजना और आठवीं योजना में विशेष प्रोजेक्ट्स जैसे पूर्वीय क्षेत्र में चावल का उत्पादन, वर्षा पोषित कृषि, वाटरशेड कार्यक्रम, राष्ट्रीय तिलहन विकास प्रोजेक्ट, सामाजिक वानिकी आदि पर जोर दिया गया। सातवीं योजना में रूई के अलावा अन्य सभी क्षेत्रों में निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सके। सातवीं योजना के अन्त में उत्पादन स्तर में सुधार आया ।

आठवीं योजना में मौसम और जलवायु की परिस्थितियों के अनुकूल रहने से ज्यादातर लक्ष्य प्राप्त कर लिये गये। तिलहन, गन्ने, रूई और पटसन में निर्धारित लक्ष्य से अधिक उत्पादन रहा। खाद्यान्न उत्पादन में निर्धारित लक्ष्य 2,100 लाख टन से कम 1,990 लाख टन प्राप्त किया जा सका। नौवीं योजना कृषि लक्ष्यों को नहीं प्राप्त कर सकी। 2001-02 तक लक्षित 2340 लाख टन की अपेक्षा 2100 लाख टन ही खाद्यान्न उत्पादन रहा ।

दसवीं योजना में कृषि विकास में पिछली योजनाओं की सफलताओं और विफलताओं का विश्लेषण किया गया और राष्ट्रीय कृषि नीति 2000 पर बल दिया गया। दसवीं योजना में क्षेत्र विभेदक रणनीति अपनायी गई और ऐसे विकास को अपनाया गया जो टेक्नोलॉजी पर्यावरणीय एवं आर्थिक दृष्टि से टिकाऊ हो । कृषि क्षेत्र के लिए 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। फसल विविधीकरण पर बल दिया गया और उच्च कीमत वाली और अधिक लाभदायक फसलों को प्रोत्साहित किया गया। जैव खेतों, आधारभूत संरचना में मजबूती, सिंचाई की नई प्रणालियों का प्रयोग आदि पर विशेष जोर दिया गया ।

ग्यारहवीं योजना का भी लक्ष्य कृषि वृद्धि दर 4 प्रतिशत रखा गया है । निगम क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे वे संविदा खेती द्वारा फलों, सब्जियों एवं अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ायें। किसानों को बीज उर्वरक और आश्वस्त विपणन का प्रोत्साहन दिया जा रहा है ।

आज, वर्तमान कृषि नीति में भाजपा सरकार ने कृषि की अर्थव्यवस्था में भूमिका को पुनः सुदृढ किया है। वर्तमान में कृषि विकास दर लगभग 4% है, और कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 15% योगदान करते हैं, जिसमें लगभग 45% श्रमिक कृषि पर आश्रित हैं । प्रधानमंत्री धन-धान्य कृषि योजना एक छह-वर्षीय मिशन योजना (2025–31), 100 कमजोर जिलों में कृषि और डेयरी विकास को बढ़ावा देने हेतु 24,000 करोड़ रूपये वार्षिक निवेश पर आधारित है ।

इसके अलावा, कृषि समृद्धि योजना जैसे राज्य-स्तरीय योजनाएँ, जैसे महाराष्ट्र में, 5,000 करोड़ रूपये वार्षिक निवेश के साथ जलवायु अनुकूल खेती, माइक्रो सिंचाई, जैविक कृषि और मूल्य श्रृंखला को सुदृढ कर रही हैं ।

सरकार ने कृषि बजट में 2025–26 के लिए 15% से अधिक वृद्धि की है, जिसकी कुल राशि लगभग 1.75 लाख रूपये करोड़ है। इस निवेश का ध्यान उच्च उपज वाले बीज, संग्रहण एवं भंडारण अवसंरचना, दालों, तेलबीनों, सब्जियों और दुग्ध उत्पादनों को बढ़ावा देना है। साथ ही,दाले,उत्पादन को 2030 तक 300 लाख टन तक पहुंचाने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाया जा रहा है; सरकार द्वारा राज्य-स्तरीय। खरीद गारंटी दी जा रही है ताकि आवक निर्भरता कम हो सके।

कुल मिलाकर, भारत की कृषि नीति अब मानव स्रोत, विज्ञान, तकनीकी नवाचार, जलवायु-सहानुभूति, मूल्य-श्रृंखला, बीमा, बुनियादी ढाँचे, और किसानों की आय वृद्धि को मध्य में रखकर बनाई जा रही है। इससे स्पष्ट होता है कि कृषि नीतियों की दिशा अब किसान केंद्रित, टिकाऊ और परिणाम उन्मुख हो चुकी है।

योजना काल में कृषि की संवृद्धिदर

क्रमांक	योजना का नाम	अवधि	कृषि संवृद्धि दर (%)
1	प्रथम योजना	1951–56	2.71
2	द्वितीय योजना	1956–61	3.15
3	तृतीय योजना	1961–66	–0.73
4	चतुर्थ योजना	1969–74	2.57
5	पाँचवीं योजना	1974–79	3.28
6	छठी योजना	1980–85	2.52
7	सातवीं योजना	1985–90	3.47
8	आठवीं योजना	1992–97	4.72
9	नौवीं योजना	1997–2002	2.44
10	दसवीं योजना	2002–07	2.30
11	ग्यारहवींयोजना (लक्ष्य)	2007–12	4.00 (लक्षित)

स्रोत- ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) Vol.I, P.25

मौजूदा पंचवर्षीय योजना (2007-12) के दौरान कृषि क्षेत्र निष्पादन मौजूदा पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्षों के दौरान कृषि क्षेत्र (सम्बद्ध गतिविधियों सहित) ने प्रति वर्ष 4 प्रतिशत के योजना लक्ष्य की तुलना में 2.03 प्रतिशत की औसत विकास दर दर्ज की। 2007-08 में कृषि क्षेत्र ने 5.8 प्रतिशत की शानदार विकास दर प्राप्त की किन्तु इसे कायम नहीं रखा जा सका तथा कृषि क्षेत्र का विकास घटकर 2008-09 में 0.1 प्रतिशत के नकारात्मक जोन में जा पहुंचा, यद्यपि यह वर्ष 234.47 मिलियन टन खाद्य उत्पादन का रिकार्ड वर्ष था। कृषि सकल घरेलू उत्पाद के विकास में गिरावट मुख्यतः कृषि फसलों जैसे तिलहन, कपास, जूट तथा मेस्ता और गन्ने के उत्पादन में कमी के कारण हुई। 2009-10 में खराब दक्षिण-पश्चिम मानसून के कारण खरीफ फसल में गिरावट दर्ज हुई पर अच्छी रबी फसल के कारण इसमें 0.4 प्रतिशत का मामूली सुधार हुआ। योजना के पहले चार वर्षों में कृषि क्षेत्र का विकास 2.87 प्रतिशत अनुमानित है।

ग्यारहवीं योजना (2007–12) में सरकार ने कृषि क्षेत्र में 4% की संवृद्धि दर का लक्ष्य रखा था, हालांकि यह लक्ष्य पूरी तरह से प्राप्त नहीं हो सका। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारत में कृषि विकास योजनाओं के अनुरूप रहा है, परंतु यह भी दिखता है कि विभिन्न समयों में प्राकृतिक, तकनीकी, और नीतिगत कारणों से कृषि क्षेत्र की संवृद्धि दर में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं।

6.4.1 कृषि क्षेत्र में निवेश का ढाँचा

पहली तीन योजनाओं में "कृषि क्षेत्र" के अन्तर्गत सम्मिलित थे कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र (उद्यान, कृषि, पशुपालन और मत्स्य) एवं सिंचाई तथा बाढ़, नियंत्रण। आगे की योजनाओं में "ग्रामीण विकास और विशेष

क्षेत्र कार्यक्रम " शामिल किये गये और सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण को छोड़ दिया गया। प्रत्येक योजना में कुल परिव्यय में बढ़ोत्तरी हुई साथ ही साथ कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों पर परिव्यय में भी वृद्धि हुई किन्तु कुल योजना परिव्यय के प्रतिशत के रूप में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का प्रतिशत प्रथम योजना से दसवीं योजना के दौरान 31 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के मध्य रहा।

योजना आयोग ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु कई प्रोग्राम शुरू किये थे- सिंचाई, भू- संरक्षण, शुष्क खेती, भूउद्धरण, उर्वरकों एवं खादों का संभरण और देश भर में कृषि विस्तार सेवाएं, भू-सुधार, परिवहन, पावर, विपणन और अन्य बुनियादी सुविधाओं का विस्तार, सहकारी कृषि, वित्त आदि| तीसरी योजना के बाद हरित क्रान्ति लागू होने के बाद सिंचाई, उर्वरक, बीज, टेक्नोलॉजी प्रयोग में है । कुल अगर सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण और ग्रामीण विकास को शामिल कर लें तो कृषि पर व्यय 'योजना परिव्यय के 20 से 24 प्रतिशत के बीच रहा। पहली योजना में यह 31 प्रतिशत था।

कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में सरकारी परिव्यय का ढाँचा (करोड़ रूपये)

क्रमांक	योजना का नाम	अवधि	कुल परिव्यय (करोड़)	कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र का परिव्यय (करोड़)	कुल परिव्यय में प्रतिशत (%)
1	प्रथम योजना	1951–56	1,960	600	31
2	दूसरी योजना	1956–61	4,670	950	20
3	तीसरी योजना	1961–66	8,580	1,750	21
4	चौथी योजना	1969–74	15,800	3,670	24
5	पाँचवीं योजना	1974–79	39,430	8,740	22
6	छठी योजना	1980–85	1,09,300	26,100	24
7	सातवीं योजना	1985–90	2,18,730	47,100	23
8	आठवीं योजना	1992–97	4,75,480	1,01,599	21
9	नौवीं योजना	1997–2002	8,17,000	1,61,880	20
10	दसवीं योजना	2002–07	15,25,640	3,05,055	20
11	ग्यारहवीं योजना	2007–2012	36,44,718	6,74,105	18.5

6.5 न्यून कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कारण (Reasons for low agricultural production and productivity)

6.5.1 मिट्टी में दोष- भारतीय मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी, भूमि का कटाव, पानी का भरना आदि पाया जाता है।

6.5.2 कृषि पर जनसंख्या वृद्धि का बढ़ता हुआ दबाव -

भारतीय कृषि पर जनसंख्या का दबाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । 1901 की जनगणना के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल 0.43 हेक्टेयर था जो 2001 में घटकर 0.20 हेक्टेयर रह गया है। जनसंख्या में हुई वृद्धि को उद्योगों में खपाया नहीं जा पाया है। पारम्परिक दस्तकारियों में लगे हुए व्यक्तियों ने भी उन्हें छोड़कर कृषि को आजीविका के साधन के रूप में अपना लिया है । परिणामतः खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गये, प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा कम हो गई और कृषि में अदृश्य बेरोजगारों की संख्या बढ़ गई। जनसंख्या के इस दबाव को जब तक कृषि भूमि से अन्य क्षेत्रों में प्रतिस्थापित नहीं किया जाता तब तक कृषि विकास में ज्यादा सफलता नहीं मिल सकती ।

6.5.3 फ़ार्म भिन्न सेवाओं की कमी -

वित्त एवं विपणन व्यवस्था अपर्याप्त है। ये सुविधाएं या तो उपलब्ध नहीं हैं या बहुत महंगी हैं। निरन्तर सुधार के बावजूद अभी भी काफी सम्भावनाएं बाकी हैं। भारतीय कृषकों के सदा ही ऋणों से दबे होने के कारण वे अपने कृषि व्यवसाय में उत्पादन वृद्धि के लिए धन का विनियोजन करने में असमर्थ रहते हैं। जब कृषि में आधारभूत आदानों की कमी रहती है तो उत्पादन भी कम होता है । ऋण लेकर नई प्रकार के जेनेटिकली मॉडीफाइड बीजों के इस्तेमाल करने और फसलों के असफल होने पर ऋणों की अदायगी न कर पाने के कारण कितने ही किसानों ने आत्महत्या कर ली। विपणन व्यवस्था की भी दशा बहुत अच्छी नहीं है इसलिए किसानों को अपनी उपज का अच्छा मूल्य नहीं मिल पाता। वेयरहाउसिंग और भण्डारण की सुविधाएं अभी भी अपर्याप्त हैं। फसलों की सुरक्षा का अभाव है ।

6.5.4 जोतों का आकार छोटा होना -

भारत में जोत का औसत आकार बहुत छोटा है अर्थात पाँच एकड़ से भी कम । ये जोतें छोटी होने के साथ छोटे टुकड़ों में बंटी हैं । भारत में कृषि जोतों का आकार आकर के आधार पर जोतों को 4 वर्गों में रखा जा सकता है सीमांत जोतें ऐसी जोतें जो 1 हेक्टेयर से कम होती हैं। इनका भाग कुल क्षेत्रफल का 15 प्रतिशत है। सीमान्त जोतों का औसत आकार केवल 0.40 हेक्टेयर है ।

छोटी जोतें 1 से 4 हेक्टेयर की सीमा में आने वाली जोतें शामिल की जाती हैं । 1990-91 में इस वर्ग में जोतों की संख्या 340 लाख और इनके आधीन क्षेत्रफल बढ़कर 670 लाख हेक्टेयर अर्थात कुल क्षेत्रफल का 41 प्रतिशत हो गया। मध्यम जोतें-इसके अन्तर्गत 4 से 10 हेक्टयर की सीमा में आने वाली जोतों को शामिल किया जाता है । 1990-91 में मध्यम जोतों की मात्रा 80 लाख थी जो कुल जोतों का 7 प्रतिशत थी। मध्यम जोतों के अधीन 450 लाख हेक्टेयर क्षेत्र है जो कुल क्षेत्र का 27 प्रतिशत है। इन जोतों का औसत आकार 5.6 हेक्टेयर है । बड़ी जोतें इसके अन्तर्गत 10 हेक्टेयर या इससे अधिक आकार वाली जोते शामिल की जाती है। 1990-91 की गणना के अनुसार ऐसी जोतों की संख्या 2 प्रतिशत है तथा इनका क्षेत्रफल कुल क्षेत्र का 17 प्रतिशत है। भारत में जोतों का औसत आकार 1.41 हेक्टेयर है, जबकि अन्य देशों में औसत आकार बहुत अधिक है, जैसे आस्टेलिया में 1,993, अर्जेण्टीना में 270, कनाडा में 188 व अमरीका में 158 हेक्टेयर है। खेतों के छोटा होने के कारण वैज्ञानिक विधि से खेतीबाड़ी सम्भव नहीं है । फलस्वरूप समय, श्रम और पशुशक्ति का भारत अपव्यय होता है। सिंचाई सुविधाओं के उचित उपयोग में कठिनाई होती है। खेतों का छोटा आकार भारतीय कृषि की निम्न उत्पादिता का एक प्रमुख कारण है।

6.5.5 भू-पट्टेदारी का ढाँचा -

जमींदारी तथा भू-स्वामित्व की प्रणालियों के अन्तर्गत कृषक उस जमीन का स्वामी नहीं होता था जिसे वह जोतता है। भारत में यद्यपि जमींदारी प्रथा समाप्त हो चुकी है तथा भूमि सुधार लागू हैं फिर भी अनेक क्षेत्रों में वास्तविक रूप में कृषकों को भूमि उपलब्ध नहीं हो पायी है। जिन व्यक्तियों के पास बड़े-बड़े खेत हैं वे अपने खेतों को पट्टेदारी व आध-बंटाई पर दे देते हैं। इस प्रकार जो व्यक्ति खेतों की जुताई आदि कार्य करते हैं वे भूमि के स्वामी न होने के कारण कृषि क्रियाओं पर उचित ध्यान नहीं देते हैं जिसके कारण उत्पादन कम मात्रा में होता है।

6.5.6 तकनालाजीय कारण

भारत में आज भी बिना स्पष्ट कृषि रणनीति के खेती की जाती है। आधुनिक और उन्नत कृषि उपकरणों की उपलब्धता तो है, लेकिन उनका उपयोग सीमित मात्रा में ही हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप, कृषि में उत्पत्ति का ह्रास नियम निरंतर प्रभावी होता जा रहा है, जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो गई है।

लगातार खेतीबाड़ी से कई क्षेत्रों की भूमि पूर्णतः निःसत्व (Unproductive) हो चुकी है। ऐसी स्थिति में भूमि की उर्वरता को फिर से बढ़ाने और परती (बंजर) भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए सभी प्रकार की खादों जैविक, रासायनिक और हरित तकनीक आधारित खादों के संतुलित उपयोग की आवश्यकता है।

हालाँकि, भारत में गोबर की खाद, रासायनिक उर्वरकों और जैविक तकनीकों की पहुँच सीमित है। साथ ही, कृषि अनुसंधान से प्राप्त नवीनतम तकनीकी जानकारी किसानों तक समय पर नहीं पहुँच पाती, जिसके कारण वे इन नवाचारों का समुचित लाभ नहीं उठा पाते।

6.5.7 अपर्याप्त सिंचाई सुविधाएं -

भूमि, बीज, खाद अनुकूलतम प्रयोग उत्पादन बढ़ाने में तभी किया जा सकता है जब इन सबके पूरक के रूप में उचित और नियमित व्यवस्था की जाए। भारत में कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर कम है क्योंकि देश के अधिकांश किसान वर्षा पर निर्भर है और कृत्रिम सिंचाई की सुविधाएं बहुत कम हैं। योजनाकाल में बड़ी और छोटी सिंचाई योजनाओं के प्रबल विकास के बावजूद कुल खेती योग्य भूमि के केवल 33 प्रतिशत में ही सिंचाई व्यवस्था का लाभ उठाया जाता है।

6.6 निम्न उत्पादकता को दूर करने के प्रयास (Efforts to overcome low productivity)

कृषि क्षेत्र में सुधार हेतु निम्न उत्पादकता के कारणों में सुधार हेतु बहुत सम्भावनांए हैं। ग्रामीण जनसंख्या के लिए वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराए जाएं जिससे कृषि पर निर्भर रहने वाले लोगों के प्रतिशत में कमी आए क्योंकि अभी भी 57 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है जबकि इस क्षेत्र का कुल राष्ट्रीय आय में योगदान घटता जा रहा है (6.2 प्रतिशत वर्तमान में)। इससे ज्ञात होता है कि अदृश्य बेरोजगारों की संख्या कृषि क्षेत्र में काफी अधिक है और वहाँ से लोगों को स्थानान्तरित करना आवश्यक है। उन्नत बीज उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय बीज निगम व बड़े-बड़े फार्मों की स्थापना की गई है। किसानों को उन्नत उपकरणों, बीजों, रासायनिक खादों आदि के लाभों से कृषकों को परिचित कराना तथा उनका प्रयोग करने की दिशा में प्रेरित करना। भिन्न- भिन्न स्थानों पर रासायनिक खाद बनाने के कारखाने भारतीय खाद्य निगम व अन्य संस्थाओं की स्थापना की जा रही है। फसलों को कीटाणुओं व रोगों से बचाने के लिए केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने अलग से एक सैल की स्थापना की है जो आवश्यकता के समय हेलीकॉप्टर से कीट या रोगनाशक दवाइयों का छिड़काव करता है। भू-सुधार को लागू किया गया किन्तु इसकी कमियों को दूर कर इसको और सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। कृषकों को नवीन तकनीकी में प्रशिक्षित करने की सुविधाएं उपलब्ध हैं इसको

और विस्तृत करने की आवश्यकता है क्योंकि किसान उनके लिए चलाये गये प्रोग्रामों से अपरिचित हैं। कृषि मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की स्थापना। ग्रामीण बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार हेतु बैंकों को ग्रामीण शाखाएं खोलने के लिए निर्देशित किया जा रहा है। कृषि अनुसंधान एवं विकास के लिए कई विश्वविद्यालय खोले गये हैं। कई बीमा योजनाएं किसानों के लिए चलाई जा रही हैं। कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार करने के लिए विनियमित बाजारों, सहकारी समितियों, भण्डारगृहों, शीत गोदामों, विभिन्न निगमों की स्थापना की गई है। नीतियों और प्रोग्रामों की कमी नहीं है, जरूरत है दृढ़ इच्छाशक्ति और ईमानदारी से उन्हें सफल बनाने की।

6.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. निम्नलिखित में से कौन-सा कारक कृषि उत्पादकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है?

a) खेल गतिविधियाँ

b) जलवायु और वर्षा

c) फिल्म निर्माण

d) अंतरिक्ष अनुसंधान

2. भारत में कृषि उत्पादकता कम होने का एक मुख्य कारण क्या है?

a) उच्च निवेश

b) आधुनिक तकनीक का उपयोग

c) सीमांत भूमि का उपयोग

d) पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ

3. निम्नलिखित में से कौन-सी प्रवृत्ति कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु सहायक नहीं है?

a) सिंचाई व्यवस्था का विस्तार

b) उन्नत बीजों का प्रयोग

c) भूमि का अति उपयोग

d) कीट नियंत्रण तकनीक

4. निम्न में से कौन-सा तकनीकी कारक कृषि उत्पादकता में सुधार लाता है?

a) श्रमिकों की कमी

b) औद्योगिक हड़ताल

c) मशीनीकरण

d) कुपोषण

रिक्त स्थान भरें -

1. भारत में कृषि भूमि का एक बड़ा भाग ___________ वर्षा पर निर्भर करता है।
2. उन्नत बीज, रासायनिक खाद और आधुनिक यंत्र ___________ कारकों में आते हैं।
3. कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किसानों को ___________ की जानकारी होना आवश्यक है।
4. भूमिहीन किसानों को कृषि उत्पादन से जुड़ने में ___________ की कमी सबसे बड़ी बाधा है।

सत्य/असत्य -

1. कृषि उत्पादन केवल भूमि की मात्रा पर निर्भर करता है।
2. अधिक सिंचाई सुविधाएँ कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती हैं।
3. वैज्ञानिक उपकरणों और उर्वरकों का प्रयोग कृषि उत्पादकता में वृद्धि लाता है।
4. परंपरागत बीजों की तुलना में उन्नत बीजों की उत्पादकता कम होती है।

6.8 सारांश (Summary)

कृषि उत्पादन में वृद्धि दो तरीकों से की जा सकती है क्षेत्रफल में वृद्धि एवं उत्पादकता में वृद्धि । योजनाकाल की शुरूआत से अब तक कुछ उतार चढ़ाव के बावजूद कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों में सुधार आया है। कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र के परिव्यय में बढ़ोत्तरी हुई है, यदि कुल योजना परिव्यय के प्रतिशत के रूप में देखें तो पहली योजना को छोड़, बाकी योजनाओं में यह प्रतिशत 20 से 24 प्रतिशत के बीच रहा है। भारत में कम उत्पादन एवं उत्पादकता का कारण है मिट्टी के दोष, कृषि पर जनसंख्या वृद्धि का बढ़ता हुआ दबाव, फार्म भिन्न सेवाओं की का आकार छोटा होना, भू-पट्टेदारी का ढाँचा और तकनालाजीय कारण है। सरकार ने विभिन्न योजनाओं और बजटों में कृषि क्षेत्र के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा सुधार हेतु प्रयासरत हैं। कृषि फसलों के विविधीकरण के साथ खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने पर जोर।

6.9 शब्दावली (Glossary)

- **खरीफ (Kharif)** – वे फसलें जो वर्षा ऋतु में बोई जाती हैं और शरद ऋतु में काटी जाती हैं।
- **कृषि उत्पादकता (Agricultural Productivity)** – प्रति इकाई भूमि पर कृषि उत्पादन की मात्रा।
- **मोटे अनाज (Coarse Grains)** – ऐसे अनाज जिनके दाने बड़े और रेशेदार होते हैं, जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का।
- **हरित क्रांति (Green Revolution)** – उच्च उत्पादक किस्मों, सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों से कृषि उत्पादन में हुई बड़ी वृद्धि।
- **निम्न उत्पादकता (Low Productivity)** – जब उत्पादन क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1.b) जलवायु और वर्षा

2. d) पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ

3. c) भूमि का अति उपयोग

4. c) मशीनीकरण

रिक्त स्थान भरें -

1. मानसूनी
2. तकनीकी
3. वैज्ञानिक पद्धतियों
4. संसाधनों

सत्य/असत्य -

1. असत्य
2. सत्य

3. सत्य
4. असत्य

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy, Academic Foundation
- Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- Rao, Hanumantha C. H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
- दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद ।
- आर्थिक समीक्षा (2010-11), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार ।

6.12 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- अर्थव्यवस्था, अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।
- भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा
- आर्थिकी 2011 भारत एवं विश्व, सम सामयिक घटना चक्र प्रकाशन, इलाहाबाद
- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भारत में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ क्या हैं?
2. भारत में निम्न उत्पादकता के क्या कारण हैं?
3. निम्न उत्पादकता को दर करने के सरकारी प्रयासों की व्याख्या कीजिए?
4. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन कृषि प्रगति की क्या दिशा रही है?

इकाई - 7 कृषि साख एवं कृषि विपणन
(Agricultural Credit and Agricultural Marketing)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)
7.2 उद्देश्य(Objectives)
7.3 कृषि साख का वर्गीकरण (Classification of Agricultural Credit)
7.4 कृषि साख के संस्थागत स्रोत (Institutional sources of agricultural credit)
7.5 कृषि वित्त नीति (Agricultural Finance Policy)
7.6 कृषि विपणन व्यवस्था (Agricultural marketing system)
7.7 कृषि विपणन को सुधारने के सरकारी प्रयास (Government efforts to improve agricultural marketing)
7.8 कृषि विपणन में नये आयाम (New dimensions in agricultural marketing)
7.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
7.10 सारांश (Summary)
7.11 शब्दावली (Glossary)
7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
7.14 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
7.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

7. 1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में हम दो मुख्य खण्डों पर चर्चा करेंगे कृषि साख एवं कृषि विपणन । कृषि साख के अन्तर्गत इसका विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण, संस्थानात्मक स्रोतों की विस्तृत चर्चा और नये परिदृश्य में विभिन्न कृषि वित्त के आयामों पर चर्चा करेंगे। कृषि साख सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक उत्प्रेरक का कार्य करती है । नवीन व्यूह रणनीति में हमने देखा कि वह पूंजी सघन व्यवस्था है। इस रणनीति को अपनाने के लिए मूलभूत आवश्यकता है पूंजी, जिसका अधिकतर किसानों के पास अभाव होता है । इसलिए वे ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध कृषि वित्त के विभिन्न स्रोतों पर निर्भर होते हैं । कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए आवश्यक है उचित ब्याज दर एवं उचित समय पर ऋण की उपलब्धता। गैर संस्थागत स्रोतों में साहूकार और व्यापारियों द्वारा शोषण से बचाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी बढ़ जाती है । किन्तु उत्पादन में अनिश्चितता के कारण कृषि को वाणिज्य बैंकों एवं बीमा कम्पनियों के लिए एक जोखिमपूर्ण व्यवसाय माना जाता है ।

दूसरे खण्ड कृषि विपणन में विपणन व्यवस्था की कमजोरियों और इन दोषों को दूर करने के विभिन्न सरकारी नीतियों की चर्चा की जायेगी। किसानों की स्थिति सुधारने के लिए कृषि के उन्नत तरीकों से उत्पादन बढ़ाने के साथ यह आवश्यक है कि उनके द्वारा उत्पादित अतिरेक को बाजार में उचित मूल्य दिलाया जाए जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो और वे उधार को वापस कर सके। इस दृष्टि से कृषि वित्त और कृषि विपणन में घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ कृषि साख के विभिन्न स्रोतों की जानकारी से परिचित होंगे ।
- ✓ कृषि वित्त नीति के मुख्य उद्देश्य समझ सकेंगे।
- ✓ ऋण के संस्थानात्मक स्रोतों की विशेष रूप से चर्चा कर सकेंगे।
- ✓ कृषि विपणन की भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्थिति एवं उसको सुधारने के उपायों की विवेचना कर सकेंगे।

7.3 कृषि साख का वर्गीकरण (Classification of Agricultural Credit)

7.3.1 उद्देश्य के अनुसार ऋण

मोटे तौर पर ऋण को दो वर्गों में बांटा जाता है:-

(क) उत्पादक उद्देश्य - ये चालू एवं पूंजी व्यय के रूप में फार्म एवं गैर-फार्म कार्यों के हेतु लिए जाते हैं । ये ऋण परिवार की आर्थिक क्रिया को बढ़ाने के साथ परिवार के कल्याण को प्रोन्नति करते हैं । उत्पादक ऋण का बड़ा हिस्सा आर्थिक उन्नति की ओर संकेत करता है ।

(ख) अनुत्पादक ऋण - ये ऋण परिवार के खर्च को पूरा करने, मुकदमेबाजी की लागत को पूरा करने एवं कई प्रकार की व्यक्तिगत जरूरतों के लिए प्राप्त किए जाते हैं। इनसे उत्पादन में वृद्धि नहीं होती। यदि इन्हें बार-बार लिया जाता है तो आय सृजन के आभाव में वापस न कर पाने के कारण परिवार तंग-हाल हो सकता है ।

7.3.2 स्रोत के आधार पर वर्गीकरण

I. गैर-संस्थानात्मक स्रोत

1. गाँवों में दो प्रकार के साहूकार होते हैं -

(क) जिनका व्यवसाय कुछ और होता है परन्तु वे सहायक व्यवसाय के रूप में उधार देते हैं। जैसे कृषक साहूकार व दुकानदार साहूकार|

(ख) दूसरे प्रकार के साहूकार जिनका व्यवसाय प्रमुखतया रूपया उधार देना होता है।

साहूकारों का महत्व आज के सन्दर्भ में कम हो गया है फिर भी गाँवों में साहूकारों के अस्तित्व के अनेक कारण हैं-

- साहूकार, उत्पादक और अनुत्पादक दोनों प्रकार के प्रयोजनों के लिए तथा अल्पावधि और दीर्घावधि दोनों प्रकार की आवश्कताओं के लिए किसान को खुले रूप में ऋण देता है।
- साहूकार कृषक को आसानी से उपलब्ध होता है कुछ परिवारों में वे पीढ़ियों से जुड़े रहते हैं।
- लेन-देन के तरीके सरल और लचीले होते हैं।
- ऋण वापसी सामान्यतया किसी न किसी तरह से कर लेते हैं।

2. व्यापारी एवं कमीशन एजेण्ट - व्यापारी एवं कमीशन एजेण्ट भी साहूकारों की तरह होते हैं क्योंकि इनकी ब्याज दरें अधिक होती हैं। ये फसल के पकने से पहले ही उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं और किसानों पर दबाव डालते हैं कि वे कम कीमत पर फसल बेचें। फलतः उन्हें भारी कमीशन वसूलने का मौका मिल जाता है

3.सम्बन्धी - ये अनौपचारिक रूप में लिए जाते हैं। इन पर या तो ब्याज लिया नहीं जाता या इनकी दर बहुत कम होती है, सामान्यतया ये फसल कटने के बाद लौटा दिये जाते हैं किन्तु ये स्रोत अनिश्चित एवं अपर्याप्त हैं।

4. भू-स्वामी एवं अन्य छोटे किसान एवं काश्तकार- भू-स्वामियों एवं अन्य पर अपनी आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहते हैं। इस वित्त के माध्यम से छल द्वारा छोटे किसानों की भूमि हड़प ली जाती है और भूमिहीन श्रमिकों को बन्धुआ मजदूर बनने पर मजबूर कर दिया जाता है।

गैर संस्थागत स्रोतों के दोष

ऊँची ब्याज दर के कारण कभी-कभी किसान मूलधन एवं ब्याज लौटाने में असमर्थ होते हैं, छोटे किसानों को आसानी से ऋण नहीं मिल पाता और इन ऋणों का प्रयोग मुख्यतया अनुत्पादक उपभोग कार्यो के लिए होता है।

संस्थागत स्रोत जिसमें सहकारी समितियाँ, व्यापारिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, भूमि विकास बैंक, नाबार्ड आदि आते हैं। ये सभी प्रकार के किसानों को ऋण उपलब्ध कराते हैं और इनकी ब्याज दर उचित और कम होती है। किसान शोषण से बच जाते हैं।

7.3.3 अवधि के आधार पर ये तीन भागों में विभक्त किये जाते हैं-

(क) अल्प कालीन ऋण-जो 7 महीने से कम अवधि के लिए होते हैं और कृषक कृषि सम्बन्धी अल्पकालीन आवश्यकता जैसे बीज, खाद, जानवरों के लिए चारा आदि तथा गृहकार्य के लिए लेता है। ये ऋण अल्पावधि ऋण होते हैं जो साधारणतया फसल काटने पर चुका दिये जाते हैं।

(ख) मध्यम कालीन ऋण- जो 7 महीने से अधिक तथा 5 वर्ष से कम अवधि के लिए होते हैं और सामान्यतया पशु खरीदने, खेत पर कुछ सुधार लाने, छोटे मोटे औजार खरीदने के लिए किये जाते हैं।

अल्पावधि ऋणों की तुलना में ये ऋण अधिक मात्रा में होते हैं और इन्हें अपेक्षाकृत अधिक समय बाद ही चुकाया जा सकता है ।

(ग) दीर्घकालीन ऋण - यदि अतिरिक्त भूमि खरीदने, भूमि में स्थायी सुधार करने ऋण अदा करने तथा महंगी मशीन खरीदने आदि के लिए लिये जाते हैं तथा जिनकी अवधि 5 वर्ष से ऊपर की होती है।

7.4 कृषि साख के संस्थागत स्रोत

7.4.1 सहकारी ऋण समितियाँ

सहकारी ऋण समितियाँ (Cooperative Credit Societies) ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में किसानों, मजदूरों, कारीगरों, छोटे व्यापारियों और अन्य जरूरतमंद व्यक्तियों को सस्ते और सुलभ ऋण उपलब्ध कराने हेतु स्थापित की जाती हैं। इनका उद्देश्य लाभ कमाना न होकर अपने सदस्यों की आर्थिक सहायता करना होता है।

सहकारी ऋण समितियों की विशेषताएँ:

1. ये समितियाँ "एक व्यक्ति, एक मत" के सिद्धांत पर कार्य करती हैं, जिसमें प्रत्येक सदस्य को बराबर का अधिकार होता है, चाहे उसकी पूँजी कितनी भी हो।
2. कोई भी पात्र व्यक्ति समिति की निर्धारित शर्तों के अनुसार सदस्य बन सकता है। सदस्य ही समिति के मालिक होते हैं।
3. समितियों का संचालन संबंधित क्षेत्र के लोगों द्वारा ही किया जाता है, जिससे पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित होती है।
4. ये समितियाँ अपने सदस्यों को अन्य वित्तीय संस्थाओं की अपेक्षा कम ब्याज दर पर ऋण देती हैं।
5. अर्जित लाभ का एक भाग रिजर्व फंड में जमा किया जाता है तथा शेष लाभांश के रूप में सदस्यों को वितरित किया जाता है।

भूमिका और महत्व:

1. किसानों को बीज, खाद, कीटनाशक आदि के लिए ऋण देकर उत्पादन बढ़ाने में मदद करती हैं।
2. ये समितियाँ किसानों को साहूकारों की उच्च ब्याज दरों से बचाती हैं।
3. ग्रामीण गरीबों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने का कार्य करती हैं।
4. छोटे व्यवसायियों को ऋण देकर उनके व्यापार को बढ़ावा देती हैं।

सहकारी ऋण समितियाँ ग्रामीण भारत की आर्थिक रीढ़ मानी जाती हैं। यदि इन्हें सुदृढ़, पारदर्शी और आत्मनिर्भर बनाया जाए तो ये देश की समावेशी विकास नीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

7.4.2 भूमि विकास बैंक

ये बैंक किसान की भूमि बन्धक रखकर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते हैं । यह सस्ता होने के साथ लम्बे समय में अदा किया जाता है। पिछली ऋण अदायगी, नई जमीन खरीदने, ट्यूबवेल लगवाने, भूमि पर स्थायी सुधार हेतु इन बैंकों से ऋण लेना सुविधाजनक होता है। कुछ राज्यों में केन्द्रीय तथा प्राथमिक भूमि विकास बैंक होते हैं पर कुछ राज्यों में जहाँ प्राथमिक भूमि विकास बैंक नहीं हैं, वहाँ केन्द्रीय भूमि विकास बैंक की शाखाएं हैं। भूमि विकास बैंकों की पूँजी अंशपूंजी, जमा, ऋण पत्रों के निर्गमन आदि से प्राप्त होती है। इन बैंकों की ऋण देने की क्षमता में नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्त की सुविधा के माध्यम से वृद्धि हुई है किन्तु बहुत से किसान इसकी लाभदायकता से परिचित नहीं हैं । ये भूमि की प्रतिभूति के विरूद्ध ऋण देते हैं, इस कारण बड़े भूस्वामियों ने इनका लाभ उठाया है परन्तु छोटे किसान इसके लाभों से वंचित रह गये हैं ।

7.4.3 वाणिज्य बैंक

1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद वाणिज्यिक बैंकों को कृषि क्षेत्र की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य किया गया। इसके परिणामस्वरूप, जून 1969 तक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों ने कृषि क्षेत्र को मात्र रुपये44 करोड़ का ऋण प्रदान किया था। लेकिन समय के साथ इन बैंकों द्वारा कृषि वित्त में निरंतर वृद्धि हुई। वर्ष 2008–09 तक यह राशि बढ़कर रुपये 2,02,856 करोड़ हो गई, जो कुल कृषि ऋण का लगभग 76.5 प्रतिशत थी। इसके बाद भी कृषि क्षेत्र में वाणिज्यिक बैंकों की भागीदारी निरंतर बढ़ती रही। वर्ष 2023–24 में यह राशि बढ़कर लगभग रुपये 28 लाख करोड़ तक पहुँच गई, और राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) के अनुसार वित्त वर्ष 2025–26 तक यह रुपये 32 लाख करोड़ को पार कर सकती है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि राष्ट्रीयकरण के बाद वाणिज्यिक बैंक ग्रामीण और कृषि क्षेत्र के विकास में एक सशक्त स्तंभ बनकर उभरे हैं।

7.4.4 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) की स्थापना भारत सरकार ने 2 अक्टूबर 1975 को ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएँ सुलभ कराने और ग्रामीण गरीबों को संस्थागत वित्तीय सेवाओं से जोड़ने के उद्देश्य से की थी। इन बैंकों का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण जनता , विशेषकर लघु एवं सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, कारीगरों, स्व-सहायता समूहों (SHGs) और ग्रामीण लघु उद्यमियों को सस्ते, सुलभ और समय पर ऋण एवं अन्य बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करना है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976' (RRB Act, 1976) के अंतर्गत स्थापित किए गए हैं। इनका स्वामित्व त्रिस्तरीय होता है: भारत सरकार (50%), संबंधित राज्य सरकार (15%) और प्रायोजक वाणिज्यिक बैंक (35%)। प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का कार्यक्षेत्र कुछ निश्चित जिलों तक सीमित होता है, जहाँ यह कृषि, लघु उद्योग, ग्रामीण शिल्प और ग्रामीण विकास से संबंधित गतिविधियों में संलग्न रहता है।

1975 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में 'प्रथमा बैंक' के रूप में पहला क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किया गया था। समय के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की संख्या में वृद्धि हुई, लेकिन कार्यकुशलता बढ़ाने और परिचालन लागत घटाने हेतु भारत सरकार ने 2005 के बाद से इन बैंकों के विलय और पुनर्गठन की प्रक्रिया शुरू की। परिणामस्वरूप, मार्च 2024 तक देशभर में 43 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कार्यरत हैं, जो लगभग सभी राज्यों में मौजूद हैं।

डिजिटल युग में ये बैंक कोर बैंकिंग प्रणाली (CBS) से पूरी तरह जुड़ चुके हैं और डिजिटल लेन-देन, मोबाइल बैंकिंग, आधार आधारित भुगतान प्रणाली , प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), प्रधानमंत्री जनधन योजना (PMJDY), किसान क्रेडिट कार्ड (KCC), पीएम स्वनिधि योजना, और आत्मनिर्भर भारत योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सेवाओं का विस्तार कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, ये बैंक बीमा और पेंशन योजनाओं जैसे प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (PMJJBY), प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (PMSBY) और अटल पेंशन योजना (APY) के प्रचार-प्रसार में भी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ग्रामीण भारत की वित्तीय समावेशन (financial inclusion) प्रक्रिया में एक सशक्त माध्यम बन चुके हैं। वे आज न केवल ऋण प्रदान कर रहे हैं, बल्कि वित्तीय साक्षरता, महिला सशक्तिकरण

और डिजिटल सशक्तिकरण के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वर्तमान समय में ये बैंक "सबका साथ, सबका विकास" के वित्तीय आधार स्तंभ के रूप में कार्य कर रहे हैं।

7.4.5 सरकार द्वारा ग्रामीण उधार

सरकार किसानों को आपातकालीन परिस्थितियों जैसे अकाल, बाढ़, ओलावृष्टि, सूखा अथवा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय रियायती ब्याज दर पर ऋण प्रदान करती है। वर्तमान में प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (PACS), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) और वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से किसानों को 7 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर ऋण दिया जाता है, जिसमें समय पर ऋण चुकाने पर 3 प्रतिशत की ब्याज छूट (interest subvention) प्रदान की जाती है, जिससे प्रभावी ब्याज दर घटकर 4 प्रतिशत हो जाती है। ये ऋण सामान्यतः लघु और सीमांत किसानों को फसल ऋण (crop loan) के रूप में उपलब्ध कराए जाते हैं, जिन्हें आसान किश्तों में चुकाया जा सकता है। ऋण की अदायगी भूमि-राजस्व (भू-कर) के साथ नहीं, बल्कि बैंक से लिए गए शर्तानुसार की जाती है।

हालाँकि, सरकार द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) योजना, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT), और डिजिटल प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के बावजूद, ज़मीनी स्तर पर समस्याएँ अभी भी विद्यमान हैं। कई किसानों को ऋण प्राप्त करने के लिए दस्तावेज़ों की जटिलता, बैंकिंग प्रणाली की अनभिज्ञता, दलालों की भूमिका और भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुछ स्थानों पर अधिकारी किसानों से ऋण स्वीकृति के बदले रिश्वत माँगने की शिकायतें भी सामने आई हैं। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाओं की सीमित संख्या और डिजिटल साक्षरता की कमी भी ऋण वितरण में बाधक बनी हुई है।

यद्यपि सरकार द्वारा किसानों को आपदा की स्थिति में सहायता प्रदान करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं, लेकिन इन योजनाओं का वास्तविक लाभ हर ज़रूरतमंद किसान तक पारदर्शिता और दक्षता के साथ पहुँच सके, इसके लिए अभी और सुधार की आवश्यकता बनी हुई है।

7.4.6 नाबार्ड

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना 12 जुलाई 1982 को भारत सरकार द्वारा शिवरामन समिति (Shivaraman Committee) की सिफारिशों के आधार पर की गई थी। NABARD की स्थापना का मुख्य उद्देश्य कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों के सतत एवं समावेशी विकास को सुनिश्चित करना है। इसका मुख्यालय मुंबई में स्थित है।

नाबार्ड की अधिकृत पूंजी रुपये30,000 करोड़ (2024 तक) निर्धारित की गई है, जबकि इसकी चुकता पूंजी रुपये 20,000 करोड़ के आसपास है, जो भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) द्वारा संयुक्त रूप से प्रदान की जाती है। रिज़र्व बैंक NABARD के निदेशक मंडल में अपने तीन केंद्रीय बोर्ड के निदेशकों को नामित करने और अपने एक उप-गवर्नर को अध्यक्ष नियुक्त करने का अधिकार रखता है (हालाँकि अब अध्यक्ष की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है)।

नाबार्ड को भारत सरकार, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों और बाजारों से धन प्राप्त होता है। यह अपने संसाधनों को ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं को पुनर्वित्त (Refinance) के रूप में प्रदान करता है। नाबार्ड को अल्पकालिक सार्वजनिक जमा स्वीकार करने की अनुमति नहीं है, इसलिए यह अल्पकालिक ऋण और कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को RBI और अन्य स्रोतों से प्राप्त निधियों के माध्यम से पूरा करता है।

नाबार्ड का सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन स्रोत है, ग्रामीण अवसंरचना विकास निधि (RIDF), जिसकी स्थापना 1995–96 के केन्द्रीय बजट में रुपये 2,000 करोड़ की प्रारंभिक पूंजी के साथ की गई थी। इसका उद्देश्य उन ग्रामीण आधारभूत संरचना परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना था जो राशि के अभाव में राज्य सरकारें पूरी नहीं कर पा रही थीं। अब, केवल राज्य सरकारें ही नहीं, बल्कि पंचायती राज संस्थान (PRIs), स्वयं सहायता समूह (SHGs), सहकारी संस्थाएं, किसान उत्पादक संगठन (FPOs), और गैर-सरकारी संगठन (NGOs) भी RIDF के तहत परियोजनाएँ क्रियान्वित कर सकते हैं।

नाबार्ड का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक है। यह न केवल ग्रामीण वित्तपोषण संस्थाओं को पुनर्वित्त सुविधा प्रदान करता है, बल्कि ग्रामीण सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs), प्राथमिक कृषि ऋण समितियों (PACS) आदि की क्षमता विकास, निगरानी, और पर्यवेक्षण भी करता है। साथ ही, नाबार्ड कृषि विपणन, जलवायु परिवर्तन अनुकूलन परियोजनाएँ, डिजिटल फाइनेंशियल सेवाएँ, और कृषि तकनीकी नवाचार को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों का संचालन भी करता है।

7.5 कृषि वित्त नीति (Agricultural Finance Policy)

कृषि वित्त नीति उन दिशानिर्देशों, कार्यक्रमों और उपायों का समुच्चय है, जिनके माध्यम से सरकार और वित्तीय संस्थाएं किसानों को कृषि गतिविधियों हेतु आवश्यक धन उपलब्ध कराती हैं। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में कृषि वित्त नीति का उद्देश्य किसानों को सस्ती, सुलभ और समय पर ऋण उपलब्ध कराकर उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाना, जोखिम को कम करना और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाना है।

मुख्य उद्देश्य:

- किसानों को समय पर और पर्याप्त मात्रा में ऋण उपलब्ध कराना।
- लघु, सीमांत और गरीब किसानों की ऋण सुलभता को सुनिश्चित करना।
- कृषि निवेश (जैसे सिंचाई, मशीनरी, बीज, खाद) को प्रोत्साहन देना।
- संस्थागत ऋण की पहुँच बढ़ाना और साहूकारी प्रणाली पर निर्भरता घटाना।
- कृषि में जोखिम प्रबंधन और बीमा को बढ़ावा देना।

प्रमुख पहल और उपाय:

- फसल ऋण (Crop Loan): किसानों को बीज, खाद, कीटनाशक आदि हेतु अल्पकालिक ऋण।
- पूंजीगत ऋण (Term Loan): ट्रैक्टर, सिंचाई पंप, गोदाम, डेयरी जैसी गतिविधियों के लिए दीर्घकालिक ऋण।
- किसान क्रेडिट कार्ड (KCC): 1998 में शुरू की गई यह योजना किसानों को आवश्यकता के अनुसार ऋण उठाने की सुविधा देती है।
- ऋण माफी एवं राहत योजनाएँ: सूखा, बाढ़, फसल क्षति जैसी आपदाओं की स्थिति में किसानों को राहत देने हेतु सरकार द्वारा ऋण माफी या पुनर्निर्धारण।
- PM-KISAN, PMFBY और कृषि इंफ्रास्ट्रक्चर फंड: किसानों को आय सहायता, फसल बीमा और भंडारण/प्रसंस्करण हेतु वित्तीय समर्थन।

चुनौतियाँ:

- गैर-संस्थागत ऋणदाताओं (महाजनों) पर अब भी निर्भरता
- ऋण की असमान वितरण व्यवस्था
- ऋण चुकाने में असमर्थता और किसानों की आत्महत्या की घटनाएँ
- ऋण माफी की नीति का दीर्घकालिक प्रभाव

नवीन प्रयास (2023–24):

- डिजिटल ऋण प्लेटफ़ॉर्म का विकास
- AgriStack और eNAM जैसे डिजिटल कृषि सुधारों के साथ वित्तीय सेवाओं का एकीकरण
- कृषि अवसंरचना कोष (AIF) के माध्यम से रुपये 1 लाख करोड़ की सहायता योजना
- PACS (प्राथमिक कृषि साख समितियों) का कम्प्यूटरीकरण और उन्हें बहुउद्देशीय संस्था के रूप में विकसित करने की योजना

कृषि वित्त नीति भारत में कृषि सुधारों की रीढ़ है। यह न केवल किसानों को ऋण उपलब्ध कराती है, बल्कि उनकी आजीविका, उत्पादन, भंडारण और विपणन तक को प्रभावित करती है। एक प्रभावी और समावेशी कृषि वित्त नीति ही आत्मनिर्भर किसान और समृद्ध ग्रामीण भारत का आधार बन सकती है। 7.5.1 किसान क्रेडिट कार्ड गयी जिससे किसानों को व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से ऋण लेने में सुविधा हो सके। नाबार्ड क्रेडिट कार्ड की प्रबन्धक इकाई है जबकि सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक इसे किसानों को बांटने की वितरक एजेन्सीज हैं। शुरू से लेकर अब तक बांटे गये कार्डों में सर्वाधिक अंश व्यापारिक बैंकों का रहा है। इसके प्राप्तकर्ताओं का वैयक्तिक दुर्घटना के विरूद्ध 5,000 रूपये का बीमा और मृत्यु के विरूद्ध या स्थायी अयोग्यता के विरूद्ध 25,000 रूपये का बीमा भी किया जाता है।

7.5.2 किसानों के लिए ऋण माफी योजना

2008-09 बजट में घोषित यह योजना मुख्यतया छोटे तथा सीमान्त किसानों द्वारा 31 मार्च 1997 से 31 मार्च 2007 के बीच लिए गये ऋण से सम्बन्धित हैं। पूर्ण ऋण माफी उन्हीं किसानों को दी जायेगी जिनका जोत 2 हेक्टेयर (5 एकड़) से कम है। बड़े किसानों को यह छूट दी गयी कि यदि वे जून 2009 तक अपने ऋणों का भुगतान अधिक से अधिक तीन किश्तों में कर दें तो इन्हें 25 प्रतिशत की छूट प्राप्त होगी। सूखा के कारण केन्द्रीय बजट 2009-10 में इसे अक्टूबर 2009 तक बढ़ा दिया गया है | इसके क्रियान्वयन के सम्बन्ध में व्यापारिक तथा सहकारी बैंकों के सम्बन्ध में नोडल एजेन्सी रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा ग्रामीण संस्थाओं की नोडल एजेन्सी नाबार्ड है।

वर्तमान में भारत में केंद्र द्वारा कोई फसल ऋण माफी नहीं दी जा रही, बल्कि राज्य सरकारें ही समय-समय पर अपने किसानों को ऋण माफी या राहत देती हैं। विशेषज्ञों की सलाह है कि इन योजनाओं को सीमित, पारदर्शी और सतत आर्थिक सुधार योजनाओं के साथ संयोजित तरीके से लागू किया जाए, ताकि ग्रामीण ऋण प्रणाली और आर्थिक स्थिरता बनी रहे।

7.5.3 कृषि बीमा योजनाएं –

प्रायोगिक फसल बीमा योजना (1974–75): इस योजना की शुरुआत आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु राज्यों में कपास, मूंगफली और गेहूं जैसी फसलों के लिए की गई थी। यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना थी, जिसका उद्देश्य किसानों को प्राकृतिक आपदाओं से आंशिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना था।

पायलट फसल बीमा योजना (1979): यह योजना 9 राज्यों – आंध्र प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, ओडिशा, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश – में लागू की गई। इसमें कपास, मूंगफली, मक्का और बाजरा/ज्वार को शामिल किया गया।

व्यापक फसल बीमा योजना (Comprehensive Crop Insurance Scheme - CCIS, 1985): प्रारंभ में कुछ राज्यों में शुरू हुई यह योजना बाद में पूरे देश में लागू की गई। इसका उद्देश्य प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियों में फसल हानि की भरपाई करना था। इसे कृषि ऋण लेने वाले किसानों पर केंद्रित किया गया था।

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (National Agricultural Insurance Scheme - NAIS, 1999): इस योजना को दलहन, तिलहन, मोटे अनाज, बाद में गन्ना, कपास, आलू, बागवानी और वाणिज्यिक फसलों तक विस्तारित किया गया। यह केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से लागू की गई थी, जिसमें व्यय को केंद्र और राज्य समान रूप से वहन करते थे।

कृषि आय बीमा योजना (Farm Income Insurance Scheme - FIIS, 2003–04): इसका उद्देश्य किसानों को उनकी कुल आय की गारंटी देना था, जो न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर आधारित थी। लेकिन यह योजना सीमित प्रयोग में ही रही और इसे व्यापक स्तर पर लागू नहीं किया गया।

वर्षा बीमा योजना (Weather-Based Crop Insurance Scheme - WBCIS, 2004): इसे भारतीय कृषि बीमा निगम लिमिटेड (AIC) द्वारा शुरू किया गया। यह योजना मानसून आधारित है और इसमें वर्षा की मात्रा, तापमान, आर्द्रता आदि मौसम मानकों पर आधारित क्षतिपूर्ति दी जाती है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY – 2016 से वर्तमान तक लागू): 18 फरवरी 2016 से प्रारम्भ हुआ। इसका उद्देश्य किसानों को सभी प्रकार की फसल हानि से व्यापक सुरक्षा प्रदान करना। खरीफ फसलों के लिए प्रीमियम 2%,रबी फसलों के लिए प्रीमियम 1.5%,वाणिज्यिक एवं बागवानी फसलों के लिए प्रीमियम 5% प्रीमियम का शेष भाग केन्द्र और राज्य सरकारें साझा रूप से वहन करती हैं। यह योजना NAIS और WBCIS की जगह लाई गई थी, जो अब समाप्त हो चुकी हैं। योजना के तहत अब डिजिटल क्लेम सेटलमेंट, सैटेलाइट इमेज, ड्रोन सर्वे, और मोबाइल ऐप (Crop Insurance App) का उपयोग किया जाता है।

वर्तमान स्थिति (2024–25):योजना को और अधिक पारदर्शी, लाभकारी और स्वैच्छिक बनाने हेतु कई संशोधन किए गए हैं।"एक राष्ट्र, एक योजना" के अंतर्गत यह प्रमुख कृषि बीमा योजना के रूप में कार्यरत है।FPOs, SHGs, और गैर-ऋणी कृषकों को भी शामिल करने की प्रक्रिया चल रही है। किसानों को सीधे DBT के माध्यम से बीमा क्लेम राशि प्राप्त हो रही है।

भारत में फसल बीमा योजनाओं ने 1970 के दशक में एक प्रयोग के रूप में शुरुआत की थी, जो आज प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के रूप में एक व्यापक, तकनीक-सक्षम और किसान-केंद्रित व्यवस्था में परिवर्तित हो चुकी है। यह योजना भारतीय कृषि प्रणाली में जोखिम प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण स्तंभ बन गई है।

7.6 कृषि विपणन व्यवस्था (Agricultural marketing system)

किसानों की स्थिति में सुधार हेतु उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ उसका उचित विपणन आवश्यक है जिससे उनको अपने उत्पादों का उचित मूल्य मिल सके और वे पूँजी सघन उन्नत उत्पादन की तकनीकों में निवेश कर सकें। अतिरिक्त उत्पादन का विक्रय किसान तीन तरीके से करते हैं -

i. अतिरिक्त फसल ग्राम के साहूकार या महाजन एवं व्यापारी को बेच देना। व्यापारी स्वयं के लिए कृषि उत्पादन क्रय कर सकता है अथवा किसी बड़ी वाणिज्यिक फर्म या बड़े व्यापारी का अभिकर्ता (एजेन्ट) बनकर फसल खरीद सकता है ।

ii. किसान अपने उत्पादन को साप्ताहिक या अर्ध साप्ताहिक ग्राम बाजारों (हाट) में बेच सकता है । मेलों में अपने उत्पादन और पशुओं को बेच सकते हैं ।

iii. उत्पादन मण्डियों में बेच सकते हैं। यह उत्पादन केन्द्रों से दूर हो सकती है, यातायात की सुविधाओं के आभाव में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। दलालों के माध्यम से किसान आढ़तियों (थोक व्यापारियों) को अपना उत्पादन बेचते हैं ।

भारत में कृषि विपणन अत्यन्त ही दोषपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण है जिससे किसानों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। ज्यादातर भारतीय कृषक गरीब तथा अशिक्षित हैं इसलिए वह अपने हित और बाजार में व्यापारियों एवं दलालों की कुटिलताओं को समझ नहीं पातें। व्यापारी किसानों की गरीबी का नाजायज फायदा उठाते हैं और उन्हें बाध्य करते हैं कि किसान अपनी फसल खलिहान से ही कम दाम पर उन्हें बेच दें। संग्रह के लिए गाँवों में गोदामों की उचित सुविधा न होने से उनकी 10 से 20 प्रतिशत उपज चूहे, चीटियाँ आदि नष्ट कर देते हैं । अतः अपने उत्पादन को रोक कर रखने की क्षमता कम होती और वे ऊँचा मूल्य मिलने का इंतजार नहीं कर सकते। किसानों की निर्धनता और ऋण ग्रस्तता उन्हें अपने उत्पादों का बाध्य विक्रय, महाजनों और व्यापारियों को करने पर विवश कर देती है। परिणामतः उनकी कमजोर स्थिति और कमजोर हो जाती है । गाँवों से मण्डी तक ले जाने के लिए उचित यातायात सुविधाएं नहीं हैं, बहुत सी कच्ची सड़कें बरसात में इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं। इस कारण समृद्ध किसान जिनके पास काफी अतिरेक उपलब्ध होता है मण्डियों में नहीं जाना चाहते। किसानों को मण्डियों में अपनी फसल बेचने के लिए काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है । किसान का कोई संघ नहीं होता जबकि मण्डी के व्यापारियों का संघ होता है । इस कारण उनकी सौदा शक्ति अधिक होती है । किसान दलालों के माध्यम से आढ़तियों को अपनी फसल बेंचता है जिनकी आम तौर पर मिलीभगत होती है, फलस्वरूप जो कीमत निर्धारित होती है वह आढ़तियों के पक्ष में होती है न कि किसानों के। इसके अतिरिक्त माप और तौल के गलत बट्टों द्वारा किसानों को लूटा जाता है । किसान अपने उत्पादन का ग्रेडेशन भी नहीं कर पाता। इसलिए उसकी फसल को घटिया किस्म की बताकर उसका उचित मूल्य नहीं मिल पाता। किसान और अन्तिम उपभोक्ता के बीच बिचौलियों की अधिक संख्या के कारण उपज का काफी भाग हड़प उठता है । किसानों को बड़ी-बड़ी मण्डियों में प्रचलित कीमतों की सही जानकारी न होने की वजह से भी दलालों और आढ़तियों द्वारा तय कीमत स्वीकारनी पड़ती है ।

7.7 कृषि विपणन को सुधारने के सरकारी प्रयास (Government efforts to improve agricultural marketing)

सरकार ने कृषि विपणन को उन्नतशील करने के लिए कई उपाय किये हैं । अखिल भारतीय भण्डारागार निगम की स्थापना जो कस्बों तथा मण्डियों में गोदामों को स्थापित तथा प्रबन्धित करता है । किसानों की उपज का क्रय-विक्रय हेतु सहकारी विपणन एवं विधायन समितियों की स्थापना की गई है। ग्रामीण यातायात सुविधाओं को विकसित किया जा रहा है । विनियमित मण्डियों के माध्यम से किसानों के हितों की रक्षा करना । बाजार सम्बन्धी सूचनाओं को प्रसारित करने के लिए विभिन्न साधन अपनाये जा रहे हैं। कृषि वस्तुओं की कीमतें सरकार द्वारा कृषि कीमत आयोग की सिफारिशों के आधार पर निश्चित की जाती हैं।

7.7.1 विनियमित मण्डियाँ

कृषि विपणन की प्रणाली को अधिक पारदर्शी, निष्पक्ष और किसानोन्मुख बनाने के उद्देश्य से भारत में विनियमित मण्डियों की स्थापना की गई थी। ये मण्डियाँ राज्य सरकार द्वारा बनाए गए APMC (Agricultural Produce Market Committee) अधिनियमों के तहत स्थापित की जाती हैं। इनका उद्देश्य किसानों को बिचौलियों के शोषण से बचाना, उचित समर्थन मूल्य दिलाना, और व्यापार व्यवहार को विनियमित करना है।

ई-नाम (e-NAM) प्लेटफॉर्म (2016): केंद्र सरकार ने किसानों को एकीकृत राष्ट्रीय कृषि बाजार से जोड़ने के लिए e-NAM (National Agriculture Market) प्लेटफॉर्म शुरू किया है। यह डिजिटल पोर्टल देशभर की मंडियों को जोड़ता है जिससे किसान अपनी उपज को पारदर्शी और प्रतिस्पर्धात्मक बोली के माध्यम से बेच सकते हैं।

मण्डियों का डिजिटलीकरण: अधिकांश राज्यों की APMC मण्डियों को कम्प्यूटरीकृत किया गया है। बोली प्रक्रिया, भुगतान प्रणाली और ट्रैकिंग अब डिजिटल माध्यमों से होने लगी है, जिससे भ्रष्टाचार में कमी आई है।

कृषि उपज व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्धन और सुविधा) अधिनियम, 2020: केंद्र सरकार ने 2020 में नया कानून लागू किया जिससे किसानों को APMC मंडी के बाहर भी उपज बेचने की आज़ादी मिली। इससे निजी मंडियाँ, सीधे अनुबंध पर बिक्री, एफपीओ (FPOs) के माध्यम से व्यापार को बल मिला है।

FPOs और निजी बाजारों की भूमिका: किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) और निजी खरीदारों को भी अब अधिक अधिकार मिल रहे हैं जिससे वे सीधे किसान से खरीद कर सकें। इससे प्रतिस्पर्धा बढ़ी है और किसानों को बेहतर दाम मिल पा रहे हैं।

नई मण्डियों का विस्तार: पारंपरिक अनाज और दलहन के साथ अब पशुपालन, दुग्ध, फल, फूल, सब्जी और मत्स्य उत्पादों के लिए विशिष्ट मंडियाँ बनाई जा रही हैं। शीतगृह, प्रसंस्करण इकाइयाँ और ग्राम स्तर के संग्रहण केंद्र भी जोड़े जा रहे हैं।

डिजिटल भुगतान प्रणाली: अब मंडियों में लेनदेन को डिजिटल माध्यमों से करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे भुगतान में पारदर्शिता और त्वरित निपटान सुनिश्चित किया जा सके।

वर्तमान में विनियमित मंडियाँ केवल एक भौतिक बाजार स्थान नहीं रहीं, बल्कि डिजिटल, प्रतिस्पर्धात्मक और किसानोन्मुख कृषि बाजार प्रणाली की दिशा में अग्रसर हैं। हालांकि कुछ राज्यों में APMC प्रणाली अभी भी पारदर्शिता और दक्षता की चुनौतियों से जूझ रही है, परंतु सुधारात्मक कदम जैसे e-NAM, FPOs, और नई नीति सुधार किसानों के लिए बाजार की पहुंच और लाभप्रदता को बेहतर बना रहे हैं।

7.7.2 सहकारी विपणन

कृषि विपणन व्यवस्था में सहकारी विपणन समितियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं । 10 या 10 से अधिक किसान मिलकर अपने उत्पादों को बेचने के उद्देश्य से सहकारी विपणन समितियों का निर्माण करते हैं। 1954 से पहले सहकारी साख समितियाँ तथा सहकारी विपणन समितियाँ अलग- अलग बनायी जाती थी पर 1954 के बाद बहुउद्देश्यीय समितियों का गठन शुरू हुआ। समिति के सदस्य अपनी अतिरिक्त उपज समिति को बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं । जब सदस्य अपना उत्पाद समिति को देते हैं उसके बदले उन्हें कुछ अग्रिम मिल जाता है। समिति सदस्यों तथा गैर सदस्यों के उत्पाद अपने पास एकत्र करती है, उनका

विधायन तथा ग्रेडिंग कर उन्हें बेचने की व्यवस्था करती है । यदि बाजार मूल्य नीचा होता है तो वह कुछ दिन इंतजार करके उसे बेचती है । उपज बिकते ही किसानों को उपज की शेष कीमत भी अदा कर दी जाती है । व्ययों को काटने के बाद यदि समिति को लाभ होता है तो वह लाभांश के रूप में सदस्यों के बीच बांट दिया जाता है । विपणन समितियाँ किसानों के संघ के रूप में कार्य करती हैं जिससे उन्हें अपने उत्पादन का उचित मूल्य सुनिश्चित हो सके। इसका प्रबन्धन वैतनिक कर्मचारियों द्वारा किया जाता है । एक समिति के अधीन कई गाँव होते हैं।

सहकारी विपणन समितियों के लाभः-

- सहकारी विपणन प्रणाली सामूहिक सौदा शक्ति प्रदान कर निर्बल किसानों को मजबूती और न्याय देती है।
- अग्रिम मिलने के कारण किसानों की प्रतीक्षा करने की शक्ति बढ़ती है और उनके दैनिक क्रिया-कलापों में बाधा नहीं आती ।
- समिति के भण्डार गृहों की वजह से उत्पाद चूहों, चींटियों आदि से सुरक्षित रहते हैं । समिति या तो यातायात के लिए खुद के या फिर सस्ते परिवहन की व्यवस्था करती है ।
- यह किसानों को अपने उत्पादों की गुणवत्ता सुधारने के लिए प्रेरित करती है और उन्हें मिलावट करने से रोकती है।
- संभरण (पूर्ति) को नियंत्रित कर कीमतों को प्रभावित करती है ।
- बिचौलियों को प्रतिस्थापित कर किसानों के लाभ को बढ़ाती है ।
- विपणन के अतिरिक्त गुणवत्तापूर्ण आदानों की व्यवस्था करवाती है । विपणन समितियों के अतिरिक्त कृषि विधायन समितियाँ भी बनायी जा सकती हैजो कृषि विपणन में सहायक है ।

भारत सरकार और रिजर्व बैंक के सक्रिय प्रोत्साहन के अधीन सहकारी विपणन ने महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू, उत्तर प्रदेश और बिहार में भारी प्रगति की है । अखिल भारतीय ग्राम साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के आधार पर सहकारी विपणन और सहकारी साख के बीच सम्बन्धों को प्रोत्साहित किया जा रहा है । है ।सहकारी विधायन समितियाँ जिनकी संख्या 1962-63 में 326 थी आज के सन्दर्भ में लगभग 2,500 है। चीनी उत्पादन के 58 प्रतिशत भाग के लिए सहकारी समितियाँ जिम्मेदार हैं । सहकारी चीनी कारखाने, चीनी प्राप्ति, क्षमता उपयोग और उप-उत्पादों के प्रयोग में सक्षम हैं। इन समितियों ने सामाजिक सेवाओं, कृषि विस्तार, शिक्षा संस्थाएं और अस्पताल स्थापित करने में विशेष योगदान किया है । यह समितियां नान- फार्म क्रियाओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित कर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन में भी सहायक हो रहीं हैं ।

राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन भारतीय संघ

भारत में सहकारी संस्थाएं कृषि विकास, जनजातीय सशक्तिकरण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (NAFED) देश का एक शीर्ष सहकारी संगठन है, जो कृषि वस्तुओं की खरीद, भंडारण, वितरण, निर्यात एवं आयात में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। यह आवश्यक वस्तुओं को अधिशेष वाले क्षेत्रों से अभावग्रस्त क्षेत्रों तक पहुंचाकर बाजार में संतुलन स्थापित करता है। वर्तमान समय में नैफेड मूल्य समर्थन योजना (PSS) और मूल्य स्थिरीकरण कोष (PSF) के अंतर्गत न्यूनतम समर्थन मूल्य पर उपज की खरीद करके किसानों के हितों की

रक्षा करता है। साथ ही, यह FPOs, डिजिटल मार्केटिंग तथा ई-नीलामी प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से विपणन व्यवस्था को आधुनिक रूप प्रदान कर रहा है।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) की स्थापना 1963 में हुई थी और वर्तमान में यह 'सहकार से समृद्धि' के सिद्धांत पर कार्य कर रहा है। यह सहकारी समितियों के माध्यम से कृषि, डेयरी, पशुपालन, मत्स्य, बागवानी, कुटीर उद्योग आदि क्षेत्रों में उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण तथा विपणन को प्रोत्साहन देने के लिए वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करता है। निगम ने युवाओं के लिए 'युवा सहकार' और ग्रामीण क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण के लिए विशेष योजनाएं प्रारंभ की हैं। इसके माध्यम से देश में सहकारी आंदोलन को नई ऊर्जा और दिशा मिल रही है।

भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिषद (TRIFED) की स्थापना 1987 में जनजातीय समुदायों को व्यापारिक शोषण से बचाने और उनके उत्पादों को उचित मूल्य दिलाने हेतु की गई थी। वर्तमान में यह "TRIBES India" ब्रांड के अंतर्गत जनजातीय उत्पादों जैसे हस्तशिल्प, वन उत्पाद, हस्तनिर्मित वस्त्र आदि को देश-विदेश में विपणन कर रहा है। इसके अतिरिक्त, 'वन धन योजना' के अंतर्गत जनजातीय समूहों को संगठित कर उन्हें प्रशिक्षण, मूल्य संवर्धन और बाजार तक पहुंच उपलब्ध कराई जा रही है। TRIFED ने डिजिटल प्लेटफॉर्म, ई-कॉमर्स और मोबाइल ऐप्स के माध्यम से जनजातीय उत्पादों की पहुंच को व्यापक बनाया है, जिससे आत्मनिर्भरता और आजीविका को मजबूती मिली है।

इन तीनों संगठनों की भूमिकाएं आज के समय में और अधिक व्यापक एवं प्रभावशाली हो गई हैं, जो न केवल उत्पादकों के हितों की रक्षा कर रही हैं, बल्कि ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों के समग्र विकास में भी सहायक सिद्ध हो रही हैं।

7.7.3 भण्डारण तथा वेयर हाउसिंग

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि विपणन और भण्डारण व्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार किए गए हैं, जिससे किसानों को बेहतर बाजार सुविधाएं, भण्डारण संरचनाएं और मूल्य प्राप्ति सुनिश्चित हो सके। सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक भण्डागारों के निर्माण हेतु ग्रामीण भण्डारण योजना को सशक्त किया है, जिसमें भण्डारण अवसंरचना निधि (WIF) के माध्यम से वित्तीय सहायता दी जा रही है। ई-नाम (e-NAM) प्लेटफॉर्म की शुरुआत के माध्यम से किसानों को देशभर की मंडियों से जोड़कर पारदर्शी और प्रतिस्पर्धी मूल्य प्राप्त करने की सुविधा दी जा रही है। अब तक 1300 से अधिक मंडियाँ ई-नाम से जुड़ चुकी हैं। शीत भण्डारण के विस्तार पर भी विशेष ध्यान दिया गया है, विशेषकर नाशवान वस्तुओं जैसे फल, सब्जी, मछली व दुग्ध उत्पादों के लिए।

कृषि विपणन को प्रोत्साहित करने हेतु संविदाकारी कृषि अधिनियम 2020 को पारित किया गया था, जिससे किसान अपने उत्पादों के लिए पूर्व-निर्धारित मूल्य पर कंपनियों या व्यापारिक इकाइयों के साथ अनुबंध कर सकते हैं, हालांकि इस कानून को बाद में वापस ले लिया गया। इसके बावजूद प्रत्यक्ष विपणन, निजी निवेश, और एफपीओ (किसान उत्पादक संगठन) के माध्यम से किसानों को बाजार से सीधे जोड़ने के प्रयास जारी हैं।

भण्डारण रसीद प्रणाली (WDRA - Warehouse Development and Regulatory Authority) को और प्रभावशाली बनाकर किसानों को उनके भण्डारित उत्पादों के एवज में बैंक ऋण आसानी से उपलब्ध

कराया जा रहा है। इसके तहत इलेक्ट्रॉनिक नेगोशिएबल वेयरहाउसिंग रसीद (e-NWR) प्रणाली शुरू की गई है, जो बैंकों और किसानों के बीच पारदर्शिता व सुरक्षा को सुनिश्चित करती है।

वहीं, कृषि विपणन सुधारों को संस्थागत रूप देने हेतु राष्ट्रीय कृषि बाजार, AGMARKNET, और डिजिटल एक्सचेंज प्लेटफॉर्म्स का विस्तार किया गया है। सरकार का जोर अब सार्वजनिक-निजी भागीदारी के माध्यम से भण्डारण और विपणन अधोसंरचना के विकास पर है। मूल्य स्थिरीकरण कोष के अंतर्गत आवश्यक वस्तुओं के लिए हस्तक्षेप किया जाता है, जिससे उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के हित सुरक्षित रहें।

कुल मिलाकर, आज का कृषि विपणन तंत्र तकनीक-सक्षम, पारदर्शी और किसान-केंद्रित बन रहा है, जिसमें न केवल कृषि उत्पादों की बिक्री बल्कि भण्डारण, ऋण सुविधा, और गुणवत्ता प्रमाणीकरण जैसी सेवाएं भी समाहित हैं। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि की संभावनाएं बढ़ी हैं, बल्कि कृषि क्षेत्र की संपूर्ण आपूर्ति श्रृंखला भी सुदृढ़ हुई है।

7.8 कृषि विपणन में नये आयाम (New dimensions in agricultural marketing)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कृषि विपणन व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किए गए हैं और कई नई योजनाएं एवं प्रौद्योगिकी-आधारित पहलें लागू की गई हैं। 31 मार्च 2010 तक देश में 7,777 नियमित कृषि बाजार और 21,221 ग्रामीण आवधिक बाजार कार्यरत थे, लेकिन इसके बाद राष्ट्रीय कृषि बाजार (e-NAM) जैसी डिजिटल पहल के माध्यम से कृषि विपणन को आधुनिक रूप दिया गया है। e-NAM प्लेटफॉर्म की शुरुआत 2016 में हुई, जिसके अंतर्गत अब तक देश के 1,260 से अधिक मंडियों को जोड़ा जा चुका है, जिससे किसानों को पारदर्शी मूल्य, त्वरित भुगतान और अधिक बाजार विकल्प मिलने लगे हैं।

तकनीकी विस्तार को बढ़ावा देने के लिए कृषि तकनीकी प्रबंधन एजेंसी (ATMA) की स्थापना सभी जिलों में की जा चुकी है, और आत्मा कार्यक्रम को डिजिटल माध्यमों से और अधिक सशक्त किया गया है। किसान कॉल सेंटर (KCC) की पहुंच और सेवाएं भी बेहतर हुई हैं, जहां किसान टोल-फ्री नंबर 1800-180-1551 पर कॉल करके कृषि विशेषज्ञों से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि क्लीनिक और कृषि व्यवसाय केंद्र योजना के अंतर्गत निजी कृषि सेवा केंद्रों की संख्या में वृद्धि हुई है, जो कृषि स्नातकों द्वारा संचालित की जा रही हैं। ये केंद्र किसानों को वैज्ञानिक सलाह, कीटनाशक, खाद, उपकरण आदि की सेवा प्रदान करते हैं।

सरकार की विदेश व्यापार नीति के तहत "विशेष कृषि उत्पाद योजना" और "कृषि निर्यात नीति 2018" के माध्यम से बासमती चावल, आम, मसाला, प्याज, अदरक, हल्दी और सब्जियों के कृषि निर्यात को प्रोत्साहित किया जा रहा है। कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (APEDA) अब डिजिटल प्रमाणन, ट्रेसबिलिटी और निर्यात को सुविधाजनक बनाने के लिए तकनीकी प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रहा है।

वस्तुओं के वर्ग-विभाजन और मानकीकरण के क्षेत्र में भी तेजी से विकास हुआ है। एगमार्क की प्रमाणन प्रणाली को अब ऑनलाइन प्लेटफॉर्म से जोड़ा गया है, जिससे उत्पाद की गुणवत्ता और उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़ा है। नागपुर स्थित केन्द्रीय कोटि नियंत्रण प्रयोगशाला और देश के अन्य क्षेत्रीय प्रयोगशालाओं की क्षमता और दायरे को भी आधुनिक उपकरणों एवं प्रशिक्षण के माध्यम से सशक्त किया गया है।इन सभी

पहलों के माध्यम से भारत में कृषि विपणन प्रणाली अधिक प्रतिस्पर्धी, पारदर्शी और किसानोन्मुख बनती जा रही है, जिससे किसानों की आय बढ़ाने में सहायता मिल रही है।

7.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1.ऋण को मुख्य रूप से किस दो वर्गों में बाँटा गया है?

A. अल्पकालीन और दीर्घकालीन

B. उत्पादक और अनुत्पादक

C. संस्थागत और गैर-संस्थागत

D. औपचारिक और अनौपचारिक

2. निम्नलिखित में से कौन-सा संस्थागत स्रोत नहीं है?

A. सहकारी समितियाँ

B. वाणिज्यिक बैंक

C. भूमि विकास बैंक

D. साहूकार

3. निम्न में से कौन-सा कथन सहकारी ऋण समितियों की विशेषता नहीं है?

A. लाभ कमाना इनका प्रमुख उद्देश्य होता है

B. ये "एक व्यक्ति, एक मत" के सिद्धांत पर कार्य करती हैं

C. ये अपने सदस्यों को कम ब्याज पर ऋण देती हैं

D. समिति का संचालन संबंधित क्षेत्र के लोग करते हैं

4.वर्ष 2023–24 में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को लगभग कितनी राशि का ऋण प्रदान किया गया?

A. 2 लाख करोड़

B. 8 लाख करोड़

C. 28 लाख करोड़

D. 44 करोड़

2. सत्य/असत्य

1. वर्ष 1969 में वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था।
2. किसान क्रेडिट कार्ड योजना का संचालन केवल नाबार्ड करता है।
3. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना 1982 में हुई थी।
4. कृषि वित्त नीति का उद्देश्य केवल बड़े किसानों को ऋण देना है।

3. रिक्त स्थान भरें-

1. वर्ष 2023–24 में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को लगभग _______ रुपये का ऋण दिया गया।
2. किसान क्रेडिट कार्ड योजना की शुरुआत वर्ष _______ में की गई थी।
3. NABARD का मुख्यालय _______ में स्थित है।

4. प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना और अटल पेंशन योजना को _______ बैंक भी ग्रामीण स्तर पर प्रचारित करते हैं।

7.10 सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने जाना कि किसानों की प्राप्त बचत कम होने की वजह से और तकनीकी विकास की पद्धतियों के लिए धन पर्याप्त नहीं होता। इस कारण किसानों को विभिन्न गैर संस्थानात्मक और संस्थानात्मक स्रोतों से ऋण लेना पड़ता है। सरकारी प्रयासों और विभिन्न संस्थाओं के योगदान की विस्तृत चर्चा की गई है | अन्य व्यवसायों की तरह कृषि व्यवसाय की सफलता का मापदण्ड भी व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। कृषकों की आय कृषि उत्पादन की मात्रा और उन्हें बेचने पर प्राप्त कीमतों पर निर्भर करेगा। कृषि उत्पादन नवीन कृषि रणनीति, आगातों में परिवर्तन तथा कृषि साख से बढ़ सकता है। उत्पादों के उचित मूल्य के लिए कृषि विपणन व्यवस्था के दोषों को दूर करके विभिन्न सरकारी प्रयासों, नीतियों एवं संस्थाओं द्वारा कृषकों को बिचौलियों के छल से बचाना जरूरी है। इन सभी आयामों की विस्तृत चर्चा की गई। किसानों की दशा सुधारने के लिए कृषि साख एवं कृषि विपणन का महत्वपूर्ण स्थान है।

7.11 शब्दावली (Glossary)

- **कृषि साख (Agricultural Credit) –** किसानों को कृषि कार्यों के लिए दिया जाने वाला ऋण।
- **कृषि विपणन (Agricultural Marketing) –** कृषि उत्पादों की खरीद, बिक्री और वितरण की प्रक्रिया।
- **भूमि विकास बैंक (Land Development Bank) –** भूमि सुधार और कृषि विकास के लिए दीर्घकालिक ऋण प्रदान करने वाला बैंक।
- **नाबार्ड (NABARD) –** राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, जो ग्रामीण और कृषि वित्तीय विकास में सहायक है।
- **डिजिटल ऋण प्लेटफ़ॉर्म (Digital Lending Platform) –** ऑनलाइन माध्यम से ऋण उपलब्ध कराने की प्रणाली।
- **भंडारण (Storage) –** कृषि उत्पादों को सुरक्षित और संरक्षित रूप से रखने की प्रक्रिया।

7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न 1: उत्तर: B. उत्पादक और अनुत्पादक

प्रश्न 2: उत्तर: D. साहूकार

प्रश्न 3: उत्तर: A. लाभ कमाना इनका प्रमुख उद्देश्य होता है

प्रश्न 4: उत्तर: C. 28 लाख करोड़ रुपये

2. सत्य / असत्य

1. सही
2. गलत
3. सही
4. गलत

3. रिक्त स्थान भरें

1. 28 लाख करोड़
2. 1998
3. मुंबई
4.क्षेत्रीय ग्रामीण

7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy, Academic Foundation
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
- Rao, Hanumantha C. H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
- दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस.एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद ।

7.14 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- अर्थव्यवस्था अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

7.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. कृषि साख व्यवस्था को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत करिए ?
2. कृषि वित्त की प्रमुख संस्थाओं की विवेचना करिए ?
3. भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था के दोष बताइये?
4. कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार हेतु सरकारी प्रयासों पर चर्चा कीजिए?
5. सहकारी विपणन समितियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं?

इकाई- 8 औद्योगिक नीति एवं उदारीकरण (Industrial Policy and Liberalisation)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 उद्देश्य (Objectives)

8.3 औद्योगिक नीति का अर्थ (Meaning of industrial policy)

8.4 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति (Industrial Policy before 1991)

8.4.1 औद्योगिक नीति 1948 (Industrial Policy 1948)

8.4.2 औद्योगिक नीति 1956 (Industrial Policy 1956)

8.4.3उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951 (Industries Development and Regulation Act, 1951)

8.5 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति की समीक्षा (Review of Industrial Policy prior to 1991)

8.6 औद्योगिक नीति और उदारीकरण (Industrial Policy and Liberalisation)

8.7 नयी औद्योगिक नीति 1991 (New Industrial Policy 1991)

8.8 नयी औद्योगिक नीति का मूल्यांकन (Evaluation of the new industrial policy)

8.9 नयी औद्योगिक नीति की आलोचनाएं (Criticism of the new industrial policy)

8.10 नयी औद्योगिक नीति और उदारीकण के मापन (New Industrial Policy and Measures of Liberalisation)

8.11 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

8.12 सारांश (Summary)

8.13 शब्दावली (Glossary)

8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

8.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

8.16 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

8.17 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई से पहले की इकाईयों में भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना के अन्तर्गत उद्योग क्या है तथा इसका महत्व देश के विकास में क्या है को बता सकते है । इस इकाई में अध्ययन करेगें कि किसी भी देश का औद्योगिक विकास उसका नियमन एवं नियंत्रण औद्योगिक नीति के द्वारा किया जाता है । इसके अभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था आधुनिक युग की आर्थिक चुनौतियों का सामना नहीं कर सकती है। आप यह समझा सकेंगें कि स्वतंत्रता के बाद से अब तक औद्योगिक नीति में समय व परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन, परिवर्द्धन होता रहा है। इसके अध्ययन के बाद निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के विकास में सरकार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग की इच्छा एवं प्रयासों के स्वरूप का ज्ञान हो सकेगा ।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ 1981 से वर्तमान तक औद्योगिक नीति को जान सकेंगें |
- ✓ नयी औद्योगिक नीति 1991 का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगें ।
- ✓ औद्योगिक नीति 1991 और उदारीकण के सम्बन्ध का अध्ययन कर सकेंगें ।

8.3 औद्योगिक नीति का अर्थ (Meaning of industrial policy)

औद्योगिक नीति का तात्पर्य सरकार द्वारा की जाने वाली ऐसी औपचारिक घोषणा से है जिसके द्वारा सरकार उद्योगों के प्रति अपनायी जाने वाली सामान्य नीतियों का उल्लेख करती है किसी भी औद्योगिक नीति के मुख्य रूप से दो भाग हैं- प्रथम, सरकार की विचारधारा जो औद्योगीकरण का स्वरूप निश्चित करती है तथा द्वितीय इसको कार्यान्वित करने वाले नियम तथा सिद्धान्त जो इस नीति के पीछे विद्यमान विचारधारा को निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं ।

औद्योगिक नीति का तात्पर्य सरकार द्वारा घोषित उस नीति-निर्देशक ढाँचे से है, जिसके माध्यम से वह देश में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने, निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच संतुलन स्थापित करने, तथा आर्थिक संरचना को मजबूत करने हेतु दिशा-निर्देश प्रदान करती है। यह नीति न केवल उद्योगों की स्थापना, विनियमन और प्रबंधन से संबंधित होती है, बल्कि नवाचार, प्रतिस्पर्धा, निवेश आकर्षण, स्वरोजगार, स्टार्टअप, हरित प्रौद्योगिकी, डिजिटल निर्माण, निर्यात संवर्धन, और आत्मनिर्भरता जैसे आधुनिक विषयों को भी समाहित करती है।

वर्तमान औद्योगिक नीति केवल पारंपरिक उद्योग-स्थापना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नवाचार, तकनीकी अनुकूलन, रोजगार सृजन, और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारत की स्थिति मजबूत करने की दिशा में एक रणनीतिक और लचीला दृष्टिकोण प्रदान करती है।

8.4 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति (Industrial Policy before 1991)

भारत सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र के विकास को लेकर अपना दृष्टिकोण सर्वप्रथम वर्ष 1948 में प्रस्तुत औद्योगिक नीति प्रस्ताव के माध्यम से स्पष्ट किया था। इसके पश्चात 1956 में दूसरा औद्योगिक नीति प्रस्ताव लाया गया, जिसमें समाजवादी ढांचे के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई। इन दोनों नीतियों के बीच सरकार ने निजी उद्योगों के नियमन एवं नियंत्रण के लिए औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम, 1951 (IDRA) लागू किया।

हालांकि इन नीतियों की अत्यधिक नियंत्रणवादी स्वरूप के कारण अनेक अर्थशास्त्रियों और उद्योगपतियों द्वारा आलोचना की गई। परिणामस्वरूप, 1970 और 1980 के दशकों में भारत सरकार ने औद्योगिक नीति में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की दिशा में क्रमिक सुधार किए। इस सुधार प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण मोड़ वर्ष 1991 में आया, जब नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। इसमें लाइसेंसिंग प्रणाली, विदेशी निवेश पर नियंत्रण, और कई प्रतिबंधात्मक प्रावधानों को हटा दिया गया, जिससे निजी क्षेत्र को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

वर्तमान परिदृश्य में, औद्योगिक नीति का दायरा केवल विनिर्माण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें डिजिटल प्रौद्योगिकी, स्टार्टअप संस्कृति, हरित औद्योगीकरण, निर्यात संवर्धन, और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भागीदारी को भी सम्मिलित कर लिया गया है। "मेक इन इंडिया", "स्टार्टअप इंडिया", "उद्योग 4.0", "पीएलआई योजना (Production Linked Incentive Scheme)" तथा "आत्मनिर्भर भारत" जैसी पहलों के माध्यम से भारत सरकार आधुनिक औद्योगिक परिवेश को बढ़ावा देने हेतु सक्रिय प्रयास कर रही है।

इस प्रकार, भारत की औद्योगिक नीति अब एक नियंत्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल से आगे बढ़कर नवाचार, तकनीकी अनुकूलन, निजी निवेश और वैश्विक व्यापार सहभागिता की ओर उन्मुख हो चुकी है।

8.4.1 औद्योगिक नीति 1948 (Industrial Policy 1948)

भारत सरकार द्वारा 6 अप्रैल 1948 को घोषित की गई पहली औद्योगिक नीति स्वतंत्र भारत की आर्थिक दिशा को निर्धारित करने वाली एक ऐतिहासिक पहल थी। इस नीति ने देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव रखी, जिसमें सार्वजनिक (सरकारी) और निजी क्षेत्र दोनों को समान रूप से औद्योगिक विकास में भागीदारी का अवसर दिया गया। सरकार ने यह स्पष्ट किया कि कुछ रणनीतिक क्षेत्रों में वह स्वयं नई उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करेगी, जबकि अन्य क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को कार्य करने की अनुमति दी जाएगी, किंतु यह कार्य देश की सामान्य औद्योगिक नीति के अधीन होगा।

इस नीति में यह भी माना गया कि औद्योगीकरण की गति बढ़ाने, बेहतर तकनीक और प्रबंधन ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेशी पूंजी और उद्यमियों का सहयोग आवश्यक है। हालांकि, विदेशी पूंजी को अनुमति देने के साथ-साथ यह सुनिश्चित किया गया कि भारतीय हितों की रक्षा हेतु नियमन और नियंत्रण भी अनिवार्य होंगे।

आज, 1948 की औद्योगिक नीति की मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा अब भी भारतीय औद्योगिक ढांचे की आधारशिला बनी हुई है, किंतु इसका स्वरूप अधिक उदारीकृत, प्रतिस्पर्धी और नवाचार-प्रधान हो गया है। 1991 की नई औद्योगिक नीति के बाद भारत ने विदेशी निवेश के लिए अपने द्वार खोले और लाइसेंस राज को लगभग समाप्त कर दिया। वर्तमान में भारत सरकार मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, डिजिटल इंडिया, और पीएलआई योजनाओं के माध्यम से न केवल घरेलू विनिर्माण को प्रोत्साहित कर रही है, बल्कि वैश्विक कंपनियों को भारत में निवेश हेतु आकर्षित भी कर रही है।

विदेशी पूंजी अब भारतीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न हिस्सा बन चुकी है, और कई क्षेत्रों में 100% प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की अनुमति है। हालांकि, कुछ संवेदनशील एवं रणनीतिक क्षेत्रों में आज भी राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देते हुए विदेशी निवेश पर नियंत्रण बनाए रखा गया है।

1948 की औद्योगिक नीति ने जिस मिश्रित आर्थिक ढांचे की परिकल्पना की थी, वह आज एक लचीले, प्रतिस्पर्धी और वैश्विक स्तर पर उन्मुख औद्योगिक तंत्र में विकसित हो चुकी है। अब सरकार नीति निर्माता,

सुविधा प्रदाता और रणनीतिक निवेशक की भूमिका निभाती है, जबकि निजी क्षेत्र उत्पादन, नवाचार और उद्यमिता का प्रमुख स्तंभ बन चुका है। इस प्रकार, 1948 की नीति की मूल भावना को आधुनिक संदर्भ में बनाए रखते हुए भारत एक आत्मनिर्भर, तकनीक-सक्षम और वैश्विक आर्थिक शक्ति बनने की दिशा में अग्रसर है।

8.4.2 औद्योगिक नीति 1956 (Industrial Policy 1956)

भारत सरकार ने 1956 में दूसरी औद्योगिक नीति की घोषणा की, जो देश की समाजवादी सोच और मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा पर आधारित थी। यह नीति औद्योगिकीकरण को सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास का साधन मानती थी। नीति में उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया

(क) राज्य क्षेत्र का एकाधिकार: इसमें 17 उद्योगों को 'अ' अनुसूची में रखा गया था, जैसे – रक्षा, परमाणु ऊर्जा, रेलवे, और वायु परिवहन, जिनका स्वामित्व और संचालन पूरी तरह सरकार के हाथों में था।

(ख) सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का मिश्रित क्षेत्र: 'ब' अनुसूची में 12 उद्योग रखे गए थे, जिनका विकास मुख्यतः राज्य द्वारा किया जाना था, लेकिन निजी क्षेत्र को भी भागीदारी की अनुमति थी।

(ग) निजी क्षेत्र: 'स' श्रेणी में वे सभी उद्योग शामिल थे जो 'अ' और 'ब' अनुसूची में नहीं आते थे, जिनमें निजी उद्यम को स्वतंत्र रूप से काम करने की अनुमति दी गई थी।

इस नीति में लघु एवं कुटीर उद्योगों के संवर्धन, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने, और बुनियादी ढांचे के विकास पर विशेष जोर दिया गया। पिछड़े क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए बिजली, परिवहन और अन्य सुविधाओं के विकास की बात की गई। यह नीति भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक मजबूत औद्योगिक आधार तैयार करने की दिशा में मील का पत्थर साबित हुई, हालाँकि बाद में उदारीकरण की प्रक्रिया ने इसमें कई बदलाव भी लाए।

8.4.3 उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951 (Industries Development and Regulation Act, 1951)

देश में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को नियंत्रित करने और विनियमित करने के लिए संसद द्वारा पारित औद्योगिक (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 आज भी औपचारिक रूप से लागू है, परंतु इसके कई प्रावधानों में 1991 के पश्चात आर्थिक सुधारों के चलते उल्लेखनीय परिवर्तन किए गए हैं।

1991 में सरकार ने नई औद्योगिक नीति के तहत औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली को व्यापक रूप से समाप्त कर दिया। अब केवल कुछ 'सुरक्षा, पर्यावरण, और रणनीतिक महत्व' के उद्योगों को ही लाइसेंस की आवश्यकता होती है। अधिकांश उद्योग अब लाइसेंस-मुक्त हो चुके हैं। उद्योगों की स्थापना, विस्तार और विविधीकरण पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण न्यूनतम है। केवल 18 प्रकार के उद्योगों को लाइसेंसिंग व्यवस्था में रखा गया था, जिसे घटाकर 3 से 6 तक कर दिया गया है - जैसे कि रक्षा उपकरण, परमाणु ऊर्जा, विस्फोटक, और खतरनाक रसायन।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) को अधिकतम प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई गई है, और इन्हें लाइसेंस से पूरी तरह मुक्त रखा गया है।

उद्योगों के लिए FDI (Foreign Direct Investment) को अधिकांश क्षेत्रों में 100% तक स्वत: मार्ग (automatic route) से अनुमति दी गई है।

जहाँ 1951 का अधिनियम मूलतः औद्योगिक विकास को नियंत्रित करने के लिए था, वहीं आज का फोकस नियमन से अधिक "सुगमता एवं प्रोत्साहन" (facilitation) पर है। यह परिवर्तन भारत को वैश्विक निर्माण केंद्र (Global Manufacturing Hub) बनाने की दिशा में उठाया गया महत्वपूर्ण कदम है।

8.5 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति की समीक्षा (Review of Industrial Policy prior to 1991)

भारत की स्वतंत्रता के बाद औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य देश को आत्मनिर्भर बनाना, सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ावा देना, सामाजिक न्याय स्थापित करना और नियोजित औद्योगिक विकास सुनिश्चित करना था। इस समय की औद्योगिक नीतियाँ मुख्यतः समाजवादी सोच से प्रेरित थीं, जिसमें राज्य की भूमिका केंद्रीय मानी गई। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 के माध्यम से देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव रखी गई, जिसमें कुछ उद्योगों को सरकारी नियंत्रण में रखा गया, कुछ को निजी क्षेत्र के लिए खोला गया और कुछ क्षेत्रों में राज्य और निजी दोनों को कार्य करने की अनुमति दी गई। इसके बाद 1951 में "औद्योगिक (विकास और विनियमन) अधिनियम" पारित किया गया, जिसके तहत सरकार को उद्योगों की स्थापना, विस्तार, उत्पादन और स्थान परिवर्तन को नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

1956 की औद्योगिक नीति को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसने सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता देते हुए उद्योगों को तीन अनुसूचियों (A, B, C) में विभाजित किया। अनुसूची-A में केवल राज्य के लिए आरक्षित उद्योग थे, जैसे कि रक्षा और रेलवे; अनुसूची-B में वे उद्योग शामिल थे जिनमें राज्य को प्रमुख भूमिका दी गई पर निजी क्षेत्र की सहभागिता भी सम्भव थी; जबकि अनुसूची-C को निजी क्षेत्र के लिए खुला रखा गया। इस नीति का उद्देश्य आय और संपत्ति की असमानता को कम करना, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करना, एकाधिकार प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना और योजनाबद्ध विकास सुनिश्चित करना था।

हालांकि इन नीतियों के माध्यम से भारत में प्रारंभिक औद्योगिक आधार तैयार हुआ और कई महत्वपूर्ण सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना हुई, लेकिन समय के साथ ये नीतियाँ जटिल लाइसेंसिंग प्रणाली, एकाधिकार नियंत्रण, कम प्रतिस्पर्धा और धीमी औद्योगिक वृद्धि जैसी समस्याओं से ग्रसित हो गईं। 1970 और 1980 के दशक में सरकार ने इन समस्याओं को दूर करने हेतु कुछ उदारीकरण के कदम उठाए, जैसे कि बड़े निवेशकों को लाइसेंस से आंशिक छूट देना, तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देना और सार्वजनिक उपक्रमों को अधिक व्यावसायिक स्वतंत्रता देना।

फिर भी, 1991 तक भारत की औद्योगिक संरचना एक कठोर नियामक ढांचे के अधीन थी, जहाँ उद्यमिता को बढ़ावा देने की अपेक्षा उसे नियंत्रित करने पर अधिक बल दिया गया। अतः, आर्थिक संकट और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के दबाव के चलते 1991 में एक नई औद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस की गई, जिसने भारत की औद्योगिक दिशा को पूरी तरह से बदल दिया और उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की ओर अग्रसर किया।

8.5.1 लाईसेंस लेकर उनका प्रयोग न करना

लाईसेंसिंग प्रणाली से यह अपेक्षा की गई थी कि यह योजनागत प्राथमिकताओं और लक्ष्यों के अनुरूप औद्योगिक क्षमताओं का निर्माण करेगी। किंतु योजनाओं में निजी क्षेत्र के लिए स्पष्ट प्राथमिकताओं का उल्लेख नहीं होने के कारण, निजी उद्यमियों ने अधिक लाभ वाले उद्योगों को प्राथमिकता दी। इनमें से कई

उद्योग विलासिता की वस्तुओं से संबंधित थे, जो तकनीकी रूप से DTDG (Directorate General of Technical Development) की शर्तों को भी पूरा करते थे, जिससे उन्हें आसानी से लाईसेंस मिल जाते थे। इसके विपरीत, आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योग उपेक्षित रह जाते थे।

इसके अतिरिक्त, अनेक मामलों में ऐसे उद्यमियों को भी लाईसेंस मिल गए जिन्होंने बाद में निर्धारित अवधि में उत्पादन क्षमता स्थापित नहीं की। सरकार भी ऐसे मामलों में वर्षों बाद ही लाईसेंस को निरस्त कर पाती थी। परिणामस्वरूप, स्वीकृत क्षमता की तुलना में कम उत्पादन क्षमता विकसित होती थी। कई बड़े औद्योगिक घराने जानबूझकर सीमित उत्पादन क्षमता स्थापित करते थे ताकि बाजार में वस्तुओं की आपूर्ति को सीमित कर कीमतें बढ़ाई जा सकें।

8.5.2 लाईसेंस नीति और औद्योगिक शक्ति का केन्द्रीकरण

लाईसेंसिंग नीति का उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को रोकना था परन्तु व्यवहार में इसके ठीक उल्टा हुआ। इस नीति के परिणामस्वरूप बड़े औद्योगिक घरानों के हाथ में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण बढ़ा। यद्यपि देखने में यह सिद्धान्त न्यायोचित लगता था परन्तु वास्तव में इसके बुरे परिणाम हुए। बड़े औद्योगिक घरानों के सम्पर्क अधिकारी आवेदन पत्र पर की गई कार्यवाही पर पूरी नजर रखते थे। इतना ही नहीं, बड़े औद्योगिक घराने एक ही उद्योग के लिए अनेक आवेदन पत्र देते थे।

8.5.3 एकाधिकार जमाने के अन्य तरीके

लाईसेंसिंग क्षमता पर एकाधिकार जमाने की दृष्टि से बड़े औद्योगिक घरानों ने कई और तरीके भी अपनाए। उदाहरण के लिए –

1) एक ही वस्तु के उत्पादन के लिए विभिन्न पिछड़े क्षेत्रों में 'नई इकाई' की स्थापना के लिए एक ही साथ कई आवेदन पत्र दे देना,
2) कई उद्योगों में इकाईयां स्थापित करने के लिए एक ही साथ आवेदन पत्र दे देना, तथा
3) नई इकाई की स्थापना का लाईसेंस प्राप्त होने के जल्द बाद ही क्षमता के विस्तार के लिए आवेदन पत्र दे देना ताकि अन्य उद्योगपतियों के प्रवेश को रोका जा सके।

8.5.4 लाईसेंसिंग और क्षेत्रीय असमानताएं

औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति का एक मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना था। परन्तु इस नीति के परिणामस्वरूप ठीक उल्टा हुआ | क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई। दत्त समिति (1967–69) की रिपोर्ट के अनुसार, महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, और तमिलनाडु जैसे विकसित राज्यों को 1955–56 और 1960 के दशक तक जारी लाइसेंसों का लगभग 62% हिस्सा प्राप्त हुआ

इसके पीछे सबसे बड़ी वजह थी फ्रेट समतलीकरण नीति, जिसके तहत खनन संसाधन जैसे कोयला, लौह, सीमेंट आदि को सीमा पार किसी भी राज्य तक एक समान दरों पर पहुंचाया जा सकता था। इससे खनिज-समृद्ध पूर्वी राज्यों में उद्योग लगाने की कोई अतिरिक्त प्रोत्साहन नहीं रही, जबकि पश्चिमी और तटीय राज्यों लाभान्वित हुए

इसके अलावा, लाइसेंस राज की व्यवस्था और बड़े उद्यमों के नियंत्रण ने छोटे उपक्रमों और पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक फैलाव को सीमित कर दिया. बड़े उद्योग लाइसेंस प्राप्त करते थे, लेकिन वह उन लाइसेंसों को लागू करने में रुचि नहीं रखते थे, जिससे अन्य छोटे उद्यमों का प्रवेश वंचित रह जाता था ।

1970 और 1980 के दशक में भी यह प्रवृत्ति बनी रही: चार प्रमुख औद्योगिक राज्यों (महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, तमिलनाडु) ने देश के औद्योगिक संसाधनों का अधिकांश हिस्सा नियंत्रित रखा। उदाहरण के लिए,

वर्ष 1975 में ये चार राज्य कुल औद्योगिक आउटपुट और मूल्य संवर्धन (value added) का क्रमशः 57–58% तक हिस्सा रखते थे, जबकि देश की जनसंख्या का केवल लगभग 30% हिस्सा।
इस प्रकार, 1956 की नीति के मकसद - जैसे क्षेत्रीय समता, पिछड़े क्षेत्रों को प्रोत्साहित करना - का लाभ अधिकांशतः उन विकसित राज्यों को मिला, जिससे असमानता और गहरी हुई।

8.6 औद्योगिक नीति और उदारीकरण (Industrial Policy and Liberalisation)

औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति की अपरलिखित आलोचनाओं के कारण सरकार ने 1970, 1973 तथा 1978 में इस नीति के उदारीकरण की दिषय में कई कदम उठाए। जुलाई 1980 में सरकार ने औद्योगिक नीति वक्तव्य की घोषणा की जिसके आधार पर 1980 के दशक में उदारीकण के लिए कई कदम उठाए गए। कुछ प्रमुख कदमों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है:-

8.6.1 लाईसेंसिंग से छूट

1991 के आर्थिक उदारीकरण के पश्चात भारत सरकार ने औद्योगिक लाइसेंसिंग व्यवस्था में व्यापक सुधार किए। अधिकांश उद्योगों के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई, और केवल कुछ संवेदनशील, पर्यावरणीय या रक्षा से संबंधित उद्योगों को ही लाइसेंस प्राप्त करने की आवश्यकता रह गई।
पूर्व में, लाइसेंसिंग से छूट की सीमा को समय-समय पर बढ़ाया गया था-जैसे कि मार्च 1978 में 3 करोड़ रुपये, 1983 में 5 करोड़ रुपये और 1988-89 में पिछड़े क्षेत्रों के लिए 50 करोड़ रुपये और अन्य क्षेत्रों के लिए 15 करोड़ रुपये तक।
लेकिन वर्तमान में, अधिकांश उद्योग स्वतंत्र रूप से स्थापित किए जा सकते हैं, बशर्ते वे औद्योगिक उद्यम अधिनियम, पर्यावरणीय विनियमों और भूमि उपयोग नीति का पालन करें। केवल आवश्यक वस्तु अधिनियम, सार्वजनिक सुरक्षा, और रक्षा से जुड़ी गतिविधियाँ ही ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अब भी लाइसेंस की जरूरत होती है।
इस प्रकार, लाइसेंसिंग प्रणाली अब मुक्त और निवेश प्रोत्साहक नीति का रूप ले चुकी है।

8.6.2 MRTP FERA कम्पनियों को रियायतें

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि और निर्यात को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने पिछले कुछ दशकों में कई कानूनी और नीतिगत सुधार किए हैं। एकाधिकार और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP Act, 1969) को 2009 में निरस्त कर दिया गया, और इसकी जगह प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 (Competition Act, 2002) को लागू किया गया। यह नया कानून अब बाजार में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाए रखने, उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने, और मूल्य निर्धारण में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कार्य करता है।
इसी प्रकार, विदेशी नियमन अधिनियम (FERA, 1973) को 2000 में समाप्त कर, उसकी जगह विदेशी विनिमय प्रबंधन अधिनियम (FEMA, 1999) को लागू किया गया। यह कानून विदेशी निवेश और विदेशी व्यापार को नियंत्रित करने के बजाय सुव्यवस्थित और प्रोत्साहित करने के लिए लाया गया था।
वर्तमान में, विदेशी और बड़े भारतीय उद्यमों को उन्नत तकनीक, उच्च पूंजी निवेश और निर्यातोन्मुख इकाइयों की स्थापना हेतु सरकार से पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होती, सिवाय कुछ संवेदनशील क्षेत्रों (जैसे रक्षा, परमाणु ऊर्जा, दूरसंचार, मीडिया आदि) के।

इसके अलावा, प्रतिस्पर्धा आयोग (Competition Commission of India - CCI) अब यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी व्यवसायिक समूह बाजार में एकाधिकार न बनाए और उपभोक्ताओं तथा लघु उद्योगों के हितों का हनन न हो।

इस प्रकार, भारत की औद्योगिक नीति अब नियमन के बजाय सुविधा और उदारीकरण पर आधारित है, जिससे घरेलू और विदेशी दोनों प्रकार के निवेशकों को सहज और प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण प्राप्त हो सके।

8.6.3 लाईसेसिंग से मुक्ति

वर्तमान में भारत की औद्योगिक नीति उत्पादन को प्रोत्साहित करने, उद्यमिता को बढ़ावा देने और प्रतिस्पर्धा को सशक्त करने पर केंद्रित है। 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा के साथ ही सरकार ने अधिकांश औद्योगिक क्षेत्रों को लाईसेंसिंग व्यवस्था से मुक्त कर दिया। वर्तमान में केवल कुछ संवेदनशील, पर्यावरणीय अथवा रणनीतिक महत्व वाले उद्योगों के लिए ही औद्योगिक लाइसेंस की आवश्यकता है, जैसे:

I. रक्षा उत्पादन
II. परमाणु ऊर्जा
III. खनिज तेल व कोयला
IV. विस्फोटक पदार्थ
V. सिगरेट व तंबाकू

अधिकांश उद्योगों के लिए अब केवल "उद्योग आधार मेमोरेंडम" (Udyog Aadhaar Memorandum / Udyam Registration) के तहत पंजीकरण पर्याप्त होता है, जिसे Ministry of MSME या DPIIT (Department for Promotion of Industry and Internal Trade) के पोर्टल पर ऑनलाइन किया जा सकता है।

पूर्व में MRTP (एकाधिकार और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम) और FERA (विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम) के अधीन कंपनियों को छूट देने में शर्तें रखी गई थीं, किंतु आज यह दोनों अधिनियम पूरी तरह समाप्त कर दिए गए हैं, और उनकी जगह Competition Act (2002) तथा FEMA (1999) ने ले ली है।

अब उद्योगों को स्थापना के लिए भूमि उपयोग नीति, पर्यावरणीय स्वीकृति, और कुछ मामलों में राज्य सरकारों से मंज़ूरी की आवश्यकता होती है, किंतु औद्योगिक लाइसेंस की बाध्यता लगभग समाप्त हो चुकी है।

8.6.4 क्षमता का पुनः अनुमोदन 1986

इस योजना को उदार करके उन इकाइयों के लिए भी लागू कर दिया गया जिनमें 80 प्रतिशत क्षमता का उपयोग हुआ था। (पहले इस योजना का लाभ उठाने के लिए 94 प्रतिशत क्षमता का उपयोग होना आवश्यक था) पुनः अनुमोदित क्षमता ज्ञात करने के लिए पिछले पांच वर्षों में प्राप्त की गई अधिकतम उत्पादन सीमा में एक-तिहाई उत्पादन को जोड़ने की व्यवस्था की गई । जो इकाईयां पुनः अनुमोदित क्षमता के बराबर क्षमता उपयोग कर पाने में सफल होती है उनके लिए क्षमता को उस स्तर पर पुनः अनुमोदित करने की व्यवस्था थी जिस स्तर को वह आगे आने वाले वर्षों में प्राप्त करने में सफल होती है। सरकार ने 7 अप्रैल, 1988 को एक नई योजना की घोषणा की। 1 अप्रैल 1988 से लागू इस योजना में यह व्यवस्था की गई कि 1 अप्रैल, 1988 से 31 मार्च, 1990 के बीच किसी औद्योगिक इकाई द्वारा जितना अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जायेगा उसी स्तर पर क्षमता का पुनः अनुमोदन कर दिया जायेगा । इस योजना पर

कोई पाबन्दी नहीं थी सिवा इसके कि यह लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित मदों पर लागू नहीं थी। कुछ शर्तों के साथ इस योजना का लाभ एकाधिकारी प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम तथा विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम के अधीन आने वाली फर्मों को भी प्रदान किया गया । इस योजना को स्थानिक प्रतिबन्धों से मुक्त रखा गया । आधुनिकीकरण,

पुनः स्थापना तथा नवीकरण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार ने 1986 में लाईसेंसिंग क्षमता से 49 प्रतिशत अधिक क्षमता प्रसार की छूट दे दी ।

8.6.5 उद्योगों का व्यापक समूहीकरण

इस नीति के अन्तर्गत कई एक जैसी वस्तुओं को एक ही जाति वर्ग में रखा गया । और किसी भी वस्तु के उत्पादक को यह स्वतंत्रता दी गई कि वह बिना अधिक प्रशासनिक कार्यवाहियों में से गुजरे हुए (अर्थात् बिना अधिक कठिनाई उठाए हुए) उसी जाति वर्ग की अन्य वस्तुओं का भी उत्पादन कर सकता है। इस 'व्यापक समूहीकरण' नीति का धीरे धीरे विस्तार किया गया और इसके अधीन 45 व्यापक औद्योगिक समूहों को शामिल किया गया । इन समूहों में दो पहियों पर चलने वाले वाहन (मोपेड, स्कूटर, मोटरसाइकिल इत्यादि) चार पहियों पर चलने वाले वाहन, टैक्टर, उर्वरकों की मषीनरी, औषधियां, कागज व लुगदी आदि शामिल हैं।

8.6.6 न्यूनतम आर्थिक क्षमताओं का निर्धारण

औद्योगिक लाईसेंसिंग प्रणाली के क्षेत्र में एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा न्यूनतम आर्थिक क्षमताओं के निर्धारण से संबंधित है । इस नीति के अन्तर्गत उद्योगों को पैमाने की बचत उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से विद्यमान स्थापित क्षमता को परिचालन के न्यूनतम स्तर तक पहुंचाने की स्वीकृति दी गई। 1989 तक इस नीति के अन्तर्गत 108 उद्योगों के लिए न्यूनतम आर्थिक क्षमताएं निर्धारित की जा चुकी थी। 1989-90 में कुछ और वस्तुओं के लिए भी न्यूनतम आर्थिक क्षमताएं निर्धारित की गई ।

8.6.7 निर्यात उत्पादन के लिए प्रेरणा

वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा निर्यात संवर्धन को प्रोत्साहित करने के लिए उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों के अंतर्गत अनेक सुधार किए गए हैं। अब केवल निर्यात के उद्देश्य से किए जाने वाले उत्पादन को औद्योगिक लाइसेंस की आवश्यकता नहीं होती, बशर्ते वह उद्योग पर्यावरण, रक्षा या सार्वजनिक सुरक्षा से संबंधित प्रतिबंधित सूची में न हो। सरकार ने अधिकांश उद्योगों को लाइसेंस व्यवस्था से मुक्त कर दिया है।

इसके अतिरिक्त, यदि कोई उद्योग केवल निर्यात हेतु उत्पादन करना चाहता है, तो उसे अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने या संयंत्र व मशीनरी में अतिरिक्त निवेश करने के लिए किसी प्रकार की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। साथ ही, ऐसे उद्योगों को विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ), निर्यात उन्मुख इकाइयों (EOUs) तथा उत्पादन-लिंक्ड प्रोत्साहनों (PLI) जैसी योजनाओं के माध्यम से कर व शुल्क में अनेक छूटें भी प्रदान की जा रही हैं।

यह सभी प्रावधान इस उद्देश्य से लागू किए गए हैं कि भारतीय निर्यातकों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सक्षम बनाया जा सके और भारत को एक निर्यात-उन्मुख अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित किया जा सके।

8.7 नयी औद्योगिक नीति 1991 (New Industrial Policy 1991)

भारत में 1991 की नयी औद्योगिक नीति एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी कदम था, जिसने देश की आर्थिक दिशा को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया। यह नीति तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंहराव

और वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में प्रस्तुत की गई थी। इसका उद्देश्य था - भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के अनुकूल बनाना, निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देना, और सरकारी नियंत्रण को कम करके उद्यमिता को बढ़ावा देना।

नयी औद्योगिक नीति 1991 के प्रमुख उद्देश्य:

- उद्योगों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना।
- सरकारी नियंत्रणों और लाइसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त करना।
- निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करना।
- विदेशी पूंजी और तकनीक को आकर्षित करना।
- सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सुधार और पुनर्गठन।

मुख्य विशेषताएँ:

- **औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली में सुधार:** अधिकांश उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंस अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया। केवल छह उद्योगों को लाइसेंस की आवश्यकता रही, जैसे – सुरक्षा, पर्यावरण, और रणनीतिक महत्व के क्षेत्र।
- **रिजर्वेशन नीति में बदलाव:** लघु उद्योगों (Small Scale Industries – SSI) के लिए आरक्षित वस्तुओं की सूची को क्रमिक रूप से घटाया गया। प्रतिस्पर्धा के लिए बड़े उद्योगों को भी कुछ SSI वस्तुओं के उत्पादन की अनुमति दी गई।
- **विदेशी पूंजी निवेश (FDI):** स्वचालित मार्ग से विदेशी निवेश की सीमा 51% तक कर दी गई, जिसे बाद में और बढ़ाया गया। उच्च तकनीक और उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में विदेशी कंपनियों को स्वतंत्र निवेश की अनुमति दी गई।
- **सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार**: सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या घटाई गई और केवल रणनीतिक क्षेत्रों तक सीमित किया गया। बीमार सार्वजनिक उपक्रमों को बंद करने या निजीकरण की नीति अपनाई गई।
- **एम. आर. टी. पी. अधिनियम (MRTP Act) में संशोधन:** बड़े उद्योगों पर नियंत्रण कम किया गया। कारोबार विस्तार और अधिग्रहण के लिए पूर्व अनुमति की आवश्यकता समाप्त कर दी गई।
- **नयी औद्योगिक नीति के प्रभाव:** भारत की अर्थव्यवस्था में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) का आगमन हुआ। विदेशी पूंजी निवेश और तकनीकी सहयोग में वृद्धि हुई। भारतीय उद्योग वैश्विक बाजारों के लिए अधिक प्रतिस्पर्धी बने। विनिर्माण क्षेत्र (manufacturing sector) में व्यापक विस्तार और विविधता आई।

  1991 की नयी औद्योगिक नीति भारतीय औद्योगिक विकास की दिशा में एक मील का पत्थर सिद्ध हुई। इसने आर्थिक उदारीकरण की नींव रखी और भारत को एक नियंत्रित अर्थव्यवस्था से एक खुले और बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में परिवर्तित किया। इसके दूरगामी प्रभाव आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति में परिलक्षित होते हैं।

8.8 नयी औद्योगिक नीति का मूल्यांकन (Evaluation of the new industrial policy)

1991 की नयी औद्योगिक नीति भारत की आर्थिक एवं औद्योगिक विकास यात्रा में एक ऐतिहासिक मोड़ थी। इस नीति के माध्यम से भारत ने एक नियंत्रित और संरक्षणवादी अर्थव्यवस्था से मुक्त होकर उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (Liberalization, Privatization and Globalization) की राह पकड़ी। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास की गति को तेज करना, विदेशी निवेश को आकर्षित करना, और भारतीय उद्योगों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए सक्षम बनाना था।

उपलब्धियाँ:

1. औद्योगिक विकास में तेजी: नीति के लागू होने के बाद भारतीय उद्योगों के विकास की गति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। सेवा क्षेत्र और विनिर्माण क्षेत्र में भी तीव्र वृद्धि दर्ज की गई।

2. निजी क्षेत्र की भूमिका में विस्तार: सरकारी नियंत्रण घटने से निजी क्षेत्र को अधिक स्वतंत्रता और अवसर प्राप्त हुए। कई क्षेत्रों में निजी निवेश ने सार्वजनिक क्षेत्र की जगह ली।

3. विदेशी पूंजी निवेश (FDI) में वृद्धि: नीति ने विदेशी निवेशकों के लिए द्वार खोल दिए, जिससे देश में पूंजी, तकनीक और प्रबंधन के नए अवसर आए।

4. प्रतिस्पर्धा और गुणवत्ता में सुधार: उदारीकरण और वैश्वीकरण के कारण भारतीय उद्योगों को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा, जिससे उत्पादों की गुणवत्ता और दक्षता में सुधार हुआ।

5. सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार: घाटे में चल रहे सार्वजनिक उपक्रमों को पुनर्गठित किया गया, कुछ का निजीकरण भी किया गया, जिससे सरकारी बोझ में कमी आई।

6. नौकरी और उद्यमिता के अवसर: नई नीति से स्टार्टअप्स, मध्यम व लघु उद्योगों तथा सेवा क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए।

आलोचनाएँ:

1. क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि: उदारीकरण का लाभ मुख्य रूप से शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में केंद्रित रहा, जबकि ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की उपेक्षा हुई।

2. स्वदेशी उद्योगों पर दबाव: वैश्विक प्रतिस्पर्धा के कारण कई लघु और कुटीर उद्योग बंद हो गए या प्रभावित हुए, जिससे पारंपरिक उद्योगों का क्षरण हुआ।

3. सार्वजनिक क्षेत्र की उपेक्षा: नीति के बाद कई सार्वजनिक उपक्रमों को घाटे में मानकर बंद कर दिया गया, जिससे सरकारी संपत्ति की हानि हुई और रोजगार घटा।

4. विदेशी निर्भरता में वृद्धि: विदेशी कंपनियों और पूंजी पर अत्यधिक निर्भरता बढ़ने लगी, जिससे आर्थिक आत्मनिर्भरता को चुनौती मिली।

5. नौकरीविहीन विकास (Jobless Growth): औद्योगिक और आर्थिक विकास की दर तो बढ़ी, लेकिन इसके अनुपात में रोजगार सृजन नहीं हुआ।

1991 की नयी औद्योगिक नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण, प्रतिस्पर्धा और वैश्विक जुड़ाव की दिशा में अग्रसर किया। इसने आर्थिक वृद्धि और आधुनिक औद्योगिक ढांचे को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। किंतु इसके साथ-साथ कुछ सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ और चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुईं। अतः आवश्यकता है कि ऐसी नीतियाँ बनाई जाएँ जो विकास को समावेशी (inclusive) बनाएँ, ताकि उसके लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँच सकें।

8.9 नयी औद्योगिक नीति की आलोचनाएं (Criticism of the new industrial policy)

8.9.1 औद्योगिक विकास में अस्थिरता तथा उच्चावचन

नई औद्योगिक नीति में घरेलू एवं विदेशी निवेशकों को कई प्रोत्साहन दिए गए हैं। यह दावा किया गया है कि इससे अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धातक माहौल बनेगा और यह माहौल अपने आप औद्योगिक क्षेत्र की संवृद्धि दर को बढाने में सफल होगा। परन्तु इस नीति का औद्योगिक विकास की दर पर कोई विशेष सकारात्मक प्रभाव नजर नहीं आता। वस्तुत 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में तो औद्योगिक संवृद्धि दर में गिरावट दिखाई देती है। उदाहरण के लिए नौबी पंचवर्षीय योजना (1997- 2002) में औद्योगिक उत्पादन

की संवृद्धि दर मात्र 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जबकि सुधारों से पूर्व के दशक (1980-81 से 1991-92) में औद्योगिक उत्पादन की औसत संवृद्धि दर 8.3 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। परन्तु इस योजना में निर्धारित लक्ष्य 10 प्रतिषत प्रति वर्ष की तुलना में वास्तविक वृद्धि दर अभी भी कम है । हालिया वर्षों (2020 के बाद) में सरकार ने 'मेक इन इंडिया', 'उत्पादन आधारित प्रोत्साहन योजना (PLI)', 'राष्ट्रीय लॉजिस्टिक्स नीति' और 'ईज ऑफ डूइंग बिज़नेस' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से औद्योगिक पुनरुद्धार का प्रयास किया है। फिर भी, COVID-19 महामारी, वैश्विक आर्थिक अनिश्चितता, और आपूर्ति श्रृंखला की बाधाओं ने औद्योगिक संवृद्धि को चुनौतियाँ दी हैं।

8.9.2 उत्पादन संरचना में विसंगतियां

देश के दीर्घकालीन औद्योगिक विकास के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग समूह पूंजीगत वस्तु उद्योगों का समूह है । परन्तु इस उद्योग समूह की वार्षिक संवृद्धि दर जो 1980 के दषक में 9.4 प्रतिषत थी नौवीं योजना की अवधि में कम होकर मात्र 4.7 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई। यह प्रवृत्ति सुधार-उपरांत औद्योगिक उत्पादन संरचना में होने वाली विसंगतियों की द्योतक है।

8.9.3 विदेशी प्रतिस्पर्धा से खतरा

उदारीकरण की शुरू की अवधि में निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों ने जोर षोर से 1991 की नई औद्योगिक नीति का स्वागत किया । परन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अहसास हो गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रतिस्पर्धा के लिए खोलने का अर्थ है - अधिक व सस्ते आयात, अधिक विदेशी निवेश, बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में प्रवेश करने तथा घरेलू उद्योगों को हथियाने की स्वतंत्रता तथा निजी उद्यमियों की कमजोर आर्थिक षक्ति के कारण बहुराष्ट्रीय निगमों से जूझने की अक्षमता । 1991 की नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप देश में जो उदारीकृत वातावरण बना है उसमें भारतीय उद्योगपति बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ 'असमान प्रतिस्पर्धा ' करने के लिए विवश हैं। भारतीय उद्यम 'आकार' में बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में बहुत छोटे हैं काफी समय तक भारतीय उद्योगपति एक संरक्षणात्मक वातावरण में काम करते रहे हैं जिससे उत्पादन में अदक्षताएं बढ़ी हैं, भारतीय उद्योगपतियों के लिए पूंजी की लागत बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में बहुत अधिक है । बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में भारतीय उद्योगपतियों की वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है, विदेशों से आयातों पर कई छूटें दी जा रही हैं जबकि भारतीय उद्योगों के उत्पादन पर तरह तरह के कर लगाए गए हैं जिससे भारतीय वस्तुओं को लिए आयातों के साथ स्पर्धा करना मुश्किल हो गया है, इत्यादि ।

8.9.4 व्यावसायिक उपनिवेशवाद का खतरा

हाल के वर्षों में औद्योगिक नीति के अन्तर्गत विदेशी निवेश को (विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय निगमों को) प्रोत्साहित करने के लिए जो छूटें व रियायतें दी गई हैं उनसे बहुराष्ट्रीय निगमों को भारत में घुसने के तथा भारतीय उद्योगों को खरीदने के अवसर प्राप्त हो गए हैं। विभिन्न आलोचनाओं के बाबजूद यह नीति एक बहुत सुदृढ़ एवं सही दिशा में उठाया गया कदम है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था स्वतंत्र रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समानान्तर विकास कर लेंगी। अब उद्योग प्रतिस्पर्धी बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप विकास कर एवं आधुनिकीकरण कर सकेंगें। किन्तु इस नीति की सफलता अब उद्योगपतियों की योग्यता एवं प्रयासों पर निर्भर करेगी ।

8.10 नयी औद्योगिक नीति और उदारीकण के मापन (New Industrial Policy and Measures of Liberalisation)

जून 1998 तक इस नीति में भी कुछ संशोधन करके उदारीकरण पर बल दिया गया है इसके प्रमुख संशोधन निम्नानुसार हैं-

1. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 8 से घटाकर 4 कर दी गई। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित खनिजों में से 13 खनिजों को भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है। खनिज, ऊर्जा, आधारभूत दूरसंचार तथा रक्षा उत्पादन क्षेत्र में प्रवेश के लिए भी देशी व विदेशी निवेशकों को छूट दी गई है ।

2. निजी क्षेत्र के लिए आरक्षित 18 उद्योग वर्गों के लिए लाईसेंसिंग को घटाकर 6 कर दि गया है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी औषधियों के लिए लाईसेंस प्रणाली को समाप्त कर है। दिया गया है ।

3. विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए विदेशी निवेशक संवर्द्धन बोर्ड का पुर्नगठन किया गया है तथा विदेशी निवेश संवर्द्धन परिषद का गठन किया गया है ।

4. विदेशी निवेशक क्रियान्वयन प्राधिकरण की स्थापना कर दी गई है जो विदेशी निवेशक तथा सरकार के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क बनाये रखेगा तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देगी । 5. सौ प्रतिशततथा विदेशी पूँजी निवेश की स्वतः अनुमोदन वाली 35 उद्योगों की सूची में बढ़ाकर 48 उद्योग कर दिया गया है।

6. बीमा क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को समाप्त कर इसे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है । बीमा क्षेत्र की कम्पनियों की अंश पूँजी में 26 प्रतिशत तक पूँजी निवेश करने छूट विदेशी संस्थाओं को दी गई है। बैंकों को अन्य संस्थाओं की भागीदार के साथ बीमा क्षेत्र में प्रवेश की छूट दी गई है।

7. निजी क्षेत्र में 'साफ्टवेयर पार्क' स्थापित करने की छूट दे दी गई है।

8. ई -कॉमर्स को बढ़ावा देने के लिए देश की संसद ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित कर दिया है।

9. तेल शोधन एवं इलैक्ट्रोनिक्स वाणिज्य E-Commerce के क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दी गई है।

10. 'विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम' के स्थान पर 'विदेशी मुद्रा प्रबन्ध अधिनियम' (FEMA) पारित कर दिया गया है। इससे देश में विदेशी मुद्रा का उदार बाजार विकसित होगा ।

11. आधारभूत उद्योगों के लिए 15 वर्ष का कर अवकाश घोषित किया गया है ।

12. आधारभूत दूरसंचार सेवाओं के सभी क्षेत्रों को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है इस क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया

13. कुरियर सेवा, होटल तथा पर्यटन, नागरिक विकास, हवाई अड्डे तथा महानगरों में त्वरित परिवहन प्रणाली में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की छूट दी गई है।

8.11 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. भारत की पहली औद्योगिक नीति कब घोषित की गई थी?

a) 1951

b) 1956

c) 1948

d) 1991

2. 1956 की औद्योगिक नीति किस विचारधारा पर आधारित थी?

a) पूंजीवाद

b) समाजवाद

c) नवउदारवाद

d) वैश्वीकरण

3. औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम किस वर्ष पारित किया गया था?

a) 1947

b) 1951

c) 1956

d) 1991

d) 1992

4. 1991 की नई औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य क्या था?

a) सरकारी नियंत्रण को बढ़ाना

b) निजीकरण और उदारीकरण

c) लाइसेंस प्रणाली को मजबूत करना

d) सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार

5. निम्नलिखित में से कौन-सी योजना भारत सरकार द्वारा औद्योगीकरण को बढ़ावा देने हेतु शुरू की गई है?

a) उज्ज्वला योजना

b) आयुष्मान भारत

c) मेक इन इंडिया

d) मनरेगा

रिक्त स्थान पूर्ति -

1. भारत की पहली औद्योगिक नीति ___ में घोषित की गई थी।
2. ___ अधिनियम 1951 में भारत में औद्योगिक नियंत्रण हेतु लागू किया गया।
3. 1956 की औद्योगिक नीति में उद्योगों को ___ श्रेणियों में विभाजित किया गया था।
4. वर्तमान में भारत सरकार की औद्योगिक नीति ___, स्टार्टअप इंडिया, और PLI जैसी पहलों पर आधारित है।
5. 1991 की औद्योगिक नीति में लाइसेंस राज को लगभग ___ कर दिया गया।

सत्य/असत्य -

1. औद्योगिक नीति केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए बनाई जाती है।
2. 1956 की औद्योगिक नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत पर आधारित थी।

3. 1991 की औद्योगिक नीति ने विदेशी निवेश पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया।
4. औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम आज भी औपचारिक रूप से लागू है।
5. स्टार्टअप इंडिया योजना का उद्देश्य ग्रामीण मजदूरों को मनरेगा में रोजगार देना है।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

01. नयी औद्योगिक नीति 1991 की प्रमुख आलोचनाएं बताइये ?

02. नयी आर्थिक नीति में उदारीकरण पर अत्यधिक जोर दिया गया है, वर्णन कीजिये ।

8.12 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान गये हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वततंत्रता के पश्चात् कई औद्योगिक नीतियाँ बनायी गयीं। इनमें सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण औद्योगिक नीति 1991 की रही है । यह नीति बहुत खुली और उदार है। इसमें घरेलू और विदेशी निवेशकों को कई प्रोत्साहन दिये गये हैं परन्तु इस नीति का बहुत अधिक सकारात्मक प्रभाव न पड़ने के कारण इसमें संशोधन भी किया गया और उदारीकरण पर जोर दिया गया। इस इकाई के विवेचना से यह ज्ञात होता है कि भारतीय औद्योगिक क्षेत्र को कुषल एवं प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए औद्योगिक नीति में व्यापक उदारीकरण किया गया है।

8.13 शब्दावली (Glossary)

- **संरक्षण (Protection)-** विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योगों को बचाने के लिए आयात व्यापार प्रतिबंध लगाना ।
- **एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act)-** आर्थिक शाक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना, एकाधिकार पर नियंत्रण रखना, प्रतिबन्धात्मक व अनुचित व्यापार को रोकने के लिए 1969 में बनाया गया अधिनियम है।
- **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश FDI (Foreign Direct Investment) –** किसी विदेशी कंपनी या व्यक्ति द्वारा किसी देश में उत्पादन या व्यापार में किया गया दीर्घकालिक निवेश।
- **उदारीकरण (Liberalization) –** सरकारी नियंत्रण और प्रतिबंधों को कम करके आर्थिक गतिविधियों को स्वतंत्र करना।
- **विदेशी पूंजी निवेश (Foreign Capital Investment) –** विदेश से पूंजी लाकर किसी देश के उद्योग, व्यवसाय या परियोजनाओं में निवेश करना।
- **एम.आर.टी.पी. अधिनियम (MRTP Act) –** एक कानून जिसका उद्देश्य एकाधिकार और अनुचित व्यापारिक प्रथाओं को रोकना है।
- **निजीकरण (Privatization) –** सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमों को निजी क्षेत्र को सौंपने की प्रक्रिया।
- **वैश्वीकरण (Globalization) –** विश्व के देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया।
- **औद्योगिक लाईसेंस(Industrial License) -** एक लिखित अनुमति है जो किसी औद्योगिक इकाई को सरकार से मिलती है।

8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. c 1948
2. b समाजवाद
3. b 1951
4. b) निजीकरण और उदारीकरण
5. c) मेक इन इंडिया

रिक्त स्थान पूर्ति -

1. 1948
2. औद्योगिक विकास एवं विनियमन (IDRA)
3. तीन (3)
4. मेक इन इंडिया
5. समाप्त

सत्य /असत्य-

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य

8.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Rakesh Mohan 'Industrial Policy & Controls' in Bimal Jalan (ed) Indian Economy: Problems & Prospects 1992, Viking Penguin India.
- Datt Ruddar (1997) Economic Reforms in India (A Unit).
- Government of India, Hand Book of Industrial Policy and Statistics, 2001, P.10

8.16 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- Ahluwalia, Montek S. (2002), Economic Reforms in India since 1991: Has Gradualism Worked, Journal of Economic Perspectives, Vol. 16, No. 3.
- Joshi, Vijay and Little, I.M.D. (1996), India's Economic Reforms: 1991–2001, Oxford University Press.
- Panagariya, Arvind (2008), India: The Emerging Giant, Oxford University Press.
- Covers in-depth structural reforms, industrial deregulation, and post-1991 policy effects.

- Dhar, P.K. (2020), Indian Economy: Its Growing Dimensions, Kalyani Publishers.
- Kumar, Nagesh (2003), Liberalisation, Foreign Direct Investment Flows and Development: Indian Experience in the 1990s, Economic and Political Weekly.
- Balasubramanyam, V.N. & Sapsford, David (2007), Does India Need a Second Generation of Economic Reforms?, Journal of International Development.
- Ghosh, Arunabha (2004), India's Industrial Policy and Performance: A Review, Oxford Development Studies.

8.17 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. 1991 से पूर्व की औद्योगिक नीति की समीक्षा कीजिये।

2. सन् 1991 में औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा समीक्षा कीजिये? औद्योगिक नीति 1991 आर्थिक उदारीकरण के परिप्रेक्ष्य में वर्णन कीजिये।

3. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताओं का समालोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।"

4. "1991 की नई औद्योगिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों, विशेषताओं एवं सिद्धांतों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।"

6. "भारतीय औद्योगिक नीति में उदारीकरण की अवधारणा का क्या स्थान है? वर्तमान संदर्भ में उदारीकरण की चुनौतियों एवं उपलब्धियों पर आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए।

इकाई – 9 : औद्योगिक संरचना एवं उपलब्धियाँ (Industrial Structure and Achievements)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)
9.2 उद्देश्य (Objectives)
9.3 औद्योगिक संरचना का अर्थ (Meaning of Industrial Structure)
9.4 1950 से पूर्व भारत की औद्योगिक संरचना (Industrial Structure of India before 1950)
9.5 1951 के बाद भारत की औद्योगिक संरचना (Industrial Structure of India after 1951)
9.5.1 असंतुलित औद्योगिक संरचना (Unbalanced industrial structure)
9.5.2 पूँजी की तीव्रता (Capital intensity)
9.5.3 विनिर्माण वस्तु उत्पादन में पूँजी वस्तु की प्रधानता
9.6 पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास (Dominance of capital goods in manufacturing production Industrial development in 96 Five Year Plans)
9.7 औद्योगिक विकास और उपलब्धियाँ (Industrial development and achievements)
9.7.1 उच्च विकास का चरण 1951-65 तक (High growth phase from 1951-65)
9.7.2 निम्न विकास का चरण 1966-1980 तक (Low growth phase from 1966-1980)
9.7.3 औद्योगिक पुनरूत्थान का चरण 1981 से 1990 तक (Industrial revival phase from 1981 to 1990)
9.7.4 औद्योगिक सुधार का चरण 1991 के बाद की अवधि (Industrial reform phase post 1991 period)
9.8 योजनाकाल में औद्योगिक संरचना में परिवर्तन (Changes in industrial structure during the planning period)
9.9 1990 के बाद औद्योगिक संरचना में परिवर्तन (Changes in industrial structure after 1990)
9.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
9.11 सारांश (Summary)
9.12 शब्दावली (Glossary)
9.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
9.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
9.15 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
9.16 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई 'औद्योगिक संरचना एवं उपलब्धियाँ से पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्योगों के विकास के लिए किस तरह की नीतियाँ अपनायी गयी तथा इनमें अनेक परिवर्तन भी किये हैं। इस इकाई में आप इस बात का विस्तार से अध्ययन करेगे कि भारत में योजना काल में पूर्व तथा बाद में औद्योगिक संरचना किस प्रकार की रही है। क्या योजनाओं के दौरान औद्यानिक विकास की दर पर्याप्त है। औद्यागिक सुधारकाल में उपबब्धियाँ किस प्रकार की रही है।
इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगे कि भारत के औद्यागिक विकास के लिए औद्यागिक संरचना में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे है तथा इन परिवर्तनों का प्रभाव औद्यागिक विकास पर पड़ा है।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ भारतीय औद्योगिक संरचना का अध्ययन कर सकेंगें।
- ✓ विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं औद्योगिक विकास का अध्ययन कर सकेंगें।
- ✓ 1991 के बाद औद्योगिक संरचना में हए परिवर्तनों को स्पष्ट कर सकेंगें।
- ✓ विभिन्न योजनाकाल में औद्योगिक उपलब्धियों को स्पष्ट कर सकेंगें।

9.3 औद्योगिक संरचना का अर्थ (Meaning of Industrial Structure)

औद्योगिक संरचना से अर्थ उद्योगों के ढाँचे या स्वरूप से लगाया जाता है। जो एक देश में एक समय में विद्यमान है यह स्वरूप स्थिर नहीं होता है इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे जैसे किसी देश में शक्ति, नवीन तकनीकी व यंत्रों का विकास होता जाता है। वैसे वैसे उस देश के उद्योगों की संरचना बदलती जाती है।
औद्योगिक संरचना किसी देश की औद्योगिक व्यवस्था की उस रूपरेखा से है, जो यह दर्शाती है कि विभिन्न प्रकार के उद्योगों का आपसी संबंध कैसा है, उनका अर्थव्यवस्था में क्या स्थान है तथा उत्पादन, रोजगार, पूँजी निवेश और तकनीकी विकास में उनकी क्या भूमिका है।
यह संरचना निर्धारित करती है कि देश में कौन-कौन से उद्योग प्रमुख हैं (जैसे उपभोग वस्तु उद्योग, पूँजी वस्तु उद्योग, भारी उद्योग, लघु व कुटीर उद्योग आदि), उनके बीच संतुलन कैसा है, तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि और सेवा क्षेत्र से उनका संबंध कैसा है।

9.4 1950 से पूर्व भारत की औद्योगिक संरचना (Industrial Structure of India before 1950)

आधुनिक औद्योगिक संरचना के विकास से पहले भारतीय निर्मित वस्तुओं का विश्वव्यापी बाजार था। भारतीय कपड़े (मलमल व छींट) की माँग पूरे विश्व में की जाती थी। भारतीय उद्योग न केवल स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करते थे अपितु वे निर्यात भी करते थे। निर्यात की वस्तुओं में रूई तथा सिल्क, छीट के कपड़े, बर्तन व ऊनी कपड़े प्रमुख थे।
इंग्लैण्ड से सम्बन्ध होने के कारण औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत हुई और भारत के हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हुआ। इसके पतन से उत्पन्न रिक्त स्थान की पूर्ति आधुनिक उद्योग कायम करके नहीं की गई क्योंकि ब्रिटिश सरकार की भारत में निर्मित वस्तुओं के आयात तथा भारत के कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहन देने की थी।

1918 के औद्योगिक आयोग की रिपोर्ट के बाद भारत में कुछ चुने हुए उद्योगों को विभेदकारी संरक्षण प्रदान किया गया। फिर भी कुछ उद्योग जैसे - सूत्री वस्त्र, चीनी, कागज, दियासलाई और कुछ हद तक लौह तथा इस्पात उद्योग ने प्रगति की। परन्तु ब्रिटिश शासनकाल में पूँजी वस्तु उद्योगों के विकास का कोई प्रयास नहीं किया गया वरन इनकी उपेक्षा की गई।

9.5 1951 के बाद भारत की औद्योगिक संरचना (Industrial Structure of India after 1951)

आजादी के समय भारत को कमजोर औद्योगिक आधार, अर्द्धविकसित और गतिहीन अर्थव्यवस्था विरासत में मिली थी। सरकार ने दिसम्बर 1947 में एक उद्योग सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में केन्द्र व प्रान्तीय सरकारों के, उद्योगपतियों के तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके अलावा औद्योगिक विकास में सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने 1948-49 के बजट में उद्योगों को कुछ कर सम्बन्धी छूट दी और संविधान सभा द्वारा औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना का निर्णय लिया। सरकार ने औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में अपनी नीति का स्पष्टीकरण देने के उद्देश्य से 1948 में संसद में औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव पास किया। भारत सरकार की कोशिशों का औद्योगिक संरचना पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

9.5.1 असंतुलित औद्योगिक संरचना (Unbalanced industrial structure)

1956 तक औद्योगिक ढाँचा औद्योगिक इकाईयों की दृष्टि से असंतुलित था। 1956 के मध्य में विनिर्माण में लगभग 150 लाख व्यक्ति रोजगार प्राप्त थे। इसमें से 39 लाख व्यक्ति कारखाने में काम करते थे। (कारखाने की परिभाषा अधिनियम में किसी ऐसी उत्पादन इकाई के रूप में की गई है जिसमें 10 या 10 से अधिक व्यक्ति काम करते हों) 111 लाख व्यक्ति ऐसे घरेलू उद्योगों व प्रयोगशालाओं में काम करते थे जो 10 से कम व्यक्तियों को रोजगार देते थे।

औद्योगिक रोजगार का आकारानुसार ढाँचा 1956

क्र.सं.	विवरण	रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या (लाखों में)	औसत दैनिक रोजगार	उत्पादन इकाइयों की संख्या
01	घरेलू उद्योग व प्रयोगशालाएं	(10 व्यक्तियों से कम)	111	5,13,000
02	छोटे कारखाने	(10 से 49 व्यक्ति)	12	61,000
03	मध्यम कारखाने	(50 से 499 व्यक्ति)	10	8,050
04	बड़े कारखाने	(500 से अधिक व्यक्ति)	9	1,050

भारत में औद्योगिक संरचना की विशिष्टता इस बात में है कि या तो घरेलू उद्योगों और प्रयोगशालाओं में रोजगार का सकेन्द्र अधिक है या फिर बड़े कारखानों में। इसका कारण था विदेशियों और बड़े-बड़े उद्योगपतियों द्वारा चालू की गई बड़ी कम्पनियाँ थीं और दूसरी ओर छोटे पैमाने पर चालू किये गये घरेलू उद्योग थे।

9.5.2 पूँजी की तीव्रता (capital intensity)

औद्योगिक संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता पूँजी की अपेक्षाकृत कम तीव्रता थी। इसके दो प्रमुख कारण थे

(क) भारत में मजदूरी का स्तर अत्यंत निम्न था|

(ख) प्रति व्यक्ति आय बहुत कम थी, जिसके परिणामस्वरूप घरेलू बाजार का आकार सीमित था|
इस स्थिति ने तकनीकी विकास को बाधित किया और उद्योगों में तकनीकी पिछड़ापन देखने को मिला। पूँजी की कम तीव्रता केवल उपभोग वस्तुओं के उद्योगों जैसे कि कपड़ा और चीनी तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह पूँजी वस्तु उद्योगों जैसे लौह एवं इस्पात में भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी।

9.5.3 विनिर्माण वस्तु उत्पादन में पूँजी वस्तु की प्रधानता (The dominance of capital goods in manufacturing production)

संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार 1953 में उपभोग वस्तु उद्योगों और पूँजी वस्तु उद्योगों के उत्पादन का अनुमान 62.38 था । यद्यपि भारत औद्योगिक विकास की ओर बढ़ रहा था किन्तु इसमें पूँजी वस्तु क्षेत्र अभी तक कम विकसित हुआ और भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए इस क्षेत्र का विकास आवश्यक था ।

9.6 पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास (Industrial Development in Five Year Plans)

9.6.1 पहली पंचवर्षीय योजना

जब वर्ष 1951 में पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत हुई उस समय भारत का औद्योगिक आधार अत्यंत सीमित था। औद्योगिक विकास मुख्यतः उपभोक्ता वस्तु उद्योगों तक सीमित था। उस समय के प्रमुख उद्योगों में सूती वस्त्र,चीनी,नमक,साबुन,चमड़े से संबंधित उत्पाद तथा कागज उद्योग शामिल थे। इसके अतिरिक्त कोयला, सीमेंट,इस्पात,ऊर्जा,अलौह धातुएं तथा रसायन जैसे मध्यवर्ती उद्योग भी अस्तित्व में थे, किन्तु उनकी उत्पादन क्षमता सीमेंट को छोड़कर देश की आवश्यकताओं की तुलना में काफी कम थी। यद्यपि पहली पंचवर्षीय योजना को औद्योगिक दृष्टिकोण से अत्यधिक प्रभावशाली नहीं माना जाता, फिर भी यह औद्योगीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल थी। इस योजना में कुल 1,960 करोड़ रुपये के सार्वजनिक व्यय में से केवल 55 करोड़ रुपये औद्योगिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए थे, जो कुल व्यय का मात्र 2.8 प्रतिशत था।

फिर भी, इस योजना की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि यह रही कि इसके अंतर्गत कई उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गए और अनेक उद्योगों ने उत्पादन कार्य प्रारंभ किया। बड़े विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के लिए 7 प्रतिशत वार्षिक दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जबकि वास्तविक उपलब्धि लगभग 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही।

9.6.2 दूसरी पंचवर्षीय योजना (Second five year plan)

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961) में औद्योगीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। यह योजना प्रसिद्ध महलानोबिस मॉडल पर आधारित थी, जिसके अंतर्गत सरकार ने मूल और पूँजीगत वस्तु उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिया, ताकि दीर्घकालीन औद्योगिक विकास के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया जा सके। इसी उद्देश्य से इन उद्योगों को योजना के औद्योगिक कार्यक्रमों में प्रमुख स्थान प्रदान किया गया।

इस योजना के अंतर्गत कुल 4,672 करोड़ रुपये के सार्वजनिक व्यय में से 938 करोड़ रुपये, अर्थात् लगभग 20.1 प्रतिशत, औद्योगिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए। योजना की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि थी तीन बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के इस्पात संयंत्रों की स्थापना, जिन्हें भिलाई (मध्य प्रदेश, अब छत्तीसगढ़), राउरकेला (उड़ीसा, अब ओडिशा), और दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) में स्थापित किया गया। ये सभी संयंत्र देश के पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित किए गए थे, जिससे क्षेत्रीय औद्योगिक असंतुलन को कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया।

इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक क्षेत्र ने लौह व इस्पात, लिग्नाइट, उर्वरक, रेलवे इंजन व डिब्बे, मशीन टूल्स, भारी रसायन, जहाज निर्माण, तथा एंटिबायोटिक्स जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में उत्पादन कार्य आरंभ किया। इस योजना ने न केवल भारत के औद्योगिक ढांचे को मजबूती प्रदान की, बल्कि आत्मनिर्भरता की दिशा में भी ठोस आधार तैयार किया।

9.6.3 तीसरी पंचवर्षीय योजना (Third five year plan)-

दूसरी पंचवर्षीय योजना में जहाँ औद्योगिक विकास की बुनियाद रखी गई थी, वहीं तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–1966) का मुख्य उद्देश्य उस आधार को और अधिक मजबूत करना तथा औद्योगिक ढांचे का विस्तार करना था। इस योजना में मूलभूत एवं पूंजीगत वस्तु उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया, ताकि भविष्य की योजनाओं में औद्योगिक प्रगति निर्बाध रूप से जारी रह सके।

इस योजना के अंतर्गत देश में आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की कमी को दूर करने के उद्देश्य से वस्त्र, चीनी, कपड़ा, वनस्पति तेल, भवन निर्माण सामग्री, तथा औषधियों से संबंधित उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि पर भी ध्यान केंद्रित किया गया।

यद्यपि योजना में कुल औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि वास्तविकता में लक्ष्य से लगभग 30 प्रतिशत कम रही, फिर भी कुछ क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। एल्युमिनियम, ऑटोमोबाइल्स, विद्युत ट्रांसफॉर्मर्स, मशीन टूल्स, डीज़ल,इंजन, वस्त्र उद्योग की मशीनरी, बॉल बेयरिंग्स और रोलर बेयरिंग्स जैसे महत्वपूर्ण उद्योगों में 15 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर से अधिक की उपलब्धियाँ प्राप्त की गईं।

इस प्रकार, तीसरी पंचवर्षीय योजना ने भारत के औद्योगिक विकास की गति को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, भले ही समग्र लक्ष्य पूरी तरह प्राप्त न हो सका हो।

9.6.4 चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–1974) (Fourth five year plan)

चौथी पंचवर्षीय योजना की शुरुआत वर्ष 1969 में की गई। इस योजना के अंतर्गत कुल 15,779 करोड़ रुपये का निवेश प्रस्तावित किया गया, जिसमें से 2,864 करोड़ रुपये (लगभग 18.2 प्रतिशत) औद्योगिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए थे।

इस योजना का उद्देश्य औद्योगिक विकास की गति को तेज करना था, और इसके लिए 8–10 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। किंतु वास्तविकता में औद्योगिक उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि सिर्फ 3.9 प्रतिशत रही। इस धीमी प्रगति के लिए कई महत्वपूर्ण कारक जिम्मेदार रहे, जो इस प्रकार हैं:

- **मांग में कमी** – बाजार में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग अपेक्षाकृत कम रही, जिससे उत्पादन प्रभावित हुआ।

- **कच्चे माल की कमी –** उद्योगों के लिए आवश्यक आधारभूत कच्चे माल की आपूर्ति में बाधाएँ उत्पन्न हुईं।
- **मजदूरों में असंतोष –** बढ़ती कीमतों और जीवनयापन की लागत के कारण श्रमिकों में असंतोष व्याप्त रहा, जिससे औद्योगिक अशांति और हड़तालें हुईं।
- **परिवहन संबंधी कठिनाइयाँ –** विशेषकर भारी वस्तुओं जैसे कोयला, सीमेंट, इस्पात और कच्चा लोहा के आवागमन में बाधाएँ उत्पन्न हुईं, जिससे समय पर आपूर्ति संभव नहीं हो पाई।
- **कोयला एवं बिजली की कमी –** ऊर्जा संकट के कारण इस्पात, सूती वस्त्र, सीमेंट, उर्वरक, रसायन और एल्युमिनियम जैसे प्रमुख उद्योगों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा।
- **क्षमता उपयोग में कमी –** कई उद्योगों में स्थापित उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो सका और नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना में भी देरी हुई।

इन सभी कारणों से चौथी योजना के औद्योगिक लक्ष्यों की प्राप्ति में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई। फिर भी, इस योजना ने औद्योगिक अवसंरचना को बनाए रखने और भविष्य की योजनाओं के लिए सीख प्राप्त करने का कार्य किया।

9.6.5 पांचवीं पंचवर्षीय योजना (Fifth five year plan)

पांचवीं योजना के औद्योगिक कार्यक्रम इस प्रकार से तैयार किए गए थे जिसमें आत्म-निर्भरता तथा संवृद्धि के साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। निवेश और उत्पादन के निम्न पैटर्न की संकल्पना की गई । 1. प्रमुख क्षेत्र उद्योगों का तेज विकास क्योंकि ये उद्योग दीर्घकालिक आर्थिक विकास की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं इसलिए इस्पात, अलौह धातुओं, उर्वरकों, खनिज तेलों, कोयला और मशीन निर्माण उद्योगों में विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी गई । 2. निर्यात-उत्पादक उद्योगों का तेज विविधीकरण और विकास, 3. कपड़ा, खाद्य तेल व वनस्पति, चीनी, दवाईयां, साईकिल इत्यादि । आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में व्यापक विस्तार, तथा 4. अनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर रोक। पांचवी योजना में कुल व्यय 39,426 करोड़ रूपये था जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 8989 करोड़ रूपये (22.8 प्रतिशत) था । औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 5.9 प्रतिशत प्रति वर्ष रही ।

96.6 छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985) (Sixth five year plan)

छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल 1,09,292 करोड़ रुपये का सार्वजनिक व्यय किया गया, जिसमें से 15,002 करोड़ रुपये (लगभग 13.7 प्रतिशत) औद्योगिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए थे। इस योजना की एक विशेषता यह रही कि सरकार ने औद्योगिक नीति में महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तनों की घोषणा की।

इस अवधि में औद्योगिक नियंत्रणों में पर्याप्त ढील दी गई तथा औद्योगिक और आयात नीतियों को पूर्व की तुलना में अधिक उदार बनाया गया। इन नीतिगत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में तेज़ी से वृद्धि होने लगी।

विशेष रूप से उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं, रसायन, पेट्रो-रसायन, तथा सहायक उद्योगों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। इन उद्योगों की एक बड़ी विशेषता यह थी कि वे अपने उत्पादन हेतु आयातित कच्चे माल और उपकरणों पर अत्यधिक निर्भर थे।

हालाँकि, इन क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य उत्पादन क्षेत्रों में विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी रही, जिससे औद्योगिक विकास में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हुई।

9.6.7 सांतवी पंचवर्षीय योजना- (Seventh five year plan)

सांतवी योजना में संवृद्धि के साथ विकास तथा उत्पादकता में सुधार को विशेष महत्व दिया गया इन बातों को ध्यान में रखते हुए, औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए निम्नलिखित उद्देश्य रखे गये - 1. उचित कीमतों तथा सही क्वालिटी की आम उपभोग वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति बनाए रखना । 2. उपलब्ध सुविधाओं के बेहतर उपयोग को उत्पादकता में सुधार लाकर तथा अच्छी तकनीक का प्रयोग करके संभव बनाना, 3. व्यापक घरेलू बाजार तथा निर्यात संभाव्यता वाले उद्योगों के विकास पर जोर देना, 4. इलैक्ट्रोनिक्स व कम्प्यूटर उद्योगों का विकास करना तथा 4. आत्म-निर्भरता की दिशा में एकीकृत नीति अपनाना और प्रशिक्षित व कौशल प्राप्त लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करना । सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रमों के लिए 19,663 करोड़ रूपये का परिव्यय रखा गया जबकि वास्तविक व्यय 25,271 करोड़ रूपये था जो कि सातवीं योजना में कुल व्यय 2,18,730 करोड़ रूपये का 11.9 प्रतिशत था) औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 8.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि सातवीं योजना में वास्तविक संवृद्धि दर 8.5 प्रतिशत रही। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में संवृद्धि लक्ष्य के अनुरूप रही ।

9.6.8 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–1997) (Eighth five year plan)

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान औद्योगिक क्षेत्र के लिए 40,588 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया, जो कि कुल 4,34,100 करोड़ रुपये के परिव्यय का केवल 9.3 प्रतिशत था। योजना की दिशा इस तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि सार्वजनिक क्षेत्र को अब मुख्य रूप से मूलभूत एवं कोर उद्योगों तक सीमित रखने का निर्णय लिया गया।

योजना की समाप्ति तक उद्योगों पर वास्तविक व्यय 40,623 करोड़ रुपये रहा, जो कि कुल वास्तविक व्यय 4,85,457 करोड़ रुपये का 8.5 प्रतिशत मात्र था।

इस योजना की विशेषता यह थी कि इसमें औद्योगिक नीति के उदारीकरण को ध्यान में रखते हुए मात्रात्मक लक्ष्यों पर कम जोर दिया गया। इसके स्थान पर, औद्योगिक, व्यापार एवं राजकोषीय नीतियों में आवश्यक सुधार तथा करों और शुल्कों में परिवर्तन के माध्यम से औद्योगिक विकास को गति देने का प्रयास किया गया। इस प्रक्रिया में आयात-निर्यात पर मात्रात्मक प्रतिबंधों और लाइसेंसिंग प्रणाली पर निर्भरता कम कर दी गई।

औद्योगिक क्षेत्र के लिए इस योजना में 7.3 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जबकि वास्तविक उपलब्धि 7.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इस प्रकार, योजना ने अपने निर्धारित औद्योगिक संवृद्धि लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त किया।

9.6.9 नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) (Ninth five year plan)

नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत उद्योग और खनन क्षेत्र के लिए कुल 65,148 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया था। यह राशि कुल योजना परिव्यय 8,59,200 करोड़ रुपये का लगभग 7.6 प्रतिशत थी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस योजना में मुख्य क्षेत्रवार परिव्यय किया गया था, अतः उद्योग पर निर्धारित परिव्यय में लघु एवं कुटीर उद्योगों पर किया गया व्यय भी सम्मिलित है।

हालाँकि योजना के अंत तक उद्योग और खनन पर वास्तविक व्यय केवल 40,341 करोड़ रुपये रहा, जो कि कुल वास्तविक व्यय का मात्र 5.0 प्रतिशत था। यह अपेक्षित निवेश से काफी कम था और इससे औद्योगिक क्षेत्र में योजनानुरूप विकास में बाधा आई।

इस योजना में औद्योगिक संवृद्धि के लिए 8.2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, लेकिन सीमित निवेश और संरचनात्मक चुनौतियों के कारण इसे पूर्ण रूप से प्राप्त करना संभव नहीं हो सका।

9.6.10 दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) (Tenth five year plan)

दसवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योग और खनन क्षेत्र के लिए 58,939 करोड़ रुपये का परिव्यय निर्धारित किया गया था, जो कि कुल योजना परिव्यय 15,25,639 करोड़ रुपये का केवल 3.9 प्रतिशत था।

इस योजना के अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र के लिए 8.9 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। यह संतोषजनक बात रही कि इस क्षेत्र ने लक्ष्य से बेहतर प्रदर्शन करते हुए 9.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर्ज की।

इस सफलता के आधार पर, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) में उद्योग और सेवा क्षेत्र के लिए 9 से 11 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया, ताकि तीव्र और समावेशी आर्थिक विकास की दिशा में प्रगति की जा सके।

9.6.11 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) (Eleventh five year plan)

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य "तेज और समावेशी विकास" था, जिसका लक्ष्य उच्च आर्थिक वृद्धि दर के साथ वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाना था। यह योजना शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, महिला सशक्तिकरण और क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने पर केंद्रित थी। उद्योग और सेवा क्षेत्र में 9–11% वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया, जिसमें औद्योगिक क्षेत्र ने 7.2% और सेवा क्षेत्र ने लगभग 10% वृद्धि दर्ज की। MSMEs को बढ़ावा देने, SEZs की स्थापना और विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के प्रयास किए गए। हालाँकि वैश्विक आर्थिक मंदी (2008), बुनियादी ढाँचे की धीमी प्रगति, और बेरोजगारी जैसी चुनौतियाँ रहीं, फिर भी यह योजना समावेशी और सतत विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुई।

9.6.12 बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) (Twelfth five year plan)

भारत की अंतिम पंचवर्षीय योजना थी, जिसे योजना आयोग द्वारा तैयार किया गया था। इस योजना का मूल उद्देश्य "तेज, सतत और अधिक समावेशी विकास" (Faster, Sustainable and More Inclusive Growth) था। इसमें सामाजिक न्याय के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि को भी प्राथमिकता दी गई। योजना में 8 प्रतिशत वार्षिक आर्थिक संवृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, हालांकि वास्तविक संवृद्धि इससे कम रही।

बारहवीं योजना के दौरान स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल विकास, कृषि उत्पादकता, आधारभूत ढाँचे (infrastructure) और पर्यावरणीय स्थिरता जैसे क्षेत्रों पर विशेष बल दिया गया। साथ ही, जनसंख्या के कमजोर वर्गों को मुख्यधारा से जोड़ने के प्रयास किए गए। इस योजना में निजी क्षेत्र की भागीदारी, FDI को प्रोत्साहन, और राज्य सरकारों की अधिक भूमिका की अवधारणा को भी मजबूती मिली।

हालाँकि इस योजना की समाप्ति के बाद सरकार ने पंचवर्षीय योजना प्रणाली को समाप्त कर, उसकी जगह नीति आयोग की स्थापना की और दीर्घकालीन दृष्टिकोण आधारित योजनाएँ लागू की गईं। इस प्रकार बारहवीं योजना भारतीय योजना इतिहास की अंतिम पारंपरिक पंचवर्षीय योजना सिद्ध हुई।

2017 के बाद भारत में पंचवर्षीय योजना प्रणाली को नीति आयोग द्वारा समाप्त कर दिया गया, और उसकी जगह तीन स्तर की रणनीतिक योजना प्रणाली लागू की गई-

1. 3-वर्षीय एक्शन प्लान
2. 7-वर्षीय रणनीतिक योजना
3. 15-वर्षीय दृष्टि दस्तावेज़ (Vision Document)

9.7 औद्योगिक विकास और उपलब्धियाँ (Industrial development and achievements)

औद्योगिक विकास और उपलब्धियाँ को चार चरणों में रखते हैं|

97.1 उच्च विकास का चरण (1951-1965)

यह चरण अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि इसमें भविष्य में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया गया । महलानोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूलभूत उद्योगों के विकास पर विषेश जोर दिया गया । यही कारण है कि लोहा व इस्पात, भारी इंजीनियरिंग तथा मशीन निर्माण उद्योगों में भारी निवेश किया गया। पहली तीन योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी हुई |

सारणी 1-औद्योगिक वर्ग अनुसार वार्षिक औसत वृद्धि दर (%) (1951–1980)

क्र.	औद्योगिक वर्ग	1951–1955	1955–1960	1960–1965	1965–1970	1970–1974	1974–1979 (5वीं योजना औसत)
1.	मूल उद्योग	4.7%	12.1%	10.4%	6.5%	8.4%	-0.5%
2.	पूंजीगत वस्तु उद्योग	9.8%	13.1%	19.6%	2.6%	5.7%	-2.3%
3.	मध्यवर्ती वस्तु उद्योग	7.8%	6.3%	6.9%	3.0%	4.3%	1.9%
4.	उपभोक्ता वस्तु उद्योग	4.8%	4.4%	4.9%	3.4%	5.5%	-4.4%
4क.	उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	6.2%	6.8%	5.6%	—	—	—
4ख.	उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुएं	2.8%	5.4%	6.1%	—	—	—
5.	सामान्य	5.7%	7.2%	9.0%	4.1%	6.1%	-1.6%

	औद्योगिक सूचकांक						

1951 से 1979 तक की औद्योगिक वृद्धि को विभिन्न वर्गों के अनुसार देखने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक वर्षों में भारत के मूल उद्योगों ने स्थिर विकास दर बनाए रखी, जो 1951–1955 में 4.7% थी और 1955–1960 में बढ़कर 12.1% हो गई। इसके बाद इसमें गिरावट देखी गई और यह 1974–1979 की पंचवर्षीय योजना के दौरान घटकर -0.5% रह गई।

पूंजीगत वस्तु उद्योगों ने 1960-1965 के दौरान सबसे अधिक 19.6% की वृद्धि दर प्राप्त की, परंतु इसके बाद इसमें तीव्र गिरावट आई और 1974-1979 में यह दर -2.3% हो गई। इससे यह संकेत मिलता है कि भारत की औद्योगिक संरचना में अस्थिरता रही और इन उद्योगों को स्थायी समर्थन की आवश्यकता थी।

मध्यवर्ती वस्तु उद्योगों की वृद्धि दर शुरू में 7.8% (1951-1955) थी और आगे चलकर इसमें गिरावट आई। 1974-1979 में यह दर मात्र 1.9% रही, जो उत्पादन क्षमता और मांग में संतुलन की कमी को दर्शाती है।

उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की वृद्धि दर भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति दर्शाती है। यह दर 1951-1955 में 4.8% थी, परंतु 1974-1979 में घटकर -4.4% हो गई, जो कि काफी चिंताजनक है। इस वर्ग को टिकाऊ और गैर टिकाऊ वस्तुओं में विभाजित किया गया है, जिनमें टिकाऊ वस्तुएं (जैसे घरेलू उपकरण आदि) ने 1960-1965 में 5.6% की वृद्धि दर हासिल की, जबकि गैर टिकाऊ वस्तुएं (जैसे खाद्य सामग्री, वस्त्र) उसी अवधि में 6.1% की दर से बढ़ीं। परंतु आगे के वर्षों में इनके आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

सामान्य औद्योगिक सूचकांक, जो समग्र औद्योगिक प्रदर्शन को दर्शाता है, उसने भी शुरू में अच्छी वृद्धि दिखाई 1955-1960 में 7.2% और 1960-1965 में 9.0% की दर से। लेकिन 1974-1979 में यह घटकर -1.6% हो गया, जो कि औद्योगिक क्षेत्र में व्यापक मंदी का संकेत है।

इस समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 1950 के दशक में औद्योगिक विकास उत्साहजनक था, लेकिन 1970 के दशक के अंत तक अनेक बाहरी और आंतरिक कारणों से इसमें गिरावट आई। यह कालखंड उद्योगों की संरचनात्मक कमजोरियों और नीति-सम्बंधी कठिनाइयों को उजागर करता है।

9.7.2 निम्न विकास का चरण (1966-1980) –

सारणी 1 के आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि 1965 से 1976 की अवधि के बीच भारत के औद्योगिक क्षेत्र में संवृद्धि दर में तीव्र गिरावट देखने को मिली। जहां तीसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक वृद्धि दर 9.0 प्रतिशत थी, वहीं यह घटकर 1965 से 1976 के दौरान मात्र 4.1 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई। वास्तव में यह दर भी वास्तविक स्थिति को पूरी तरह नहीं दर्शाती, क्योंकि 1976-77 में औद्योगिक उत्पादन में 10.6 प्रतिशत की असामान्य वृद्धि हुई थी। यदि इस एक वर्ष को गणना से अलग कर दिया जाए, तो 1965 से 1975 के दशक में औद्योगिक वृद्धि की औसत दर घटकर केवल 3.7 प्रतिशत रह जाती है।

पाँचवीं योजना के दौरान औद्योगिक क्षेत्र में 6.1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई, परंतु यह वृद्धि भी मुख्यतः 1976-77 की 10.6 प्रतिशत वृद्धि के कारण है। इस प्रकार, यह अवधि न केवल औद्योगिक वृद्धि की धीमी गति को दर्शाती है, बल्कि संरचनात्मक प्रतिगमन (structural retrogression) की प्रवृत्ति को भी उजागर करती है।

विशेषकर, पूंजीगत वस्तु उद्योगों की स्थिति गंभीर रही। जहां पहली तीन योजनाओं में इस वर्ग की वृद्धि दर क्रमशः 9.8% (प्रथम योजना), 13.1% (द्वितीय योजना) और 19.6% (तृतीय योजना) थी, जो एक आशाजनक संकेत था, वहीं 1965 से 1976 की अवधि में यह दर घटकर मात्र 2.6 प्रतिशत रह गई। यदि केवल पाँचवीं योजना पर ध्यान दें, तो उस दौरान वृद्धि दर 5.7 प्रतिशत रही, जो पहले की तुलना में बहुत कम है।

मूल उद्योगों की स्थिति भी इसी प्रकार रही। 1965 से 1980 के दौरान मूल उद्योगों और पूंजीगत वस्तु उद्योगों दोनों की संवृद्धि दरों में गिरावट स्पष्ट रूप से यह संकेत देती है कि उस समय भारत के औद्योगिक ढाँचे में संरचनात्मक गिरावट आ रही थी, जिससे दीर्घकालिक औद्योगिक विकास की संभावनाओं को आघात पहुँचा।इस प्रकार, 1965 के बाद की अवधि को भारत के औद्योगिक इतिहास में विकास की मंद गति और संरचनात्मक असंतुलन की अवधि कहा जा सकता है।

9.7.3 औद्योगिक पुनरूत्थान का चरण (1981-1990)

1980 के दशक को मोटे रूप में औद्योगिक पुनरूस्थान का काल कहा जाता है । यह बात औद्योगिक उत्पादन के संशोधित सूचकांक (जिसका आधार वर्ष 1980-81 = 100), है से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है । इस सूचकांक पर आधारित औद्योगिक संवृद्धि दरें सारणी 2 में दी गई है –

सारणी 2: 1980 के दशक में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर (प्रतिशत प्रति वर्ष)

क्र.सं.	औद्योगिक समूह	1981–1985	1985–1990	1990–1991
1.	मूल उद्योग	8.7%	7.4%	3.8%
2.	पूंजीगत वस्तु उद्योग	6.2%	14.8%	9.4%
3.	मध्यवर्ती वस्तु उद्योग	6.0%	6.4%	6.1%
4.	उपभोक्ता वस्तु उद्योग	5.1%	7.3%	10.4%
4 a.	उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	14.3%	11.6%	14.8%
4 b.	उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुएं	3.8%	6.4%	9.4%

स्रोत - Government of India, Hand Book of Industrial Statistics, 1992

उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि 1980 के दशक में भारत के औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि में विभिन्न समूहों के बीच महत्वपूर्ण अंतर देखने को मिला। मूल उद्योगों की वार्षिक वृद्धि दर 1981-1985 में 8.7% रही, जो अगले पाँच वर्षों (1985-1990) में घटकर 7.4% और फिर 1990-1991 में और घटकर 3.8% हो गई। यह गिरावट इस बात का संकेत देती है कि मूलभूत संरचना वाले उद्योगों की वृद्धि गति धीमी पड़ रही थी।

इसके विपरीत, पूंजीगत वस्तु उद्योगों ने 1985-1990 के दौरान उल्लेखनीय प्रदर्शन किया, जहां इनकी वृद्धि दर 14.8% तक पहुँच गई, जो 1981-1985 की 6.2% की दर से कहीं अधिक थी। हालांकि 1990-91 में यह दर घटकर 9.4% रह गई, फिर भी यह तुलनात्मक रूप से मजबूत रही, जो इस क्षेत्र में निवेश और विस्तार की सक्रियता को दर्शाता है।

मध्यवर्ती वस्तु उद्योगों की वृद्धि दर इस पूरे दशक में अपेक्षाकृत स्थिर रही 1981-1985 में 6.0%, 1985-1990 में 6.4%, और 1990-1991 में 6.1%। यह संकेत करता है कि इस वर्ग ने संतुलित वृद्धि बनाए रखी, हालांकि कोई बड़ा उछाल नहीं दिखा।

उपभोक्ता वस्तु उद्योगों ने दशक की शुरुआत में 5.1% की वृद्धि दर दर्ज की, जो अंत तक बढ़कर 10.4% हो गई, जिससे यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता मांग में तेजी आई। इस श्रेणी को दो भागों में बाँटा गया है उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं (जैसे टेलीविजन, फ्रिज आदि) और गैर टिकाऊ वस्तुएं (जैसे साबुन, तेल, वस्त्र आदि)। टिकाऊ वस्तुओं की वृद्धि दर इस पूरे दशक में सबसे अधिक रही 1981-1985 में 14.3%, 1990-1991 में 14.8%, जबकि गैर टिकाऊ वस्तुएं धीरे-धीरे बढ़ीं, जो 1981-1985 में 3.8% से बढ़कर 1990-1991 में 9.4% तक पहुँची।

कुल मिलाकर, इस अवधि में पूंजीगत और उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उद्योगों में अच्छी वृद्धि दर्ज की गई, जबकि मूल उद्योगों की रफ्तार धीमी होती गई। यह परिवर्तन भारत की औद्योगिक संरचना में उपभोक्ता उन्मुखता और निवेश प्रोत्साहन की ओर संकेत करता है।

9.7.4 औद्योगिक सुधार का चरण 1991 से बाद की अवधि

1991 से आर्थिक उदारीकरण के एक नए युग की शुरूआत हुई । औद्यानिक क्षेत्र के निश्पादन को प्रभावित करने वाली नई उदारीकृत नीतियां थीं- औद्यानिक लाइसेंसिंग में व्यापक उदारीकरण व लाइसेंसिंग से अधिकतर उद्योगों की मुक्ति, कार्यकारी नियमों व नियंत्रणों में सरलीकरण, सार्वजनिकथा निजी क्षेत्र के लिए अधिकतर उद्योगों के द्वार खोलना, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में विनिवेष, धरेलू औद्यानिक क्षेत्र में विदेशी भागीदारी को बढ़ावा, व्यापार व विनिमय दर नीतियों में उदारीकरण, सीमा षुल्कों, उत्पादन शुल्कों, आय कर तथा निगम कर की दरों में कमी, इत्यादि ।

उदारीकरण के पूर्व के दशक तथा बाद की अवधि में औद्यानिक उत्पाद की औसत वार्षिक संवृद्धि दर

क्र.सं.	औद्योगिक समूह	1980–81 से 1991–92	1992–93 से 1996–97 आठवीं योजना)	1997–98 से 2001–02 नौवीं योजना)	2002–03 से 2006–07 दशवीं योजना)	2006–07	2007–08	2008–09
1.	मूल उद्योग	7.4%	6.8%	4.1%	6.6%	10.3 %	7.0%	2.6%
2.	पूंजीगत वस्तु उद्योग	9.4%	8.9%	4.7%	14.4%	18.2 %	18.0 %	7.3%
3.	मध्यवर्ती वस्तु उद्योग	4.9%	8.5%	5.8%	6.2%	12.0 %	8.9%	-1.9%
4.	उपभोक्ता वस्तु उद्योग	6.0%	6.6%	5.5%	9.6%	10.1 %	6.1%	4.7%

4क	उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	10.8%	13.4%	10.7%	8.8%	9.2%	-1.0%	4.5%
4ख	उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुएं	5.3%	4.8%	3.8%	10.0%	10.4 %	8.5%	4.8%
	सामान्य सूचकांक	7.8%	7.4%	5.0%	8.2%	11.5 %	8.5%	2.7%

स्रोत: Reserve Bank of India, Hand Book of Statistics on Indian Economy, 2008-009

उदारीकरण के बाद की अवधि में औद्योगिक संवृद्धि के बारे में महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं- 01.आठवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि 7.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जो लक्षित दर के बराबर थी। इसलिए इस आधार पर औद्योगिक निश्पादन संतोषजनक था।

नौवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर केवल 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जो लक्षित 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बहुत कम थी। इसलिए 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्षेत्र का निष्पादन अत्यन्त असंतोषजनक था।

नौवी पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्श 2001-02 में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर मात्र 2.7 थी। यह 1992-93 से 2001-02 के पूरे दशक के दौरान सबसे खराब औद्योगिक प्रदर्शन था।

1992-93 के वर्ष को छोड़कर जब औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 2.3 प्रतिशत थी। दसवीं योजना के प्रथम चार वर्षों 2002-03, 2003-04, 2004-05 तथ 2005-06 में औद्योगिक संवृद्धि दर बढ़कर क्रमश 5.7 प्रतिशत, 7.0 प्रतिशत, 8.4 प्रतिशत तथा 8.2 प्रतिशत हो गई। इन चार वर्शों में पूंजीगत वस्तु उद्योगों का निष्पादन अच्छा था। 2002-03 में उपभोक्ता गैर-टिकाऊ वस्तुओं, 2003-04 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं तथा 2004-05 एवं 2005-06 में सभी उपभोक्ता वस्तुओं (टिकाऊ एवं गैर-टिकाऊ) का प्रदर्शन भी अच्छा रहा।

जहाँ तक विभिन्न औद्योगिक समूहों का संबंध है, सारणी से यह बात स्पष्ट होती है कि, 1980 के दशक की तुलना में, 1990 के दशक में पूंजीगत वस्तु उद्योगों और मूल वस्तु उद्योगों का निष्पादन खराब रहा, खासतौर पर 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में। उदाहरण के लिए, 1980 के दशक में पूंजीगत वस्त उद्योग की औसत वार्षिक संवृद्धि दर 9.4 प्रतिशत रही जो आठवीं योजना में कम होकर 8.9 प्रतिशत तथा नौवीं योजना में और कम होकर केवल 4.7 प्रतिशत रह गई। मूल वस्तु उद्योग में भी इसी प्रकार की स्थिति रही। उदारीकरण के पूर्व के दशक की तुलना में, उदारीकरण के बाद के दशक में मध्यवर्ती वस्तु उद्योग तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योग का निष्पादन बेहतर रहा। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का निष्पादन विशेष तौर पर अच्छा रहा। वस्तुतः यही एक ऐसा उद्योग-वर्ग है जिसकी औसत संवृद्धि दर 1980 के दशक तथा 1990 के दशक दोनों में ही प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक रहीं (हालांकि 2002-03 में इस उद्योग वर्ग का निष्पादन खराब रहा)।

ये प्रवृत्तियां सरकारी नीति के अनुरूप हैं जिसमें उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के विकास को अधिक प्रोत्साहन दिया गया है संभवतः यह सोचते हुए कि यह क्षेत्र संवृद्धि का स्रोत बन सकता है । उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं को खरीदने के लिए वित्तीय सुविधाओं का व्यापक प्रसार इसी नीति का एक अंग माना जाना चाहिए।

9.8 योजनाकाल में औद्योगिक संरचना में परिवर्तन (Changes in industrial structure during the planning period)

1.औद्योगिक आधारिक संरचना का निर्माण

आधुनिक औद्योगिक विकास किसी भी देश की आर्थिक प्रगति की रीढ़ होता है, और इसके लिए आधारभूत संरचना का विकास अनिवार्य है। भारत की औद्योगिक संरचना में बिजली, कोयला, इस्पात, क्रूड पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम रिफाइनरी जैसे मूलभूत उद्योगों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये उद्योग संयुक्त रूप से कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 27% योगदान करते हैं।

बिजली, व्यावसायिक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। जहाँ 1950-51 में विद्युत उत्पादन मात्र 5.1 बिलियन KWH था, वहीं 2022-23 में यह बढ़कर लगभग 1850 बिलियन KWH से अधिक हो गया। भारत अब विश्व का तीसरा सबसे बड़ा विद्युत उत्पादक देश बन चुका है और अक्षय ऊर्जा की भागीदारी भी तेजी से बढ़ रही है। इसी प्रकार, कोयला उत्पादन में भी भारी वृद्धि हुई है। 1950-51 में कोयले का उत्पादन 32.3 मिलियन टन था, जो 2022-23 में बढ़कर 893 मिलियन टन हो गया, जिससे भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा कोयला उत्पादक बन गया है।

कच्चे तेल के मामले में, 1950-51 में भारत का उत्पादन केवल 3 मिलियन टन था जो 2009-10 में 36.71 मिलियन टन और 2022-23 में लगभग 30–32 मिलियन टन के आसपास रहा। हालांकि घरेलू उत्पादन सीमित है, भारत की ऊर्जा खपत काफी अधिक होने के कारण आयात पर बड़ी निर्भरता बनी रहती है। इस्पात उद्योग की बात करें तो 1950-51 में तैयार स्टील का उत्पादन 1.0 मिलियन टन था, जो 2022-23 में बढ़कर 125.3 मिलियन टन से अधिक हो गया है। भारत अब चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा इस्पात उत्पादक देश बन गया है, जिसमें 1.25 लाख करोड़ रुपये से अधिक की पूंजी निवेशित है और लगभग 10 लाख लोगों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त है।

सीमेंट उद्योग भी भारत के सबसे उन्नत उद्योगों में से एक है। 1950-51 में इसका उत्पादन 2.7 मिलियन टन था, जो 2008-09 में 181.4 मिलियन टन और 2022-23 में 390 मिलियन टन से अधिक हो गया है। भारत अब चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा सीमेंट उत्पादक देश है। देश में 210 से अधिक बड़े तथा 300 से अधिक लघु सीमेंट संयंत्र कार्यरत हैं। तकनीकी उन्नयन और स्वचालन ने इस उद्योग को और प्रतिस्पर्धी बना दिया है, और 2022-23 में इसका निर्यात 12–14 मिलियन टन तक पहुँचा।

भारत की औद्योगिक आधारभूत संरचना में बिजली, कोयला, इस्पात, सीमेंट और पेट्रोलियम जैसे उद्योगों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन क्षेत्रों में गत सात दशकों में हुई उल्लेखनीय प्रगति ने भारत को वैश्विक औद्योगिक शक्ति के रूप में उभरने का मार्ग प्रशस्त किया है।

2. सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से में वृद्धि (Increase in the share of the industrial sector in GDP)

योजनाकाल के दौरान भारत के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान में निरंतर वृद्धि हुई है। प्रारंभिक वर्षों में, जैसे कि 1950-51 में, औद्योगिक क्षेत्र (जिसमें विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस तथा जलापूर्ति शामिल हैं) का योगदान मात्र 13.3 प्रतिशत था। इसके पश्चात 1980-81 में यह बढ़कर

21.6 प्रतिशत हो गया, और 1999-2000 में यह आंकड़ा (1993-94 की स्थिर कीमतों पर) 24.3 प्रतिशत तक पहुँच गया।

बाद में, जब 1999-2000 को आधार वर्ष मानकर केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) ने नई श्रेणी बनाई, तो उसी वर्ष औद्योगिक क्षेत्र का योगदान संशोधित आंकड़ों के अनुसार 23.1 प्रतिशत रहा। यह 2005-06 में बढ़कर 24.1 प्रतिशत हो गया और 2009-10 में यह हिस्सा बढ़कर 28 प्रतिशत तक पहुँच गया।

हाल के वर्षों में (2021-22 और 2022-23), औद्योगिक क्षेत्र का GDP में योगदान लगभग 28% से 30% के बीच बना हुआ है, हालाँकि वैश्विक मंदी, महामारी और आपूर्ति शृंखला में व्यवधान जैसे कारकों का प्रभाव भी इसमें परिलक्षित हुआ। इसके बावजूद, औद्योगिक क्षेत्र भारत की अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख स्तंभ के रूप में स्थापित हो चुका है, जो विनिर्माण आधारित योजनाओं (जैसे "मेक इन इंडिया", "पीएलआई योजना") और बुनियादी ढांचे में निवेश के कारण निरंतर मजबूती प्राप्त कर रहा है।

3. भारी तथा पूँजीगत वस्तु उद्योगों का निर्माण (Creation of heavy and capital goods industries)

योजनाकाल की शुरुआत से ही राष्ट्र का ध्यान अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता को बढ़ाने पर केंद्रित रहा। इसी कारण औद्योगिक क्षेत्र में अधिकांश निवेश उन उद्योगों में किया गया, जो भविष्य में उत्पादन को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक माने गए, जैसे मशीन बनाने वाली मशीनों का निर्माण। यही वजह रही कि नीति-निर्माताओं ने भारी एवं पूंजीगत वस्तु उद्योगों में निवेश को प्राथमिकता दी। इस रणनीति का सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि 1950-51 की तुलना में भारत का औद्योगिक आधार अब कहीं अधिक सुदृढ़ और आत्मनिर्भर बन चुका है।

आज देश में विभिन्न प्रकार की इंजीनियरिंग वस्तुएँ, लोहा-इस्पात, धातु और धातु-आधारित वस्तुओं का उत्पादन घरेलू स्तर पर ही हो रहा है, जिससे विदेशी निर्भरता में उल्लेखनीय कमी आई है।

इसके अतिरिक्त, औद्योगिक ढाँचे का विविधीकरण भी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। पहली पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में कुल औद्योगिक उत्पादन में केवल चार उद्योगों खाद्य पदार्थ, वस्त्र, लकड़ी-फर्नीचर और मूल धातु का दो-तिहाई हिस्सा था। लेकिन अब इनका योगदान घट गया है और उनकी जगह मशीनीकरण आधारित उद्योगों, जैसे विद्युत एवं गैर-विद्युत मशीनरी, रसायन उद्योग और परिवहन उपकरण निर्माण जैसे क्षेत्रों का योगदान तेजी से बढ़ा है। परिणामस्वरूप, भारत का औद्योगिक ढांचा अब काफी विविध, संतुलित और तकनीकी रूप से समृद्ध हो चुका है।

5. उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का तेज विकास (Strong growth in consumer durables)

हाल के वर्षों में भारत की औद्योगिक नीति और आयात नीति में व्यापक उदारीकरण किया गया है, जिससे उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं (Consumer Durables) के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है। 1981-85 की अवधि में इन वस्तुओं के उत्पादन में 14.4% की औसत वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई, जबकि 1985-90 में यह दर 16.9% रही। यद्यपि 1991-92 और 1992-93 में आर्थिक सुधारों के शुरुआती चरणों में वैश्विक व घरेलू कारणों से संवृद्धि दर में अस्थायी गिरावट आई, लेकिन इसके बाद 1993-94 से लेकर 1995-96 तक इन उद्योगों में तीव्र वृद्धि देखी गई।

1996-97 से 1998-99 के बीच कुछ वर्षों तक उत्पादन में धीमापन रहा, लेकिन 1999-2000 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं की संवृद्धि दर पुनः बढ़कर 14.2% तथा 2000-01 में 14.5% हो गई। इसके

पश्चात 2003-04 में 11.6%, 2004-05 में 14.4% और 2005-06 में 15.3% की उल्लेखनीय वार्षिक वृद्धि दर दर्ज की गई।

कोविड-19 महामारी के दौरान 2020-21 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के क्षेत्र में उत्पादन व मांग दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। हालांकि, 2021-22 और 2022-23 में डिजिटल क्रांति, ग्रामीण बाज़ारों में विस्तार, और ई-कॉमर्स की तेज़ प्रगति के कारण इस क्षेत्र में फिर से तीव्र वृद्धि देखी गई। अनुमानतः 2022-23 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के क्षेत्र में 12-14% की वृद्धि हुई, और 2023-24 के लिए यह दर 10-12% के आसपास बनी रही।

इस प्रकार, उदारीकरण, तकनीकी नवाचार और उपभोक्ता मांग में विस्तार के चलते उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का क्षेत्र भारतीय औद्योगिक विकास का एक गतिशील घटक बन गया है।

6. सार्वजनिक क्षेत्र का विकास (Development of the public sector)

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का अस्तित्व लगभग नगण्य था और अधिकांश औद्योगिक गतिविधियाँ निजी क्षेत्र के नियंत्रण में थीं। किंतु योजनाकाल की शुरुआत के साथ ही भारत सरकार ने अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को व्यापक रूप से बढ़ाया।

जहाँ 1951 में केवल 5 सार्वजनिक उद्यमों में लगभग 29 करोड़ रुपये का निवेश था, वहीं 31 मार्च 2023 तक यह संख्या बढ़कर 389 केंद्रीय सार्वजनिक उपक्रमों (CPSEs) तक पहुँच चुकी है। इनमें से कई कंपनियाँ ऊर्जा, खनिज, इस्पात, कोयला, उर्वरक, संचार, परिवहन, निर्माण, और रक्षा उत्पादन जैसे रणनीतिक क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

वर्ष 2021-22 में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का कुल सकल कारोबार लगभग 31 लाख करोड़ रुपये रहा, जबकि कुल शुद्ध लाभ 2.49 लाख करोड़ से अधिक था।

आज सार्वजनिक क्षेत्र राष्ट्रीय अवसंरचना निर्माण, रोज़गार सृजन, आयात-निर्भरता में कमी, और सामाजिक व क्षेत्रीय संतुलन की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। हालांकि हाल के वर्षों में अधिकारियों की अक्षमता, घाटे में चल रहे उपक्रमों, और नीजीकरण की नीति के चलते कई इकाइयों के पुनर्गठन या विनिवेश की दिशा में कदम उठाए गए हैं।

इस प्रकार, सार्वजनिक क्षेत्र न केवल भारत के औद्योगिक विकास का आधार बना बल्कि यह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में स्थायित्व और आत्मनिर्भरता का भी एक मजबूत स्तंभ बना हुआ है

9.9 1990 के बाद औद्योगिक संरचना में परिवर्तन (Changes in industrial structure after 1990)

1991 के बाद भारत में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों को अपनाने के परिणामस्वरूप औद्योगिक संरचना में महत्वपूर्ण और स्थायी परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन विशेष रूप से उपभोक्ता मांग, निवेश प्राथमिकताओं और वैश्विक व्यापार के संदर्भ में देखे गए। कुछ प्रमुख बदलाव निम्नलिखित हैं:

1. उपभोक्ता व मध्यवर्ती वस्तुओं की ओर झुकाव (Inclination towards consumer and intermediate goods)

1990 के दशक में भारत की औद्योगिक संरचना का झुकाव मूल व पूंजीगत उद्योगों की तुलना में उपभोक्ता एवं मध्यवर्ती वस्तुओं की ओर बढ़ा। यह परिवर्तन औद्योगिक नीति के उदारीकरण का परिणाम था।

उदाहरण के लिए, पुराने औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (1980-81 = 100) में मूल उद्योगों का भार 39.4% और पूंजीगत वस्तु उद्योगों का भार 16.4% था। जबकि 1993-94 को आधार वर्ष मानने वाले नए सूचकांक में ये घटकर क्रमशः 35.6% और 9.3% रह गए। इसके विपरीत, मध्यवर्ती वस्तुओं का भार 20.5% से बढ़कर 26.5% और उपभोक्ता वस्तुओं का भार 23.6% से बढ़कर 28.7% हो गया।

2. मूल और पूंजीगत उद्योगों की आंतरिक संरचना में बदलाव (Changes in the internal structure of basic and capital industries)

मूल उद्योगों के अंतर्गत 'मूलभूत धातु एवं मिश्र धातु' जैसे पारंपरिक क्षेत्रों के महत्व में गिरावट आई। पुराने सूचकांक में इनका भार 9.80% था, जो नए सूचकांक में घटकर 7.45% रह गया। इसी प्रकार पूंजीगत वस्तुओं की श्रेणी में भी लगभग सभी उप-श्रेणियों के महत्व में कमी आई है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उत्पादन का फोकस बुनियादी संरचना से हटकर उपभोक्ता मांग-आधारित उत्पादों की ओर हो गया।

3. मध्यवर्ती वस्तु उद्योगों में रासायनिक उत्पादों का प्रभुत्व (Dominance of chemical products in intermediate goods industries)

इस क्षेत्र में रसायन व रासायनिक पदार्थों की हिस्सेदारी में जबरदस्त वृद्धि हुई है। पुराने सूचकांक में इनका भार केवल 4.00% था, जो नए सूचकांक में बढ़कर 14.00% हो गया। इसके विपरीत, रबर, प्लास्टिक, पेट्रोलियम और कोयला उत्पादों का संयुक्त भार 12.51% से घटकर 5.73% रह गया, जो वैश्विक ऊर्जा संकट और तकनीकी बदलावों की ओर संकेत करता है।

4. उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में तीव्र वृद्धि और विविधीकरण (Rapid growth and diversification in consumer goods industries)

उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का उत्पादन इस अवधि में तेजी से बढ़ा, विशेष रूप से घरेलू इलेक्ट्रॉनिक्स, वाहन और व्हाइट गुड्स जैसे क्षेत्रों में। इस उप-समूह का भार पुराने सूचकांक में 2.6% था जो बढ़कर 5.4% हो गया। इसके पीछे बैंकों व वित्तीय संस्थानों द्वारा उपभोक्ताओं को आसान ऋण उपलब्ध कराना एक प्रमुख कारक रहा।

इसके साथ ही परंपरागत सूती वस्त्र उद्योग के महत्व में गिरावट आई, जिसका भार 12.31% से घटकर 5.52% रह गया। वहीं, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और पेय, तम्बाकू व उससे संबंधित उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। खाद्य उद्योग का भार 5.33% से बढ़कर 9.08% और पेय व तम्बाकू उद्योग का भार 1.57% से बढ़कर 2.38% हो गया।

1990 के दशक के बाद भारत की औद्योगिक संरचना में जो परिवर्तन आए, वे न केवल उत्पादन के स्वरूप को बदले बल्कि देश की औद्योगिक रणनीति को भी सेवा-आधारित और उपभोक्ता-उन्मुख बनाते गए। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि औद्योगिक विकास अब घरेलू खपत, वैश्विक प्रतिस्पर्धा और तकनीकी बदलावों पर अधिक निर्भर हो गया है।

9.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. काल में औद्योगिक ढांचे से होने वाले परिवर्तन बताइये ।

2. उदारीकरण के पश्चात आर्थिक सुधार कार्यक्रम का भारत के औद्योगिक विकास और

उपलब्धियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

3. योजना औद्योगिक संरचना में हुए परिवर्तन स्पष्ट कीजिये ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. 1950 से पूर्व भारत की औद्योगिक संरचना का प्रमुख लक्षण क्या था?

A) भारी उद्योगों की प्रधानता

B) सार्वजनिक क्षेत्र का वर्चस्व

C) उपनिवेशवादी शोषण आधारित संरचना

D) उच्च तकनीक उद्योगों की उपस्थिति

2. स्वतंत्रता से पूर्व भारत के औद्योगिक विकास का प्रमुख नियंत्रण किसके हाथों में था?

A) सार्वजनिक क्षेत्र

B) निजी भारतीय पूंजीपति

C) ब्रिटिश सरकार व विदेशी कंपनियाँ

D) ग्राम पंचायतें

3. 1950 से पूर्व भारत की औद्योगिक संरचना में निम्न में से कौन-सा क्षेत्र प्रमुख रूप से विकसित नहीं था?

A) कपड़ा उद्योग

B) इस्पात उद्योग

C) भारी मशीनरी उद्योग

D) खाद्य प्रसंस्करण उद्योग

4. नीति आयोग से पहले भारत में औद्योगिक नियोजन का कोई संगठित प्रयास नहीं था। इसका मुख्य कारण क्या था?

A) शिक्षा की कमी

B) वैज्ञानिक तकनीक की अनुपलब्धता

C) उपनिवेशवाद के कारण योजना निर्माण की उपेक्षा

D) भारतीयों की रुचि न होना

रिक्त स्थान भरिए-

1. भारत की पहली पंचवर्षीय योजना का आरंभ वर्ष __________ में हुआ।

2. 1951 के बाद भारत की औद्योगिक संरचना में __________ क्षेत्र का महत्वपूर्ण विस्तार हुआ।

3. 1991 की नई औद्योगिक नीति ने __________ और निजीकरण को बढ़ावा दिया।

4. पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत पूंजीगत वस्तु उद्योगों और __________ उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया।

सत्य/असत्य-

1. भारत की औद्योगिक संरचना में 1951 के बाद विविधीकरण (diversification) की प्रवृत्ति देखी गई।

2. 1951 के बाद भारत में केवल निजी क्षेत्र का ही विकास हुआ, सार्वजनिक क्षेत्र उपेक्षित रहा।

3. 1991 की नई औद्योगिक नीति से विदेशी निवेश में वृद्धि हुई।

4. पंचवर्षीय योजनाओं में केवल कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता दी गई, औद्योगिक क्षेत्र की उपेक्षा की गई।

9.11 सारांश (Summary)

औद्योगिक संरचना और उपलब्धियां इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान गये हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश की औद्योगिक संरचना अत्यन्त कमजोर थी। औद्योगिक संरचना में परिवर्तन विभिन्न योजनाओं के दौरान हुआ। हम यह भी जान गये हैं कि हमारे देश की औद्योगिक संरचना 1991 के उदारीकरण के दौर से प्रभावित हुई तथा इसका प्रभाव निष्पादन पर भी पड़ा। 1991 से पूर्व औद्योगिक संरचना और निष्पादन में उतार रचढ़ाव होते रहे। 1991 के बाद औद्योगिक सुधार का चरण प्रारम्भ हुआ। वर्तमान औद्योगिक संरचना प्राचीन संरचना से एकदम अलग है तथा उपलब्धियों के संदर्भ में भी इस क्षेत्र की प्रगति सराहनीय है।

9.12 शब्दावली (Glossary)

- **औद्योगिक संरचना (Industrial Structure) –** किसी देश के उद्योगों की संरचना, संगठन और उनके उत्पादन का स्वरूप।
- **उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएँ (Consumer Durable Goods) –** वे वस्तुएँ जो लंबे समय तक उपयोग में आती हैं, जैसे फ़्रिज, टीवी, वॉशिंग मशीन।
- **Kilowatt Hour / किलोवाट-घंटा (KWH) –** विद्युत ऊर्जा की माप की इकाई, जो 1 किलोवाट शक्ति का 1 घंटे में उपभोग दर्शाती है।
- **केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organisation) –** भारत में सांख्यिकीय डेटा एकत्र, विश्लेषण और प्रकाशन करने वाली सरकारी संस्था।
- **उपभोक्ता व मध्यवर्ती वस्तुएँ (Consumer and Intermediate Goods) –** उपभोक्ता वस्तुएँ सीधे उपभोग के लिए और मध्यवर्ती वस्तुएँ अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होती हैं।
- **Foreign Direct Investment / प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) –** किसी विदेशी संस्था या व्यक्ति द्वारा देश में व्यापार या उत्पादन में किया गया प्रत्यक्ष निवेश।

9.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1.C) उपनिवेशवादी शोषण आधारित संरचना

2.C) ब्रिटिश सरकार व विदेशी कंपनियाँ

3.C) भारी मशीनरी उद्योग

4.C) उपनिवेशवाद के कारण योजना निर्माण की उपेक्षा

रिक्त स्थान भरिए-

1. 1951
2. सार्वजनिक
3. उदारीकरण

4. मूल

सत्य/असत्य-

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

9.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Isher J Ahluwalia, Industrial Growth in India: Staghation since the Mid Six ties 1984.
- Planning Commission, Tenth Five Year Plan 2002-07.
- Puseh G: Industrial, Change in India, August 30, 2003.
- P. Nagaraj "Industrial Policy and Performance since 1980 which Wauy Now?" Economic and Political Weekly Reserve Bank of India, Annual Report 2006 (Mumbai) 2006
- Government of India, Economic Survey, 2009-10 (Delhi 2010)
- Datt Ruddar Sudharvam K. P.M., Indian Economy & Fifty Fourth Edition, S. Chand & Company Ltd., New Delhi.

9.15 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- भारतीय अर्थव्यवस्था – रुद्रदत्त व सुन्दरलाल
- Indian Economy – Ramesh Singh (McGraw Hill)
- भारतीय अर्थशास्त्र – मिश्रा एवं पूरी
- भारत का आर्थिक विकास – संजीव वर्मा
- NITI Aayog Reports
- भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण (Economic Survey of India)

9.16 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. औद्योगिक संरचना से आप क्या समझते हैं ? भारत की औद्योगिक संरचना पर प्रकाश डालिए ?
2. योजना काल में भारत के औद्योगिक प्रगति और उपलब्धियों का आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये ।
3. स्वतंत्रता के बाद भारत की औद्योगिक संरचना में हुए प्रमुख परिवर्तन एवं उनके प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।
4. भारत में औद्योगिक संरचना पर पंचवर्षीय योजनाओं का प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
5. 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद भारत की औद्योगिक संरचना में आए परिवर्तन पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

इकाई - 10 : लघु उद्योग (Small Scale Industry)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)
10.2 उद्देश्य (Objectives)
10.3 परिभाषा एवं वर्गीकरण (Definition and classification)
10.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की भूमिका व निष्पादन (Role and performance of small scale industries in Indian economy)
10.4.1 लघु उद्योग का विस्तार व उत्पादन की भागीदारी (Expansion of small scale industries and participation in production)
10.4.2 रोजगार अवसरों का सृजन (Creation of employment opportunities)
10.4.3 निर्यात में योगदान (Contribution to exports)
10.4.4 लघु उद्योगों का अन्र्तराज्यीय वितरण (Inter-state distribution of small scale industries)
10.4.5 राष्ट्रीय आय का समान वितरण (Equitable distribution of national income)
10.5 लघु उद्योगों के लिए सरकारी नीति (Government Policy for Small Scale Industries)
10.5.1 1991 से पहले की नीति (Policy before 1991)
10.5.2 नयी लघु औद्योगिक नीति 1991 (New Small Industrial Policy 1991)
10.5.3 व्यापक नीति पैकेज 2000 (Comprehensive Policy Package 2000)
10.5.4 सूक्ष्म लघु एवं मध्ययम उद्योग विकास अधिनियम 2006 (Micro Small and Medium Industries Development Act 2006)
10.6 लघु उद्योग की समस्यायें (Problems of small scale industries)
10.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
10.8 सारांश (Summary)
10.9 शब्दावली (Glossary)
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
10.11 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई से पहले की इकाइयों के अध्ययन के पश्चात आप यह समझ चुके होंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था की औद्योगिक संरचना कैसी है, तथा देश में औद्योगिक विकास हेतु किन-किन नीतियों का निर्माण किया गया और समय एवं परिस्थितियों के अनुसार उनमें क्या-क्या परिवर्तन हुए।

इस इकाई में विशेष रूप से लघु उद्योगों पर विस्तृत चर्चा की गई है जैसे कि लघु उद्योग क्या होते हैं, भारतीय अर्थव्यवस्था में इनका क्या महत्व है, इनके विकास के लिए सरकार द्वारा क्या प्रयास किए गए हैं, और इन उद्योगों को किस प्रकार की मूलभूत समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप न केवल लघु उद्योगों की परिभाषा और स्वरूप को समझ सकेंगे, बल्कि यह भी स्पष्ट रूप से बता पाएंगे कि इनके विकास के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था को किस प्रकार आगे बढ़ाया जा रहा है।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ लघु उद्योग के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगें ।
- ✓ लघु उद्योगों के विकास की आवश्यकता का अध्ययन कर सकेंगें ।
- ✓ लघु उद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में भूमिका स्पष्ट कर सकेंगें। लघु उद्योगों के लिए सरकार द्वारा बनायी गयी नीतियों का अध्ययन कर सकेंगें ।
- ✓ लघु उद्योगों के समक्ष उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन कर सकेंगें ।

10.3 परिभाषा एवं वर्गीकरण (Definition and classification)

औद्योगिक ढाँचे को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है.

- बड़े उद्योग ।
- मध्यम उद्योग ।
- लघु उद्योग ।

भारत में छोटे पैमाने के औद्योगिक क्षेत्र में विविध प्रकार के उद्योग सम्मिलित होते हैं, जैसे ग्रामीण एवं शहरी कुटीर उद्योग, जहाँ मुख्य रूप से पारिवारिक श्रम का उपयोग होता है; पारंपरिक शहरी लघु उद्योग, जिनमें श्रमिकों को मजदूरी पर रखा जाता है परंतु अत्याधुनिक मशीनों का उपयोग सीमित होता है; और आधुनिक लघु उद्योग, जिनमें बिजली और उन्नत मशीनों का प्रयोग होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में लघु उत्पादन क्षेत्र एकसमान नहीं है, बल्कि इसकी संरचना विविध एवं बहुआयामी है।

लघु उद्योगों को मध्यम और बड़े उद्योगों से अलग पहचान देने के लिए निवेश आधारित मापदंडों को समय-समय पर संशोधित किया गया है। 1975 से पहले जिन इकाइयों में प्लांट एवं मशीनरी में निवेश 7.5 लाख रुपये से कम होता था, उन्हें लघु उद्योग माना जाता था। यह सीमा बाद में 1991 की औद्योगिक नीति के तहत 60 लाख रुपये (सहायक इकाइयों के लिए 75 लाख रुपये) कर दी गई और "अति लघु उद्योग" की परिभाषा भी सामने आई, जिसकी निवेश सीमा 5 लाख रुपये थी। आबिद हुसैन समिति की सिफारिशों के बाद 1997 में यह सीमा 3 करोड़ रुपये तक बढ़ाई गई।

वर्तमान समय में, भारत सरकार ने 1 जुलाई 2020 से संशोधित MSME (सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम) वर्गीकरण को लागू किया है, जो अब निवेश और वार्षिक टर्नओवर दोनों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इस नई परिभाषा के अनुसार विनिर्माण और सेवा दोनों क्षेत्रों के लिए एक समान मानक लागू हैं। वर्तमान वर्गीकरण इस प्रकार है:

- सूक्ष्म उद्योग (Micro): 1 करोड़ रुपये तक का निवेश और 5 करोड़ रुपये तक का वार्षिक टर्नओवर
- लघु उद्योग (Small): 10 करोड़ रुपये तक का निवेश और50 करोड़ रुपयेतक का वार्षिक टर्नओवर
- मध्यम उद्योग (Medium): 50 करोड़ रुपयेतक का निवेश और 250 करोड़ रुपये तक का वार्षिक टर्नओवर

यह नई व्यवस्था पारदर्शिता, सरलता और डिजिटलीकरण को बढ़ावा देती है। MSME उद्यमों के लिए उद्यम पंजीकरण को अनिवार्य कर दिया गया है, जो एक ऑनलाइन, पेपरलेस और आत्मघोषणा पर आधारित प्रक्रिया है। यह परिवर्तन न केवल अधिक इकाइयों को औपचारिक क्षेत्र में लाने में सहायक है, बल्कि उन्हें सरकारी योजनाओं, वित्तीय सहायता और बाज़ार तक पहुँच जैसी सुविधाओं से भी जोड़ता है। लघु उद्योग अब न केवल ग्रामीण और शहरी रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण साधन हैं, बल्कि आत्मनिर्भर भारत अभियान का भी सशक्त आधार बन चुके हैं।

10.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की भूमिका व निष्पादन (Role and performance of small scale industries in Indian economy)

लघु उद्योग बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा के बाद भी विकास की दृष्टि से औद्योगिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। योजना आयोग के अनुसार “लघु एवं कुटीर उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंश हैं जिनकी कभी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है । "

10.4.1 लघु उद्योग का विस्तार व उत्पादन की भागीदारी (Expansion of small scale industries and participation in production)

लघु, सूक्ष्म एवं मध्यम उद्यम (MSME) क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है, जो देश के औद्योगिक उत्पादन, रोजगार सृजन और निर्यात में बड़ा योगदान देता है। वर्ष 2002-03 में MSME इकाइयों की कुल संख्या 109.49 लाख थी, जिसमें 3.06 लाख करोड़ रुपये का कुल उत्पादन हुआ था तथा इस क्षेत्र ने लगभग 263.68 लाख लोगों को रोजगार दिया था। इसी वर्ष MSME का भारत के कुल निर्यात में योगदान लगभग 35% था। इसके बाद, लगातार वर्षों में इस क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

2006-07 तक इकाइयों की संख्या बढ़कर 128.44 लाख हो गई और उत्पादन 4.71 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच गया। 2011-12 में इकाइयों की संख्या में भारी वृद्धि हुई और यह लगभग 361.76 लाख तक पहुंच गई, उत्पादन बढ़कर लगभग 11.99 लाख करोड़ रुपये हो गया और 805.23 लाख लोगों को रोजगार मिला। साथ ही, निर्यात भी 6.37 लाख करोड़ रुपये रहा, जो कुल निर्यात का 42.4% था।

2016-17 तक यह वृद्धि और तेज हुई, जब इकाइयों की संख्या ~633.88 लाख (6.3 करोड़) के आसपास स्थिर हो गई, उत्पादन लगभग 21.57 लाख करोड़ रुपये तक पहुंचा, और 1.10 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार मिला। इस वर्ष निर्यात 8.44 लाख करोड़ रुपये रहा, जो कुल निर्यात का लगभग 49.8% था।

वर्ष 2020-21 और 2022-23 के बीच, MSME क्षेत्र ने आर्थिक मंदी, महामारी, और वैश्विक आपूर्ति शृंखला में अवरोध के बावजूद निरंतर विकास बनाए रखा। 2022-23 में उत्पादन 30 लाख करोड़ रुपये से अधिक रहा और रोजगार 1.25 करोड़ से अधिक लोगों तक पहुँचा। इस दौरान भारत के कुल निर्यात में MSME का हिस्सा लगभग 49.5% रहा, जो कि इस क्षेत्र के निर्यात संवर्धन में अहम भूमिका को दर्शाता है।

लघु उद्योग (MSME) क्षेत्र: वर्षवार अद्यतन आँकड़े (2002–03 से 2022–23)

वर्ष	कुल इकाइयाँ (लाख)	कुल उत्पादन (₹ करोड़, वर्तमान कीमतों पर)	वार्षिक उत्पादन वृद्धि दर (%)	रोजगार (लाख)	निर्यात (₹ करोड़)	निर्यात में MSME का हिस्सा (%)
2002-03	109.49	3,06,771	8.7%	263.68	86,013	~35%
2006-07	128.44	4,71,663	12.6%	312.52	N.A.	N.A.
2011-12	~361.76	~11,98,922	~16%	~805.23	6,37,000	42.4%
2016-17	~633.88	~21,57,619	10.5%	~1,106.10	8,44,000	49.8%
2020-21	~633.88 (फिक्स्ड)	~26,00,000*	~7.5%	~1,120	11,13,975	49.4%
2022-23	~633.88	30,00,000+	~8%	~1,250+	13,36,000	49.5%

तकनीकी और नीतिगत सुधारों के तहत, Udyam पोर्टल पर पंजीकरण प्रक्रिया को सरल किया गया है, जिससे 2023 तक लगभग 2.5 करोड़ MSME इकाइयाँ पंजीकृत हो चुकी हैं। GeM (Government e-Marketplace), TReDS (Trade Receivables Discounting System), डिजिटल पेमेंट और अन्य तकनीकी पहलों के कारण पारदर्शिता और वित्तीय पहुँच में सुधार हुआ है।

MSME क्षेत्र भारत की अर्थव्यवस्था का एक मजबूत स्तंभ बन चुका है, जो उत्पादन, रोजगार और निर्यात के क्षेत्र में निरंतर प्रगति कर रहा है और 'आत्मनिर्भर भारत' के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

10.4.2 रोजगार अवसरों का सृजन (Creation of employment opportunities)

भारत में कृषि के बाद लघु एवं कुटीर उद्योग रोजगार उपलब्ध कराने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र है। देश में व्याप्त गंभीर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए इस क्षेत्र का विकास अत्यंत आवश्यक हो जाता है। आंकड़ों से स्पष्ट है कि सन् 1972 से 1987-88 के बीच जहाँ कुछ औद्योगिक इकाइयों में रोजगार वृद्धि दर मात्र 2.21 प्रतिशत प्रति वर्ष रही, वहीं लघु इकाइयों में यह दर 5.45 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।

1994-95 में लघु उद्योगों में कार्यरत लोगों की संख्या लगभग 191.5 लाख थी, जो बढ़कर 2005-06 में 294.9 लाख हो गई। 31 मार्च, 2008 तक देश में कार्यरत 128.4 लाख सूक्ष्म और लघु उद्यमों के माध्यम से अनुमानतः 322 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त था।

विशेष बात यह है कि लघु उद्योगों में श्रमिकों की सघनता वृहद उद्योगों की तुलना में लगभग चार गुना अधिक आँकी गई है। जहाँ एक ओर शहरी क्षेत्रों में बड़े उद्योगों द्वारा व्यापक स्तर पर रोजगार उत्पन्न करने की संभावना सीमित दिखाई देती है, वहीं लघु उद्योगों में रोजगार सृजन की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं।

अतः यह क्षेत्र स्वरोजगार, महिला उद्यमिता और क्षेत्रीय संतुलित विकास को बढ़ावा देने का एक प्रभावी साधन सिद्ध हो सकता है।

10.4.3 निर्यात में योगदान (Contribution to exports)

लघु उद्योगों की बड़े पैमाने पर स्थापना के परिणामस्वरूप भारत की निर्यात आय में इस क्षेत्र का योगदान उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। विशेष रूप से सिले-सिलाए वस्त्र, डिब्बा बंद खाद्य सामग्री, खेलकूद का सामान, चमड़ा एवं चमड़ा उत्पाद, ऊनी वस्त्र, रसायन व सहायक पदार्थ, तथा इंजीनियरिंग वस्तुएं जैसे क्षेत्रों में लघु उद्योगों द्वारा किए गए निर्यात में तीव्र वृद्धि देखी गई है।

इस सकारात्मक विकास के फलस्वरूप, भारत के कुल निर्यात में लघु उद्योगों का योगदान 1971-72 में जहाँ मात्र 9.6 प्रतिशत था, वह बढ़कर 2006-07 में 33 प्रतिशत तक पहुँच गया। यह वृद्धि दर्शाती है कि लघु उद्योग क्षेत्र न केवल घरेलू रोजगार और उत्पादन में योगदान दे रहा है, बल्कि वैश्विक बाजारों में भी भारत की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति को सुदृढ़ कर रहा है।

10.4.4 लघु उद्योगों का अन्तर्राज्यीय वितरण (Inter-state distribution of small scale industries)

लघु उद्योगों के अन्तःराज्यीय वितरण से पता चलता है कि छः राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और गुजरात में लघु क्षेत्र की कुल इकाइयों का 59 प्रतिशत भाग स्थित था, इनके द्वारा कुल रोजगार का 62 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया, इसमें कुल अचल परिसम्पत्ति का 66 प्रतिशत लगा हुआ था और कुल उत्पादन का 69 प्रतिशत भाग उत्पन्न होता था।

वे राज्य जो लघु-स्तर के उद्योगों को प्रोत्साहित करने में बहुत पिछड़े हुए हैं, उनमें राजस्थान, मध्य प्रदेश और उड़ीसा शामिल हैं। कुछ जिलों में विशिष्टीकरण के कारण भी लघु-स्तर की इकाईयों में संकेन्द्रण जान पड़ता है।

ऊनी हौजरी की 92 प्रतिशत इकाइयाँ लुधियाना, कलकत्ता और दिल्ली में थी, साइकिलों के पुर्जों की 62 प्रतिशत इकाइयाँ लुधियाना, जालन्धर, हावड़ा, विशाल मुम्बई में थी।

10.4.5 राष्ट्रीय आय का समान वितरण (Equitable distribution of national income)

लघु एवं कुटीर उद्योगों के समर्थन में एक महत्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि उनकी सहायता से राष्ट्रीय आय का अधिक बेहतर व न्यायोचित वितरण हो सकता है। ऐसा दो कारणों से है एक तो लघु उद्योगों का स्वामित्व बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक विस्तृत व छितरा हुआ है तथा दूसरे, लघु उद्योगों की रोजगार सृजन की सामर्थ्य बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक है। घर व लाइडाल के अनुसार यह तर्क गलत है। उनके अनुसार लघु उद्योगों के श्रमिक प्रायः असंगठित होते हैं और अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए उद्योगपति इन श्रमिकों को कम मजदूरी देते हैं। भारत लघु उद्योगों में मजदूरी की दर बड़े उद्योगों में मजदूरी की दर से लगभग आधी है। इंग्लैड, अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथा भारत सभी देशों में लघु उद्योग आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। में परन्तु यह तर्क इस बात को अनदेखा करता है कि लघु उद्योगों में बड़े उद्योगों की तुलना में बहुत ज्यादा रोजगार सामर्थ्य है। इसलिए लघु उद्योग बहुत सारे लोगों को आर्थिक विकास के फल प्राप्त करने में सहायता करते हैं। इनकी अनुपस्थिति में ये लोग या तो बेरोजगार रहते हैं या फिर बहुत कम आय वाले रोजगार में लगे रहते हैं।

10.4.6 उद्योगों का क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण (Regional decentralisation of industries)

औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट होता है कि भारत में बड़े उद्योगों का केन्द्रीकरण मुख्यतः महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु और गुजरात जैसे विकसित राज्यों में हुआ है। इस प्रकार का

केन्द्रीकरण देश में औद्योगिक क्षेत्रीय असमानताओं को और भी गहरा कर रहा है। बड़े उद्योगों की अधिकता से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाव, भीड़भाड़, यातायात की अव्यवस्था और आवास जैसी समस्याएं तेजी से उभरने लगती हैं।

इसके विपरीत, लघु उद्योगों की स्थापना अक्सर स्थानीय मांगों को ध्यान में रखते हुए की जाती है, जिसके कारण इन्हें देश के लगभग सभी राज्यों में आसानी से स्थापित किया जा सकता है। लघु उद्योग केवल आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा नहीं देते, बल्कि वे किसी क्षेत्र की सामाजिक और आर्थिक संरचना में सकारात्मक बदलाव लाने की भी क्षमता रखते हैं। इसका उत्कृष्ट उदाहरण पंजाब की अर्थव्यवस्था है, जहाँ लघु औद्योगिक इकाइयों की संख्या और प्रभाव महाराष्ट्र जैसे औद्योगिक रूप से समृद्ध राज्य से भी अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि लघु उद्योग क्षेत्र क्षेत्रीय संतुलन और समावेशी विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

10.4.7 स्थानीय पूंजी और उद्यम का उपयोग (Utilizing local capital and enterprise)

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे अनेक संसाधन उपलब्ध हैं जिन्हें बड़े उद्योगों द्वारा उपयोग में नहीं लाया जाता या जिन तक उनकी पहुँच कठिन होती है। लघु उद्योग इन संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने में सक्षम होते हैं। उदाहरण के लिए, कस्बों और छोटे नगरों में उपलब्ध उद्यमशीलता को लघु उद्योगों के माध्यम से उत्पादक कार्यों में लगाया जा सकता है। इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों में की गई बचतें बड़ी औद्योगिक इकाइयों तक नहीं पहुँच पातीं, लेकिन इन बचतों का उपयोग स्थानीय स्तर पर लघु या कुटीर उद्योगों की स्थापना में किया जा सकता है।

स्वतंत्रता के पश्चात लघु उद्योगों की तीव्र वृद्धि इस तथ्य का प्रमाण है कि यदि बिजली, तकनीकी जानकारी और ऋण जैसी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवा दी जाएं, तो देश के अनेक निष्क्रिय संसाधनों को सक्रिय और उपयोगी बनाया जा सकता है। लघु उद्योग इस दृष्टिकोण से न केवल स्थानीय संसाधनों के दोहन का साधन हैं, बल्कि वे समावेशी और संतुलित आर्थिक विकास के लिए भी एक प्रभावी माध्यम सिद्ध होते हैं।

10.5.8 औद्योगिक विवादों का कम होना (Reduction of industrial disputes)

लघु उद्योगों के पक्ष में यह तर्क अक्सर दिया जाता है कि इन इकाइयों में बड़े उद्योगों की तुलना में श्रम विवाद अपेक्षाकृत कम होते हैं। ऐसा माना जाता है कि लघु उद्योगों में मालिक और श्रमिकों के बीच संबंध अधिक सौहार्दपूर्ण होते हैं, जिसके चलते हड़ताल, तालाबंदी जैसी स्थितियाँ कम उत्पन्न होती हैं और उत्पादन में व्यवधान भी न्यूनतम रहता है। इसके विपरीत, बड़े उद्योगों में श्रमिक और प्रबंधन के बीच मतभेद अधिक होते हैं, जिससे औद्योगिक अशांति और उत्पादन हानि की संभावना बढ़ जाती है।

हालांकि यह धारणा पूरी तरह सत्य नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था में चाहे इकाई बड़ी हो या छोटी, श्रमिकों के शोषण की संभावना बनी रहती है। फर्क केवल इतना होता है कि बड़े उद्योगों में श्रमिक संगठन (ट्रेड यूनियन) मजबूत होते हैं, जो शोषण और अन्याय के विरुद्ध संगठित रूप से आवाज उठाते हैं। वहीं, लघु उद्योगों में ट्रेड यूनियनों की उपस्थिति सीमित या नगण्य होती है, जिसके कारण श्रमिक प्रायः अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष नहीं कर पाते। इस स्थिति में श्रमिक और पूंजीपति के बीच संबंध ऊपर से शांतिपूर्ण प्रतीत होते हैं, लेकिन यह वास्तविकता को पूरी तरह परिलक्षित नहीं करता। अतः यह तर्क कि लघु उद्योगों में श्रम विवाद नहीं होते, वस्तुतः एक भ्रम पर आधारित है।

10.5 लघु उद्योगों के लिए सरकारी नीति (Government Policy for Small Scale Industries)

1991 से पहले भारत सरकार ने लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए संरक्षणवादी नीतियाँ अपनाई थीं, जैसे आरक्षित वस्तुओं की सूची, सस्ती वित्तीय सहायता, कर रियायतें व रियायती भूमि की व्यवस्था। 1991 की नई औद्योगिक नीति के तहत इन नीतियों में मौलिक परिवर्तन किए गए और प्रतिस्पर्धी माहौल तैयार करने पर बल दिया गया। तकनीकी उन्नयन योजनाओं को बढ़ावा दिया गया और आरक्षित सूची को धीरे-धीरे समाप्त किया गया। वर्ष 2000 में व्यापक नीति पैकेज लाया गया, जिसमें क्रेडिट गारंटी योजना, क्लस्टर विकास, SME एक्सचेंज, और PMEGP जैसी योजनाएँ शामिल थीं। बाद के वर्षों में Udyam पंजीकरण, CHAMPIONS पोर्टल, TReDS, और GeM जैसे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म शुरू किए गए। MSMED अधिनियम 2006 के तहत MSME की नई परिभाषा दी गई, जिसे 2020 में निवेश और टर्नओवर के आधार पर संशोधित किया गया। सरकार की नीति अब संरक्षक से अधिक प्रतिस्पर्धात्मक विकास की ओर केंद्रित है।

10.5.1 1991 से पहले की नीति (Policy before 1991)

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद भारत सरकार ने लघु और कुटीर उद्योगों के विकास के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। इनमें संगठनात्मक ढांचे का निर्माण, योजनाओं में बजटीय आवंटन में वृद्धि, उत्पादन और विपणन में सहायता, वित्तीय मदद, रियायतें और कर छूट जैसे उपाय शामिल थे।

वर्ष 1947 में भारत सरकार ने कुटीर उद्योग बोर्ड की स्थापना की, जिसे पहली पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत तीन अलग-अलग बोर्डों में विभाजित कर दिया गया। पहली योजना की समाप्ति तक देश में छह स्वतंत्र बोर्ड कार्य कर रहे थे, जो विभिन्न प्रकार के लघु और कुटीर उद्योगों को कवर करते थे। इन संस्थाओं के माध्यम से सरकार ने लघु उद्योगों के विकास और सहायता के लिए योजनाओं का संचालन किया।

देशभर में फैली इन संस्थाओं की शाखाओं का उद्देश्य लघु उद्योगों को तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना था। वर्ष 1954 में लघु उद्योग विकास निगम की स्थापना की गई, जो इस क्षेत्र की शीर्ष संस्था बन गई। इसका कार्य विभिन्न नीतियों का निर्माण करना और लघु उद्योगों की विभिन्न गतिविधियों के बीच समन्वय स्थापित करना था।

1955 में औद्योगिक बस्तियों के कार्यक्रम की शुरुआत की गई, जिसके तहत कारखानों की स्थापना हेतु बिजली, पानी, परिवहन जैसी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं। इसके बाद मई 1979 में 'जिला उद्योग केंद्र' (District Industries Centre - DIC) योजना की शुरुआत की गई। इस योजना का उद्देश्य प्रत्येक जिले में एक ऐसा समर्पित संस्थान स्थापित करना था, जो लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता, कच्चा माल, प्रशिक्षण, विपणन सुविधा आदि एक ही स्थान पर उपलब्ध कराए और बेरोजगार शिक्षित युवाओं को उद्यमिता की दिशा में प्रोत्साहित करे।

इस प्रकार, भारत सरकार ने लघु और कुटीर उद्योगों के व्यापक विकास के लिए एक संगठित और प्रभावी आधार तैयार किया।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड (National Small Industries Corporation Limited)

1955 में अपने अस्तित्व में आने से लेकर अब तक यह सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के लिए प्रोत्साहन सहायता एवं पोषण के अपने मिशन के लिए कार्य कर रहा है । निगम सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के बदलते परिदृष्य को पूरा करने के लिए समय समय पर विभिन्न नई योजनाएं प्रारम्भ करता रहा है जिनका उद्देश्य लघु उद्योगों के हितों को प्रोत्साहित करना है और उन्हें लाभदायक स्थितियों में रखना है।

10.5.2 नयी लघु औद्योगिक नीति 1991 (New Small Industrial Policy 1991)

1991 में भारत सरकार ने लघु, अति लघु और ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहित करने हेतु एक नई औद्योगिक नीति की घोषणा की, जिसका उद्देश्य इस क्षेत्र को आत्मनिर्भर, प्रतिस्पर्धी और टिकाऊ बनाना था। समय के साथ इस नीति को अद्यतन किया गया, और इसमें अनेक संरचनात्मक एवं संस्थागत सुधार जोड़े गए। इसके अद्यतन मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. अति लघु इकाइयों की परिभाषा में विस्तार और स्थानिक प्रतिबंधों की समाप्ति (Expansion of definition of micro units and removal of spatial restrictions)

नई नीति में अति लघु इकाइयों के लिए निवेश सीमा को 2 लाख से बढ़ाकर 5 लाख कर दिया गया था। साथ ही यह बाध्यता समाप्त कर दी गई कि ये इकाइयाँ केवल छोटे शहरों या गांवों (50,000 से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों) में ही स्थापित की जाएं। अब सेवा और व्यवसायिक क्षेत्रों को भी लघु उद्योग की परिभाषा में शामिल कर लिया गया है, जिससे उद्यमिता के नए अवसर खुल गए हैं।

2. अति लघु इकाइयों के लिए विशिष्ट सहायता पैकेज (Special assistance package for tiny units)

अति लघु इकाइयों के लिए तकनीकी सहायता, भूमि आवंटन, बिजली कनेक्शन और आधुनिकीकरण हेतु बार-बार समर्थन की व्यवस्था की गई, जिससे इन इकाइयों को तेजी से स्वावलंबी बनाया जा सके। यह नीति उन्हें भविष्य में सरकारी सहायता पर निर्भरता से मुक्त करने की दिशा में एक कदम था।

3. इक्विटी में साझेदारी और सहयोग का प्रावधान (Provision of partnership and collaboration in equity)

नीति के अनुसार, बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ अब लघु इकाइयों में 24% तक इक्विटी निवेश कर सकती हैं। इससे लघु उद्योगों को पूंजी जुटाने में आसानी हुई और बड़ी कंपनियों से तकनीकी एवं विपणन सहयोग भी प्राप्त होने लगा। इससे औद्योगिक क्षेत्र में बेहतर एकीकरण को बढ़ावा मिला।

4. सीमित साझेदारी का कानूनी प्रावधान (Legal provision of limited partnership)

व्यवसाय-संगठन के लिए "सीमित साझेदारी" (Limited Partnership) जैसी अवधारणा लागू की गई, जिसमें एक साझेदार का दायित्व असीमित जबकि अन्य साझेदारों का दायित्व उनकी निवेश की गई राशि तक ही सीमित रहता है। इससे पारिवारिक व मित्र पूंजी निवेश को प्रोत्साहन मिला।

5. अन्य सहायक उपाय (Other supportive measures)

- साख पर बल: 'सस्ती साख' से अधिक जोर 'पर्याप्त साख' की उपलब्धता पर दिया गया।
- राष्ट्रीय इक्विटी फंड और ऋण योजनाओं का विस्तार किया गया ताकि उद्यमियों को पूंजी सुलभ हो।
- सरकारी खरीद में प्राथमिकता: लघु और अति लघु इकाइयों के उत्पादों को सरकारी खरीद में प्राथमिकता देने की व्यवस्था की गई।
- घरेलू कच्चे माल का आवंटन: घरेलू कच्चे माल की आपूर्ति में लघु इकाइयों को प्राथमिकता मिली।
- बाजार सहायता: लघु उद्योगों के उत्पादों की ब्रांडिंग, विपणन और निर्यात में सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं की भूमिका को सशक्त किया गया।

6. अनारक्षण नीति (De-reservation Policy)

नौवीं पंचवर्षीय योजना से लघु उद्योगों के लिए आरक्षित वस्तुओं की सूची को क्रमशः कम किया गया। इस नीति का उद्देश्य लघु इकाइयों को प्रतिस्पर्धी और तकनीकी रूप से उन्नत बनाना था। हालांकि यह सुनिश्चित किया गया कि यह प्रक्रिया चरणबद्ध हो और कमजोर इकाइयों के लिए समर्थन बना रहे।

7. वित्तीय सशक्तिकरण पर जोर (Emphasis on financial empowerment)

यह स्वीकार किया गया कि लघु उद्योगों के सामने सबसे बड़ी समस्या साख (credit) की है। इसके समाधान हेतु
क्रेडिट गारंटी योजना (CGTMSE), TReDS (Trade Receivables Discounting System),UDYAM Registration,PMEGP (प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम)जैसी योजनाओं को लागू किया गया, जिससे ऋण की पहुंच बढ़ी और भुगतान चक्र तेज हुआ।

1991 की औद्योगिक नीति ने लघु उद्योगों को संरक्षण से प्रतिस्पर्धा की ओर अग्रसर किया। इस नीति के तहत तकनीकी उन्नयन, वित्तीय समावेशन, संस्थागत सहयोग और बाजार पहुँच को प्राथमिकता दी गई, जिससे MSME क्षेत्र भारतीय औद्योगिक विकास का एक मजबूत स्तंभ बनकर उभरा है।

10.5.3 व्यापक नीति पैकेज 2000 (Comprehensive Policy Package 2000)

प्रधानमंत्री द्वारा 30 अगस्त 2000 को लघु, अति लघु एवं कुटीर उद्योगों के सशक्तिकरण हेतु घोषित व्यापक नीति पैकेज में समय के साथ कई संशोधन व सुधार किए गए हैं, ताकि यह क्षेत्र प्रतिस्पर्धात्मक, आत्मनिर्भर और नवाचार उन्मुख बन सके। इस नीति और उसके अद्यतन स्वरूप को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

1. उत्पादन शुल्क में छूट सीमा में वृद्धि (Increase in the limit of exemption in excise duty)

पहले जहां लघु उद्योगों को 50 लाख तक उत्पादन पर कर से छूट प्राप्त थी, उसे बढ़ाकर 1 करोड़ कर दिया गया। इसके बाद 2005–06 में इसे 4 करोड़ तक बढ़ाया गया। यह सीमा लघु इकाइयों को बाजार में प्रतिस्पर्धी बनाए रखने और उनके दायरे को विस्तार देने में सहायक रही।

2. सेवा एवं व्यावसायिक इकाइयों के लिए निवेश सीमा में वृद्धि (Increase in investment limit for service and business units)

उद्योग से संबंधित सेवा और व्यवसायिक उद्यमों में निवेश की सीमा 5 लाख से बढ़ाकर 10 लाख की गई थी, जिसे बाद में MSMED अधिनियम 2006 के तहत और अधिक लचीलापन प्रदान किया गया। अब 2020 की परिभाषा के अनुसार, टर्नओवर के साथ-साथ निवेश सीमा भी श्रेणियों के अनुसार तय की गई है।

3. गुणवत्ता प्रमाणन (ISO 9000) के लिए सहायता (Support for Quality Certification (ISO 9000))

सरकार द्वारा ISO 9000/14001 जैसे गुणवत्ता प्रमाणीकरण प्राप्त करने के लिए MSMEs को 75,000 तक की वित्तीय सहायता दी जाती रही है, जो अब ZED (Zero Defect, Zero Effect) प्रमाणन योजना के अंतर्गत और अधिक विस्तृत रूप में उपलब्ध है।

4. कानूनी व नियामकीय सरलीकरण (Legal and regulatory simplification)

कानूनों और नियमों की पुनः समीक्षा के लिए कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में समिति गठित की गई, जिसका उद्देश्य अप्रचलित प्रावधानों को समाप्त करना और नियामकीय बोझ को कम करना था। UDYAM पोर्टल, Self-Certification, और Ease of Doing Business सुधार इसके परिणाम हैं।

5. जिला उद्योग केन्द्र (DIC) और समेकित विकास योजनाएं (District Industries Centre (DIC) and Integrated Development Plans)

Cluster Development Programme (CDP) और समेकित बुनियादी ढांचा विकास योजना को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया गया, जिसमें 50% भूखंड अति लघु उद्यमों के लिए आरक्षित किए गए, और 50% ग्रामीण क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई।

6. प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY) का विस्तार (Extension of Prime Minister's Employment Scheme (PMRY))

PMRY योजना के अंतर्गत परिवार की वार्षिक आय सीमा 24,000 तय की गई थी, जो अब विभिन्न योजनाओं जैसे PMEGP (प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम) में 1.5 लाख (ग्रामीण) एवं 2 लाख (शहरी) कर दी गई है।

7. साख गारंटी योजना (CGTMSE) (Credit Guarantee Scheme (CGTMSE))

लघु उद्योगों को बिना जमानत ऋण प्रदान करने हेतु Credit Guarantee Fund Trust for Micro and Small Enterprises (CGTMSE) की स्थापना की गई। यह योजना अब तक लाखों MSMEs को लाभ पहुँचा चुकी है और अब 5 करोड़ तक के ऋण को कवर करती है।

8. प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए सहायता (Assistance for technology upgradation)

Technology Upgradation Fund (TUF) व अन्य योजनाओं के अंतर्गत MSMEs को आधुनिक मशीनरी व तकनीक के लिए ऋण पर 15% पूंजी सब्सिडी दी जाती रही है। अब CLCSS (Credit Linked Capital Subsidy Scheme) और CHAMPIONS Portal जैसी पहलें तकनीकी सहायता के नए मंच प्रदान कर रही हैं।

9. बाजार विकास सहायता (Marketing Support)

MSMEs को GeM (Government e-Marketplace), MSME Mart, e-commerce प्लेटफॉर्म्स और Export Promotion Council for MSMEs के माध्यम से घरेलू व अंतरराष्ट्रीय बाजारों से जोड़ा गया है।

10. अनारक्षण की नीति और वर्तमान स्थिति (De-reservation policy and current status)

आरंभ में लघु उद्योगों के लिए 836 वस्तुएँ आरक्षित थीं, जो क्रमशः घटती गईं और अक्टूबर 2008 तक 21 रह गईं। वर्तमान में यह संख्या घटकर मात्र 14 उत्पादों तक सीमित है, जिनमें ब्रेड, मोमबत्ती, अगरबत्ती, फर्नीचर, पटाखे आदि शामिल हैं। यह कदम प्रतिस्पर्धा बढ़ाने, गुणवत्ता सुधार और निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए उठाया गया।

2000 के व्यापक नीति पैकेज ने MSME क्षेत्र को प्रोत्साहन देने की एक मजबूत नींव रखी। समय के साथ इसकी नीतियों में प्रतिस्पर्धात्मकता, नवाचार, डिजिटलीकरण, वित्तीय सुलभता और वैश्विक बाजार तक पहुंच को प्राथमिकता दी गई है। आज MSME भारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास का एक मजबूत स्तंभ बन चुका है।

10.5.4 सूक्ष्म लघु एवं मध्ययम उद्योग विकास अधिनियम 2006 (Micro Small and Medium Industries Development Act 2006)

वैश्वीकरण की चुनौतियों को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र की मदद करने के लिए सरकार ने विभिन्न उपाय किए हैं। इनमें प्रमुख हैं- सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006 । जिसका उद्देश्य प्रोत्साहन एवं विकास को सुविधाजनक बनाना है । यह अधिनियम 2 अक्टूबर 2006 से प्रभावी हुआ है। सरकार द्वारा

लघु एवं मध्यम दर्जे के उद्योग के लिए साख, चरण दर चरण विकास के लिए योजना पैकेज की घोषणा की गई जिसका उद्देश्य पाँच वर्षों की अवधि के अन्तर्गत साख के प्रवाह को दोगुना करना है ।
इस अधिनियम से उद्योगों की उपलब्धता तथा मध्यम स्तर के उद्योगों को परिभाषित करने का प्रयास किया गया उससे यह क्षेत्र और सशक्त होकर उभरा है अब इसकी परिधि में ज्यादा उद्योग आने लगे हैं और इस क्षेत्र में विकास के लिए अवसर और स्थान उपलब्ध हुए हैं।

10.6 लघु उद्योग की समस्यायें (Problems of small scale industries)

लघु उद्योगों, विशेष रूप से कुटीर और ग्राम उद्योगों की सबसे बड़ी चुनौती पूंजी एवं साख का अभाव है। इन इकाइयों का पूंजीगत आधार सामान्यतः बहुत कमजोर होता है क्योंकि इनका संचालन प्रायः एकल स्वामित्व या साझेदारी के आधार पर होता है। पारंपरिक कारीगर प्रायः अपनी सीमित पूंजी पर निर्भर रहते हैं या कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले महाजनों से ऋण प्राप्त करते हैं। इससे वे दोहरे शोषण का शिकार होते हैं एक ओर उन्हें कच्चे माल के लिए अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है और दूसरी ओर अपने उत्पादों के लिए उचित मूल्य नहीं मिल पाता।
हालांकि लघु औद्योगिक इकाइयों की स्थिति कुटीर उद्योगों से थोड़ी बेहतर होती है, फिर भी वे भी अपने लाभों का पुनर्निवेश कर पूंजी विस्तार करने में असमर्थ होती हैं। भारत सरकार ने इस समस्या को स्वीकार करते हुए बैंकों के राष्ट्रीयकरण, राज्य वित्त निगमों की स्थापना, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) की स्थापना जैसे कई उपाय किए हैं। बैंकों को यह निर्देश दिए गए हैं कि वे अपने कुल ऋणों का 40% प्राथमिकता वाले क्षेत्रों-जैसे कृषि, लघु और कुटीर उद्योग, लघु परिवहन चालक, लघु व्यवसाय आदि को उपलब्ध कराएँ।
हालांकि कागजों पर लक्ष्य प्राप्त कर लिए जाते हैं, लेकिन बैंकों की लघु उद्योगों को ऋण देने में अनिच्छा बनी हुई है। उनका तर्क है कि इन इकाइयों से ऋण की वसूली कठिन होती है और छोटी इकाइयों को ऋण देने की प्रशासनिक लागत अधिक होती है। सेबेस्टी मौथ्रस के अनुसार, रिज़र्व बैंक के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद बैंक अक्सर जमानत की मांग करते हैं, जिसकी बाज़ार कीमत प्रस्तावित ऋण राशि से कई गुना अधिक होती है, जिससे लघु उद्यमियों की पहुँच ऋण तक और सीमित हो जाती है।
अधिकांश कुटीर उद्योग स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्चे माल पर निर्भर रहते हैं। उदाहरणतः हथकरघा उद्योग सूत के लिए स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर है जो बुनकरों को कच्चा माल इस शर्त पर देते हैं कि वे तैयार कपड़ा उन्हीं को बेचें। इससे बुनकर दोहरे शोषण का शिकार होते हैं: उन्हें कच्चा माल महँगा खरीदना पड़ता है और तैयार माल सस्ते दाम पर बेचना पड़ता है।
पहले लघु उद्योगों में छोटी वस्तुओं का उत्पादन होता था जिनके लिए कच्चा माल सुलभ था। परंतु अब जब लघु उद्योगों में विविध एवं तकनीकी उत्पादों का निर्माण बढ़ा है, तो आयातित कच्चे माल पर निर्भरता भी बढ़ गई है। विदेशी मुद्रा संकट के समय इस तरह के कच्चे माल की अनुपलब्धता के कारण लघु उद्योगों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।
लघु उद्योग क्षेत्र में अस्वस्थ इकाइयों की संख्या लगातार चिंता का विषय रही है। 31 मार्च 2003 तक देश में 1,67,980 अस्वस्थ लघु इकाइयाँ थीं, जिनमें बैंकों का 5,706 करोड़ फंसा हुआ था। इनमें से अधिकांश इकाइयाँ (लगभग 97%) ऐसी थीं जिन्हें पुनर्जीवित करना संभव नहीं था। पुनर्जीवन योग्य इकाइयों का पुनर्वास अत्यधिक महंगा विकल्प होता है, जिसमें ऋण पुनर्गठन, ब्याज पर रियायतें, कार्यशील पूंजी की आपूर्ति, तकनीकी उन्नयन एवं आधुनिकीकरण हेतु अतिरिक्त सहायता शामिल होती है।

हाल के वर्षों में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम MSME (Micro, Small and Medium Enterprises) नीति के अंतर्गत ऋण समाधान योजना, Udyam Portal, जैसी पहलों ने समस्या को कुछ हद तक हल करने की कोशिश की है, किंतु जमीनी स्तर पर कार्यान्वयन में अभी भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

1991 के बाद आर्थिक सुधारों जैसे औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली की समाप्ति, आरक्षण नीति में कमी, विदेशी और घरेलू प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन, टैरिफ घटाना, और मात्रात्मक आयात प्रतिबंधों को समाप्त करना, इन सबका लघु उद्योगों पर मिश्रित प्रभाव पड़ा है।

विशेष रूप से चीन से आयातित सस्ते और गुणवत्तापूर्ण उत्पादों ने कई लघु उद्योगों के लिए संकट पैदा कर दिया है। उदाहरण के लिए, भारतीय खिलौना उद्योग, सिरेमिक टाइल्स, उपहार सामग्रियाँ, रेशम, और जूता उद्योग इन आयातों से सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। 2004-05 तक सिरेमिक उद्योग में चीनी आयातों की हिस्सेदारी 81% तक पहुँच गई थी और उपहार सिरेमिक क्षेत्र में भारतीय उत्पादकों का लगभग 80% बाज़ार समाप्त हो गया। हालांकि चीन की लागतें तुलनात्मक रूप से कम हैं, परन्तु यह तथ्य भी सामने आया है कि वह उत्पादों को डंपिंग मूल्य पर निर्यात करता है, जिससे स्थानीय उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मकता नष्ट होती है।

लघु और कुटीर उद्योगों की समस्याएँ बहुआयामी हैं पूंजी, साख, कच्चा माल, विपणन, तकनीकी उन्नयन और वैश्विक प्रतिस्पर्धा जैसी कई बाधाएँ इनकी प्रगति को सीमित करती हैं। सरकार द्वारा कई योजनाएँ लागू की गई हैं, परंतु इनका प्रभाव तभी सार्थक होगा जब नीति कार्यान्वयन को सशक्त, पारदर्शी और उद्यमियों के अनुकूल बनाया जाएगा। लघु उद्योग क्षेत्र को यदि सही दिशा में समर्थन मिले, तो यह भारत के रोजगार, नवाचार और निर्यात को नई ऊँचाइयाँ दे सकता है।

10.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. नई लघु औद्योगिक नीति 1991 का मुख्य उद्देश्य क्या था?

   A. सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण

   B. बड़े उद्योगों को संरक्षण देना

   C. लघु उद्योगों को प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए समर्थन देना

   D. केवल निर्यात बढ़ाना

2. नई लघु औद्योगिक नीति 1991 के अंतर्गत लघु उद्योगों के लिए किस प्रकार की सहायता का विशेष उल्लेख किया गया था?

   A. करों में वृद्धि

   B. लाइसेंस अनिवार्यता

   C. वित्तीय, तकनीकी और बौद्धिक संपदा सहायता

   D. केवल आयात प्रोत्साहन

3. 1991 की नई लघु औद्योगिक नीति के अंतर्गत लघु उद्योगों की परिभाषा किस आधार पर निर्धारित की गई?

   A. श्रमिकों की संख्या

B. व्यवसाय का प्रकार

C. निवेश की सीमा

D. टर्नओवर

4. नई लघु औद्योगिक नीति 1991 में कौन-सी संस्था को लघु उद्योगों के वित्तीय सहयोग के लिए विशेष रूप से मजबूत किया गया?

A. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया

B. भारतीय स्टेट बैंक

C. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI)

D. नाबार्ड

5. नई लघु औद्योगिक नीति 1991 के अंतर्गत लघु उद्योगों को किस क्षेत्र में आरक्षण की समीक्षा की बात कही गई थी?

A. शिक्षा

B. श्रम

C. उत्पादन वस्तुएँ

D. आयात

सत्य/असत्य-

1. लघु उद्योगों का योगदान भारत के कुल औद्योगिक उत्पादन में लगभग 40 प्रतिशत है।
2. लघु उद्योग केवल ग्रामीण क्षेत्रों में ही स्थापित किए जाते हैं।
3. लघु उद्योगों का विस्तार रोजगार सृजन में बड़ी भूमिका निभाता है।
4. लघु उद्योगों को किसी प्रकार की सरकारी सहायता प्राप्त नहीं होती है।

रिक्त स्थान भरिए –

1.लघु उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या __________ और __________ की कमी है।

2.अधिकांश कुटीर उद्योग __________ स्रोतों से कच्चे माल की आपूर्ति पर निर्भर करते हैं।

3.लघु उद्योगों को अक्सर __________ से सस्ते आयातित उत्पादों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

4.बैंक लघु उद्योगों को ऋण देने से बचते हैं क्योंकि उन्हें __________ में कठिनाई होती है।

5.अस्वस्थ लघु इकाइयों का पुनर्वास एक __________ विकल्प होता है, जिसमें अतिरिक्त वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

01. नई लघु औद्योगिक नीति 1991 को समझाइये ।

02. लघु उद्योगों के विकास के लिए व्यापक नीति पैकेज 2000 क्या है?

03. लघु उद्योगों की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए । 04. सूक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006 क्या है ?

10.8 सारांश (Summary)

इकाई के अध्ययन के पश्चात् जान गये हैं कि भारतीय औद्योगिक संरचना में लघु उद्योगों का विकास बहुत महत्व रखता है। श्रम शक्ति पर आधारित यह क्षेत्र बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उपलब्ध करता है और अधिक बेहतर ढंग से सम्पत्ति का समान वितरण के साथ साथ संतुलित क्षेत्रीय विकास को संवर्धन में भी समर्थ है । लघु उद्योग विकास को आगे बढ़ाने वाले इंजन है और बाजार की कमियों से उनका विकास प्रभावित होता है। इसलिए इस क्षेत्र के विकास के लिए सरकारी समर्थन अनिवार्य और उचित है। इस क्षेत्र को अधिकाधिक स्पर्धात्मक बनाना और घरेलू एवं विदेशी दोनों बाजारों में इसकी मौजूदगी बढ़ाने पर पूरा जोर दिया जाता रहा है। अपने प्रभावी प्रदर्शन के बाबजूद एम. एस. एम. ई. क्षेत्र को देश में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

10.9 शब्दावली (Glossary)

- **लघु, सूक्ष्म एवं मध्यम उद्यम (Micro, Small and Medium Enterprises) -** वे उद्योग जो निवेश और वार्षिक कारोबार के आधार पर छोटे पैमाने पर उत्पादन या सेवा प्रदान करते हैं।
- **एसएमई एक्सचेंज)SME Exchange)-** छोटे एवं मध्यम उद्योगों के लिए विशेष शेयर बाजार मंच, जहाँ वे सार्वजनिक निवेश से पूंजी जुटा सकते हैं।
- **ट्रेड रिसीवेबल्स डिस्काउंटिंग सिस्टम TReDS (Trade Receivables Discounting System)-** एक डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म जहाँ MSME अपने बकाया बिल/इनवॉइस को शीघ्र भुगतान हेतु वित्तीय संस्थानों को बेच सकते हैं।
- **गवर्नमेंट ई-मार्केटप्लेस GeM (Government e-Marketplace) -** सरकारी विभागों और संगठनों द्वारा ऑनलाइन सामान और सेवाएँ खरीदने का डिजिटल मंच।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. C. लघु उद्योगों को प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए समर्थन देना
2. C. वित्तीय, तकनीकी और बौद्धिक संपदा सहायता
3. C. निवेश की सीमा
4. C. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI)
5. C. उत्पादन वस्तुएँ

सत्य/असत्य-

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

रिक्त स्थान भरिए –

1. पूंजी, साख
2. स्थानीय
3. चीन
4. ऋण वसूली

5. महंगा

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Government of India, Economic Survey 2009-2010 (New Delhi, 2010) Dhar, P.N. and Lydall H. F., The Role oof Small Enterprises in Economic Development (New Delhi, 1961)
- SIDBI Report on Small Scale Industries Sector, 1999 Opcit PP. 28-92.
- Government of India, Planning Commission Eleventh Five Year Plan 2007-12 (Delhi 2008) Volume III.
- Gang Ira N. "Small Film in India, A Discussion of some Issue" in Mookherjee, Dilip India Industry Poliocies and Performance (New Delhi 1997

10.11 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- Dhar, P.K. (2020), Indian Economy: Its Growing Dimensions, Kalyani Publishers.
- Kumar, Nagesh (2003), Liberalisation, Foreign Direct Investment Flows and Development: Indian Experience in the 1990s, Economic and Political Weekly.
- Balasubramanyam, V.N. & Sapsford, David (2007), Does India Need a Second Generation of Economic Reforms?, Journal of International Development.
- Ghosh, Arunabha (2004), India's Industrial Policy and Performance: A Review, Oxford Development Studies.

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का क्या योगदान है ?
2. भारत में लघु उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन कीजिये।
3. लघु उद्योगों का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा भारत के आर्थिक विकास में इनके योगदान का विश्लेषण कीजिए।
4. भारत में लघु उद्योगों की प्रमुख समस्याओं की विवेचना कीजिए एवं उनके समाधान हेतु सरकार द्वारा किए गए प्रयासों का वर्णन कीजिए।
5. 1991 की नई लघु औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए एवं इसका लघु उद्योग क्षेत्र पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
6. भारत में लघु उद्योगों के विस्तार की संभावनाओं का विश्लेषण कीजिए। किन क्षेत्रों में इनके विकास की अधिक संभावना है स्पष्ट कीजिए।

इकाई 11 भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि (Globalisation and Indian Agriculture)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)
11.2 उद्देश्य (Objectives)
11.3 भूमण्डलीकरण (Globalisation)
11.4 भूमण्डलीकरण और भारतीय कृषि (Globalisation and IndianAgriculture)
11.4.1 भूमण्डलीकरण और हरित क्रान्ति का प्रभाव (Impact of globalisation and green revolution)
11.4.2 कृषि आयात एवं निर्यात (Agricultural Import and Export)
11.5 बहुराष्ट्रीय निगम तथा भारतीय कृषि (Multinational Corporations and Indian Agriculture)
11.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन तथा भारतीय कृषि (International Trade Organization and Indian Agriculture)
11.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
11.8 सारांश (Summary)
11.9 शब्दावली (Glossary)
11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
11.12 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
11.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह इग्यारहवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों केअध्ययन के बाद आप बता सकते है कि मुद्रा बाजार किसे कहते है तथा लोक वित्त संरचना क्या है ?
प्रस्तुत इकाई मे भूमण्डलीकरण नीति एवं कृषि पर इसके प्रभाव के बारे में विस्तार से लिखा गया है। अन्तराष्ट्रीय संगठन भारतीय कृषि को किस तरह से प्रभावित कर रहे है। इसका विश्लेषण किया गया है।
इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भूमण्डलीकरण को समझा सकेंगें तथा भूमण्डलीकरण का भारतीय कृषि पर क्या प्रभाव पड़ा इसका सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगें।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि:

- ✓ भूमण्डलीकरण को विस्तार से जान पायेंगे|
- ✓ भूमण्डलीकरण नीति का कृषि पर प्रभाव|
- ✓ बहुराष्ट्रीय निगम किस क्षेत्र में निवेश करना चाहती है और क्यों |
- ✓ विश्व व्यापार संगठन में गतिरोध का क्या |

11.3 भूमण्डलीकरण (Globalisation)

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि का अध्ययन करने से पहले यह समझना आवश्यक है कि भूमण्डलीकरण वास्तव में है क्या? भूमण्डलीकरण को 'विश्वव्यापीकरण' या 'वैश्वीकरण' के नाम से भी जाना जाता है। इसका मूल अर्थ है किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ इस प्रकार जोड़ना कि वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, तकनीक और श्रम का प्रवाह राष्ट्रीय सीमाओं से आगे बढ़ सके।

भारत वर्ष 1991 में एक गम्भीर आर्थिक संकट से गुजर रहा था। इस संकट से उबरने और देश की विकास दर को गति देने के उद्देश्य से सरकार ने आर्थिक सुधारों की एक श्रृंखला को अपनाया, जिसे 'नई आर्थिक नीति' या 'यू-टर्न नीति' कहा गया। इस नीति के तीन प्रमुख स्तंभ थे-

1. उदारीकरण
2. निजीकरण
3. भूमण्डलीकरण

इन तीनों घटकों ने मिलकर भारतीय अर्थव्यवस्था में एक नया युग आरंभ किया, जिसमें सरकारी नियंत्रणों को हटाकर अर्थव्यवस्था को अधिक खुलापन प्रदान किया गया।
भूमण्डलीकरण का उद्देश्य था देश की आन्तरिक आर्थिक गतिविधियों को वैश्विक स्तर पर विस्तारित करना। इसमें सरकार की भूमिका सीमित हो जाती है और मुक्त बाजार शक्तियों को बढ़ावा मिलता है। इस प्रक्रिया में सरकार की मैक्रो-आर्थिक नीतियों में हस्तक्षेप घटता है और वैश्विक आर्थिक प्रक्रियाओं का अधिक प्रभाव बढ़ता है।
हालाँकि, भूमण्डलीकरण के लाभ सभी देशों और सभी वर्गों को समान रूप से नहीं मिले। इसने 'उपभोक्तावादी संस्कृति' को बढ़ावा दिया और वैश्विक असमानताओं को गहरा किया। चीन, वियतनाम और ब्राज़ील जैसे कुछ देशों ने इससे आर्थिक अवसरों का लाभ उठाया और गरीबी में कमी लाई, परन्तु अधिकांश अर्द्ध-विकसित देशों के गरीब तबके इस लाभ से वंचित रह गए।

भूमण्डलीकरण का एक प्रमुख उद्देश्य पश्चिमी देशों के पूँजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए नये बाजारों की खोज और विस्तार रहा है। इसके चलते विश्व अर्थव्यवस्था को एकीकृत करने की दिशा में प्रयास तेज हुए, जो भूमण्डलीकरण की प्रमुख शक्ति बन गई।

अमेरिका के राष्ट्रपति 'रीगन' और यूनाइटेड किंगडम की प्रधानमंत्री 'थैचर' ने एक नए आर्थिक विचारधारा को जन्म दिया, जिसमें सरकार की भूमिका को घटाकर, निजीकरण और मुक्त व्यापार को बढ़ावा दिया गया। इस विचारधारा को 'वाशिंगटन सहमति (Washington Consensus)' के नाम से जाना गया।

वाशिंगटन सहमति का इतना प्रभाव रहा कि विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने अपनी ऋण नीति को इसी विचारधारा पर आधारित कर दिया और विकासशील देशों पर इसे एक शर्त के रूप में थोपा। इसके गंभीर परिणाम हुए,सरकारी खर्चों में कटौती की गई, खासकर स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों में कृषि और छोटे उद्योगों को मिलने वाला सहयोग घटा और सार्वजनिक सेवाओं का निजीकरण कर दिया गया।

इस नीति से जहाँ विकसित देशों को व्यापार और पूँजी प्रवाह में भारी लाभ हुआ, वहीं विकासशील देशों की गरीब जनता को इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़े। वैश्विक गरीबी और असमानता बढ़ी। इस स्थिति को देखते हुए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने 'सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (Millennium Development Goals)' को स्वीकार किया, जिनका उद्देश्य वैश्विक गरीबी को कम करना था।

हालाँकि, बाद में नव-उदारीकरण और वाशिंगटन सहमति को विकासशील देशों के लिए अनुपयुक्त माना गया, लेकिन इनकी जगह कोई ठोस वैकल्पिक विकास मॉडल नहीं प्रस्तुत किया गया।

भूमण्डलीकरण स्वयं में कोई संकट नहीं है, परंतु इसकी नीतियों के क्रियान्वयन और लाभ के वितरण में असमानता चिंता का विषय है। यदि अर्द्ध-विकसित देश 'सतत् विकास' का कोई सशक्त वैकल्पिक प्रारूप तैयार करें, तो वे भूमण्डलीकरण के लाभों को अधिक न्यायसंगत और समावेशी रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

11.4 भूमण्डलीकरण और भारतीय कृषि (Globalisation and IndianAgriculture)

प्राचीन काल से ही भारत में कृषि न केवल आजीविका का प्रमुख स्रोत रही है, बल्कि यह भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी भी मानी जाती है। यह क्षेत्र आज भी देश की बड़ी जनसंख्या को रोजगार और खाद्य सुरक्षा प्रदान करता है। 2023-24 के अद्यतन आँकड़ों के अनुसार, राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों का योगदान लगभग 18% है, जबकि लगभग 45% कार्यशील जनसंख्या आज भी कृषि पर निर्भर है।

भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश में, जहाँ 65-70 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं और इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है, वहाँ कृषि का विकास अत्यंत आवश्यक बन जाता है। कृषि केवल खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

कृषि विकास वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से तकनीकी, संस्थागत, संरचनात्मक और वाणिज्यिक बदलावों के जरिए कृषि और संबद्ध क्षेत्रों की उत्पादकता, लाभप्रदता और स्थायित्व में वृद्धि होती है। भूमण्डलीकरण इस प्रक्रिया को गति देने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है, बशर्ते नीति-निर्माण संतुलित और कृषक-हितैषी हो।

भूमण्डलीकरण के साथ भारत में कृषि ने यंत्रीकरण, फसल विविधीकरण, तकनीकी अपनाने और बाज़ारिकरण के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की है। आज किसान केवल मानसून पर निर्भर नहीं है। वह नहर, ट्यूबवेल, ड्रिप इरिगेशन और जल संचयन तकनीकों का उपयोग कर रहा है। PM-KISAN, ई-नाम, FPOs (Farmer Producer Organisations), जैसी सरकारी योजनाओं ने किसानों को संस्थागत समर्थन और डिजिटल बाजार तक पहुँच दिलाने का कार्य किया है।

यद्यपि प्रारंभ में कृषि यंत्रीकरण से बेरोजगारी बढ़ने का खतरा माना गया, परन्तु दीर्घकाल में यह कृषि को व्यावसायिक और नवोन्मेषी बनाता है। जैसे-जैसे कृषि लाभकारी होती है, किसान की आय बढ़ती है, जिससे पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है। इससे ग्रामोद्योग, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, भंडारण, परिवहन आदि क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।

भूमण्डलीकरण ने भारतीय किसानों के लिए विश्व के बाजार खोल दिए हैं। अब किसान कृषि उत्पादों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर बेच सकते हैं। देश में कृषि व्यापार को सशक्त करने के लिए कई राज्य सरकारों ने किसान बाजार, संविदा कृषि, ऑनलाइन मंडियाँ' और कृषक उत्पादक संगठन (FPOs) को बढ़ावा दिया है।

सुपरमार्केट, खुदरा श्रृंखलाएं और प्रोसेसिंग यूनिट्स ने शहरी मांग को बढ़ाया है, जिससे किसानों को सब्जी, फल, डेयरी और पोल्ट्री जैसे क्षेत्रों में विविधता लाने का प्रोत्साहन मिला है।

हालाँकि भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने कृषि को कुछ हद तक नई संभावनाएँ प्रदान की हैं, लेकिन नीतिगत उपेक्षा और अपर्याप्त निवेश के कारण यह क्षेत्र अपेक्षित विकास प्राप्त नहीं कर सका।

1990 के दशक में कृषि विकास दर जहाँ 4.7% थी, वहीं 2000 के दशक में यह घटकर 2% के आसपास पहुँच गई। 2020–21 में कोविड-19 महामारी के बावजूद कृषि क्षेत्र ने 3.6% की वृद्धि दर दर्ज की, जो इस बात का प्रमाण है कि संकट के समय भी कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान करती है। वहीं 2022–23 में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र की अनुमानित वृद्धि दर लगभग 3.3% रही है।

- मौजूदा चुनौतियाँ
- कृषि में निवेश की कमी
- बढ़ती जलवायु अस्थिरता और असमान वर्षा वितरण
- कृषि आय में क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताएँ
- बाजार की अनिश्चितता और न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) से जुड़ी चिंताएँ
- भूमि जोतों का क्षरण और सीमांत कृषकों की संख्या में वृद्धि

भूमण्डलीकरण अपने आप में कोई संकट नहीं है, बल्कि यह एक अवसर है जिसे यदि स्थानीय जरूरतों, कृषक समुदाय की भागीदारी, नीतिगत पारदर्शिता, और समावेशी विकास मॉडल के साथ जोड़ा जाए, तो यह भारतीय कृषि को सशक्त बना सकता है।

आज आवश्यकता है कि कृषि को केवल 'जीविका' नहीं, बल्कि 'व्यवसाय' के रूप में देखा जाए। तकनीक, बाजार, नीतियाँ और नवाचार इन सभी को मिलाकर ही भारत आत्मनिर्भर कृषि की ओर अग्रसर हो सकता है।

11.4.1 भूमण्डलीकरण और हरित क्रान्ति का प्रभाव (Impact of globalisation and green revolution)

भारत में हरित क्रान्ति का प्रभाव 1968 से हुआ डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन व नोरमोन ई. बोरलाग को हरित क्रान्ति का जनक माना जाता है, लेकिन इसका सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1968 में विलियम गाड द्वारा किया गया था। इसे आगत क्रान्ति (अर्थात् बीज, उर्वरक, सिंचाई) भी कहा जाता है। हरित क्रान्ति का अर्थ कृषि उत्पादन तकनीक सुधारने एवं कृषि उत्पादन मं वृद्धि करने से है। हरित क्रान्ति के फलस्वरुप गेहूँ और चावल की उत्पादकता और उत्पादन में जबरदस्त वृद्धि हुई। फलस्वरुप साठ और सत्तर के दशकों में खाद्यान्न के मामले में राष्ट्रीय स्तर पर आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सफलता मिली। इसके बाद भी पिछले दो दशकों से कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में कमी आई है | आंशिक रुप से यह नवाचार और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकीय विकास को ठीक तरह से नहीं अपनाने और आंशिक रुप से श्रम की उत्पादकता में आए धीमेपन के कारण हुआ है। नब्बे के दशक में कृषि का विकास पिछड़ गया। अर्थव्यवस्था में ग्रामीण-शहरी हिस्से के रूप में संरचनात्मक परिवर्तन धीमा हो गया और ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में असमानता बढ़ गयी। आप को आश्चर्य हो रहा होगा कि जिस हरित क्रान्ति ने खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता दी उसी ने असमानता भी फैलायी क्योंकि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि रासायनिक खादों का अधिक उपयोग करने से हुई थी जो आगे चलकर जैव विविधता को नुकसान पहुँचाई। इसके अलावा, विषैले कीट नाशकों के ज्यादा उपयोग के कारण पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर भी विपारीत प्रभाव पड़ रहा है। हरित क्रान्ति की प्रौद्योगिकीयों के कारण उत्पादकता में हुई वृद्धि से भूमि के मूल्य में काफी वृद्धि हुई, जिससे छोटी जोत वाले किसानों को खेती को बढ़ाने के लिए जमीन खरीदना मुश्किल हो गया।1980 के दशक के शुरु से ही सिंचाई पर सार्वजनिक निवेश कम होता गया। आर्थिक सुधारों के बाद से शुरु के दशक से कृषि जनित मुनाफे में 14.2 प्रतिशत की गिरावट आई। नब्बे के दशक का पूर्वाद्ध कृषि व्यवसाय के विस्फोटक विकास का युग था। निर्यात की तुलना में आयात में अधिक वृद्धि हुई। उत्तरार्द्ध में आयात में वृद्धि तो बनी रहीं, निर्यात चरमरा गया। भारतीय अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण के उपरान्त कृषि सकल घरेलू उत्पादन का वृद्धि दर 1981-82 और 1996-97 में 3.5 प्रतिशत था जो 1997-98 एवं 1104-05 में गिरकर मात्र 2 प्रतिशत रह गया जिसे तालिका 1 में दिखाया गया है।

तालिका 1 कृषि एवं संबन्धित क्षेत्र की वृद्धि दर (प्रतिशत प्रति वर्ष 1999-2000 की कीमत पर)

क्रम	अवधि / योजना	कुल कृषि एवं संबन्धित क्षेत्र	फसल क्षेत्र	पशुधन क्षेत्र
1.	हरित क्रांति पूर्व (1951-52 से 1967-68)	3.69%	2.54%	2.65%
2.	हरित क्रांति पश्चात (1968-69 से 1980-81)	3.52%	2.44%	2.72%
3.	आर्थिक सुधार अवधि (1991-92 से 1996-97)	5.69%	3.66%	3.68%
4.	IXवीं पंचवर्षीय योजना (1997-98 से 2001-02)	5.52%	2.50%	2.49%

5.	Xवीं पंचवर्षीय योजना (2002-03 से 2006-07)	7.77%	2.47%	2.51%
5.1	• प्रथम चरण (2002-03 से 2004-05	6.60%	0.89%	0.89%
5.2	• द्वितीय चरण (2005-06 से 2006-07)	9.51%	4.84%	4.96%

स्रोतः 11वीं पंचवर्षीय योजना 1107-12, vol. III, भारत सरकार

यह तालिका 1999-2000 की स्थिर कीमतों पर आधारित है।सकल घरेलू उत्पादन एवं संबंधित क्षेत्रों का वृद्धि दर नौवी एवं दसवीं पंचवर्षीय योजना के 4 प्रतिशत लक्ष्य से कम हैं । वास्तव में दसवीं पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्ष में औसत कृषि वृद्धि दर 1 प्रतिशत से भी कम हुई। हालाँकि अगले दो साल में में कृषि का औसत वृद्धि दर 4 प्रतिशत हो गई। 11वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि का औसत वार्षिक दर 4 प्रतिशत रखा गया है। स्पष्टतया आर्थिक सुधार एवं भूमण्डलीकरण के लाभ में कृषि क्षेत्र के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया तथा यह क्षेत्र प्रायः उपेक्षित रहा। हाँलाकि बजट में वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी जी ने पहली बार कृषि क्षेत्र पर समुचित ध्यान दिया है। इस बजट में कृषि कर्ज वितरण के लक्ष्य को एक लाख करोड़ रुपये बढ़ाकर पौने छः लाख करोड़ रुपये और नाबार्ड के लिए दस हजार करोड़ रुपये देने की घोषणा विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में कृषि की दशा सुधारने के लिए दूसरी हरित क्रान्ति योजना के तहत आवंटन चार सौ करोड़ रुपये बढ़ाकर एक हजार करोड़ रुपये किया जा रहा । इसके क्रियान्यवन से कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ गुणवत्ता में भी वृद्धि होगी ।

11.4.2 कृषि आयात एवं निर्यात (Agricultural Import and Export)

भारत के कृषि व्यापार में प्राथमिक और प्रसंस्कृत वस्तुएँ दोनों सम्मिलित होती हैं। कृषि निर्यात को सामान्यतः छह प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है:

1. व्यापारिक फसलें-इनमें प्रमुखत: प्याज़, लहसुन, तंबाकू, आलू, चावल, मूँगफली, कपास, ताजी सब्जियाँ और मसाले शामिल हैं। ये वस्तुएँ अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय कृषि निर्यात की रीढ़ मानी जाती हैं।

2. बगानी (बागवानी) फसलें-मुख्य रूप से चाय, कॉफी, रबर और छोटी इलायची को इसमें शामिल किया जाता है। ये उच्च मूल्य की निर्यात-उन्मुख फसलें हैं।

3. पशुजन्य उत्पाद- भेड़ और बकरी के मांस, अंडे, दूध और डेयरी उत्पाद इस वर्ग में आते हैं। हाल के वर्षों में भारत का बफेलो मीट निर्यात भी तेजी से बढ़ा है।

4. मछली एवं समुद्री उत्पाद- यह भारत के सबसे तेज़ी से बढ़ते हुए कृषि निर्यात क्षेत्रों में से एक है। झींगे, समुद्री मछलियाँ और अन्य जलीय उत्पाद प्रमुख निर्यात वस्तुएँ हैं।

5. बनोपज (वन उत्पाद) - इसमें चंदन, लाख, इमारती लकड़ी, बीड़ी की पत्तियाँ, गोंद, रेजिन तथा रेलवे स्लीपर इत्यादि शामिल हैं।

6. प्रसंस्कृत कृषि उत्पाद- इस वर्ग में मक्खन, घी, आम का रस, चीनी, खाद्य तेल, मूँगफली तेल, बिस्कुट और सिगरेट जैसी उत्पादित वस्तुएँ सम्मिलित हैं। इनका निर्यात मूल्यवर्धन का उदाहरण है।

कृषि व्यापार में वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of globalisation on agricultural trade)

हरित क्रांति के पूर्व भारत मुख्यत: खाद्यान्न आयातक देश था। परन्तु हरित क्रांति (1966 के बाद) के कारण तकनीकी परिवर्तन हुए जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई और भारत आत्मनिर्भर एवं कुछ मामलों में निर्यातक देश बन गया। हरित क्रांति के पश्चात भारत का ध्यान प्रसंस्कृत खाद्य वस्तुओं एवं माध्यमिक कृषि उत्पादों के उत्पादन और निर्यात पर केंद्रित हुआ।मशीनरी और उर्वरक जैसे कृषि इनपुट का आयात बढ़ा, जिससे तकनीकी उन्नयन तो हुआ, लेकिन विदेशी निर्भरता भी बढ़ी।

भूमण्डलीकरण और हरित क्रांति के बाद भारत ने कृषि निर्यात में उल्लेखनीय प्रगति की है। विशेषकर प्रसंस्कृत उत्पादों, समुद्री भोजन, पशु उत्पादोंऔर बगानी फसलों का निर्यात बढ़ा है। हालाँकि, तकनीकी संसाधनों की निर्भरता के कारण उर्वरकों, कृषि मशीनरी आदि का आयात भी बढ़ा है। नीति निर्माण में यदि निर्यातोन्मुख कृषि, उत्पादन विविधीकरण और प्रसंस्करण पर बल दिया जाए, तो भारत अपनी वैश्विक प्रतिस्पर्धा और कृषक आय दोनों में वृद्धि कर सकता है।

11.5 बहुराष्ट्रीय निगम तथा भारतीय कृषि (Multinational Corporations and Indian Agriculture)

भूमण्डलीकरण भारत की आर्थिक नीति का एक मुख्य अंग है। इस नीति के दो प्रमुख उद्देश्य है-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विदेशी पूँजी का निवेश, तथा
2. भारत के विदेशी व्यापार को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (World Trade Organisation)के नियमों के अनुसार नियमित करना ।

कृषि में विदेशी पूँजी के निवेश को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है-

1. कृषि उत्पादन की प्रक्रिया से पहले का चरण
2. फसलों के उत्पादन का चरण
3. फसलों की कटाई के पश्चात् का चरण

1. कृषि उत्पादन की प्रक्रिया से पहले का चरण (The pre-production stage of the agricultural process)

कृषि के आगतों का निर्माण और आधारभूत संरचना जैसे कि बिजली और सड़क की स्थापना एवं विकास की गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कृषि आगत उन सभी वस्तुओं और उपकरणों को कहा जाता है, जिनका उपयोग कृषि उत्पादन में किया जाता है। 1960-70 के दशक के बाद भारत में पारंपरिक कृषि व्यवहारों की जगह आधुनिक तकनीक और फार्म प्रणालियाँ अपनाई जाने लगीं।

जहाँ पारंपरिक कृषि प्रणाली मुख्यत देशी संसाधनों जैसे कि कार्बनिक खाद, साधारण हल, परंपरागत औजार, और बैल पर आधारित थी, वहीं आधुनिक कृषि में रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, उन्नत बीज, कृषि यंत्र, सिंचाई के विकसित साधन, और डीजल एवं विद्युत शक्ति का उपयोग किया जाता है।

हालाँकि, कृषि उत्पादन से पहले के इस चरण में बहुराष्ट्रीय कंपनियों (MNCs) द्वारा पूँजी निवेश की संभावना बहुत सीमित होती है। इसके पीछे निम्नलिखित कारण प्रमुख हैं:

(i) बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मुख्यतः लाभ कमाने की दृष्टि से कार्य करती हैं। किंतु बीज अनुसंधान जैसे क्षेत्र में लाभ की कोई निश्चितता नहीं होती, जिससे वे इस क्षेत्र में निवेश को लेकर हिचकिचाती हैं।

(ii) विदेशी कंपनियाँ बिजली और सड़क निर्माण जैसे क्षेत्रों में केवल कुछ सीमित स्थितियों में ही निवेश करती हैं। वे या तो स्वयं इन सुविधाओं का निर्माण करती हैं और फिर उन्हें एक निर्धारित अवधितक संचालित करती हैं, जिसमें उन्हें उपयोगकर्ताओं से टोल टैक्स (Toll Tax) एकत्रित करने की अनुमति दी जाती है।

इस प्रक्रिया को "बनाओ, चलाओ और जाओ" (Build, Operate & Transfer - BOT) मॉडल कहा जाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत एक निश्चित अवधि के बाद कंपनी द्वारा निर्मित सड़क या बिजली संयंत्र को सरकार या भारतीय संस्था को सौंप दिया जाता है। सरकार, पूर्व निर्धारित अनुबंध के आधार पर, कंपनी को उसकी लागत का मुआवजा देती है। अतः BOT मॉडल के अंतर्गत होने वाला निवेश, वास्तव में विदेशी पूँजी निवेश नहीं माना जाता, क्योंकि इसका अंतिम स्वामित्व और वित्तीय उत्तरदायित्व सरकार या देश की संस्थाओं के अधीन होता है।

2. फसलों के उत्पादन का चरण (crop production stage)

i. विदेशी पूँजी के निवेश की दृष्टि से फसलों के उत्पादन के लिए, विदेशी कम्पनियों की कोई भूमिका नहीं है, क्योंकि कृषि योग्य भूमि कृषि के अधीन आ चुकी है। ऐसी स्थिति में कृषि योग्य भूमि का बड़ा टुकड़ा खरीदना बहुत ही कठिन होगा ।

ii. विदेशी कम्पनियों को भारत में भूमि खरीदने की आज्ञा नहीं है । आप सभी को मालूम होगा कि फसलों के उत्पादन के पश्चात् फसलों की कटाई होती है तथा उत्पादन को बाजार में बेचा जाता है। तो अब हम आप को बताते है कि क्या विदेशी कम्पनी को फसलों की कटाई के पश्चात् पूँजी निवेश करने की कोई सम्भावना बन पाएगी? इसी को हम तीसरे और अन्तिम चरण में देखेंगे।

3. फसलों की कटाई के पश्चात् का चरण (Post harvest stage)

i. इस चरण में मुख्यतया कृषि उत्पादन को मण्डी में ले जाकर बेचना फसलों तथा सब्जियों के संसाधित (Processing) प्रक्रिया शामिल है। जिसे कृषि प्रसंस्करण (Agricultural Processing) कहते हैं । कृषि नीति के अन्तर्गत कृषि प्रसंस्करण उद्योग की विकसित करने का उद्देश्य रखा गया है। बहुराष्ट्रीय निगम कृषि प्रसंस्करण उद्योग (Agri-Processing Industry) में अपनी पूँजी का निवेश कर सकती है क्योंकि भारत सरकार, फलों तथा सब्जियों के संसाधित (Processing) उद्योगों के विकास को महत्व दे रही है। इसी वजह से इस उद्योग के विकास के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों की पूँजी को आकर्षित कर रही है। इसके निम्नलिखित कारण है ।

ii. कृषि प्रसंस्करण उद्योग रोजगार का सृजन करता है। भूमण्डलीकरण के दौरान भारत की जनता के खान-पान के सम्मिश्रण (consumption pattern) में विविधीकरण (diversification) हो रहा है। उसके खाने-पीने में दूध, मांस, सब्जियाँ तथा फसलों से बने उत्पादों का अनुपात बढ़ता जा रहा है। शहरों में महिलाओं की नौकरी करने की बढ़ती प्रवृत्ति तथा सरकार की वैश्वीकरण की नीति भी लोगों के खान-पान में विविधता ला रही है। फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करण से किसान एवं व्यापारियों को इन पदार्थों के गले सड़े से निजात मिली है।

iii. इससे नयी टैक्नीलाजी (प्रविधी) का विकास होगा ।

iv. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादन को बेचकर विदेशी मुद्रा की प्राप्यता में वृद्धि होगी।

v. विदेशी कम्पनियों के काम करने से कृषि सम्बन्धी उद्योगों का विकास होगा, जिससे आय में वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त उत्पादों की गुणवत्ता (quality) तथा प्रवीणता (efficieiency) में सुधार होगा।

11.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन तथा भारतीय कृषि (International Trade Organization and Indian Agriculture)

इससे पहले आपने देखा कि भूमण्डलीकरण के नीति का पालन करते हुए भारत सरकार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपने देश में पूँजी निवेश की छूट कृषि सहित सभी क्षेत्रों में दे रखी है। भूमण्डलीकरण का एक दूसरा पहलू भी है, क्या आप बता सकते है ? इसका दूसरा पहलू है- अन्य देशों की भिन्न-भिन्न उत्पादों को, देश में बिकने की खुली छूट देना ताकि भूमण्डलीकरण की नीतियों का सभी देश सामान रुप से लाभ उठा सकें। इसके अतिरिक्त आयात एवं निर्यात के बारे में न्याय संगत नियमों को बनाने तथा इन्हें कार्यरूप प्रदान करने के लिए अन्तराष्ट्रीय व्यापार संगठन (World Trade Organisation) को अस्तित्व में लाया गया।

विश्व में मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए सबसे पहला प्रत्यक्ष कदम 1947 में उठाया गया था, जब ब्रेटन वुड समझौते के फलस्वरुप 1947 में प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य करार गैट (General Agreement on Tariffs and Trade-GATT) की स्थापना की गयी। गैट को 1995 में समाप्त कर विश्व व्यापार संगठन में शामिल कर दिया गया और इसी वर्ष में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना को मंजूरी दे दी गई। उरुगवे दौर (Uruguay Round) के गैट विचार विमर्श 15 अप्रैल, 1994 को माराकेश (Marrakech) (मोरक्को) में समाप्त हो गये। यूरोपीय संघ देशों के अतिरिक्त भारत तथा 123 देशों के मंत्रियों ने अन्तिम विधि पर हस्ताक्षर किए जिसमें बहुपक्षीय व्यापार विमर्शों का आठवां दौर शामिल था। अंतिम एक्ट में निम्नलिखित विचार-विमर्श और नियम बनाये गये |

1. विश्व व्यापार संगठन समझौता, जिसमें इस संस्था की स्थापना और उसकी कार्य प्रणाली के नियम।

2. मंत्री स्तरीय निर्णय और घोषणाएँ - जिसमें महत्वपूर्ण समझौते, वस्तुओं, सेवाओं और बौद्धिक सम्पत्ति में व्यापार तथा बहुपार्शिवक (plurilateral) व्यापार सम्मिलित है।

3. इस नई व्यवस्था में 'गैट' में पहले से शामिल मुद्दों में पेटेंट, कृषि, निवेश, सेवाएँ आदि विषय भी जोड़ दिये गये। इसी व्यवस्था को विश्व व्यापार संगठन का नाम दिया गया। कहा गया कि यह नियम आधारित अन्तराष्ट्रीय व्यापार की व्यवस्था है।

4. इसमें झगड़ा निपटान संबंधी नियम और व्यापारिक नीति का पुनरावलोकन तंत्र भी शामिल है। वास्तव में विश्व व्यापार संगठन समझौता उरुगवे समझौता ही है । इन समझौतों का उद्देश्य कृषि व्यापार में मात्रात्मक प्रतिबंधों को प्रशुल्कों से प्रतिस्थापित करना, प्रशुल्कों में कमी करना और घरेलू कृषि व्यापार को अन्य देशों के कृषि निर्यातों के लिए खोलना है। विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता प्रावधान लागू होने से कृषि व्यापार नीति में उदारीकरण की एक नवीन व्यवस्था का सुत्रपात हुआ । हर दो साल बाद डब्ल्यू टी ओ (WTO) में मंत्री स्तरीय सम्मेलन का प्रावधान है । अभी तक विश्व व्यापार संगठन में छः मंत्रीस्तरीय सम्मेलन हो चुके है । सिएटल के तीसरे मंत्रीस्तरीय सम्मेलन के शुरु होते ही विरोध प्रदर्शनों ने हिंसक रूप ले लिया और अंततः सिएटल सम्मेलन को रद्द करना पड़ा। उसके बाद दोहा में मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में भारत सहित विभिन्न विकासशील देशों ने विश्व व्यापार संगठन के पूर्व में हुए समझौते के

दुष्प्रभावों पर खुलकर चर्चा करनी शुरु की। विकसित देशों की यह माँग थी कि व्यापार समझौतों में श्रम एवं पर्यावरण सरीखे मुद्दों को शामिल किया जाए। विकासशील देशों ने इन माँगों को स्वीकार तो नहीं किया, उन्होंने माँग भी की कि विकसित देश अपनी कृषि को दी जाने वाली परिदान (subsidy) कम करें, ताकि विकासशील देशों को अपने कृषि उत्पादों की विकसित देशों में बेचने का अवसर मिले और प्रतिस्पर्द्धा न्याय संगत हो ।हांगकांग सम्मेलन के बाद कोई मंत्रीस्तरीय सम्मेलन नहीं हो सका। इस बीच छोटे सम्मेलन अवश्य हुए परन्तु गतिरोध बना रहा, क्या आप बता पायेंगे कि क्यों गतिरोध बना हुआ है । आखिर क्या गतिरोध का कारण? दरअसल विकसित देशों के दबाव के कारण विकासशील देशों के पेटेंट कानूनों को बदल दिया गया। लेकिन विकसित देशों ने अपना वायदा नहीं निभाया। विकसित देशों अपनी कृषि परिदान (subsidy) घटाने के बजाय चार गुना बढ़ा दिया। इसके अलावा इन देशों ने अपनी तीन-चौथाई से भी अधिक परिदान (subsidy) को ग्रीन बाक्स में डाल दिया, जिसे कम करने की उन्हें कोई बाध्यता नहीं होगी। भारत समेत सभी विकासशील देशों में कृषि की बदहाली का मुख्य कारण विश्व व्यापार संगठन ही है। भारी सबसिडी के चलते सरसों, कपास के आयात उपज का सही मूल्य प्राप्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार, दालों और तिलहन का उत्पादन भी कम होता जा रहा है, क्योंकि सस्ते खाद्य तेल आयात हो रहे है। इन सबके चलते देश की खाद्य सुरक्षा खतरे में है । इन सबके अलावा विकसित देश अपनी कृषि सबसिडी घटाना तो दूर उल्टे यह मांग कर रहे है कि भारत सरीखे विकासशील देश कृषि वस्तुओं पर आयात शुल्क शुन्य कर दे, ताकि विकसित देश के कृषि उत्पादों को विकासशील देशों का बाजार मिल जाए । विश्व व्यापार संगठन अपने नियमों का पालन एवं निष्पक्ष होकर काम करे तो विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील देशों का भी विकास होता है। W.T.O. के स्थापित हो जाने के परिणामस्वरुप जहाँ एक ओर भारत के कृषि उत्पादों को अन्तराष्ट्रीय बाजार में बिकने का अवसर मिला है वहीं इनकी गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है । अर्थशास्त्रीयों का मानना है कि विश्व व्यापार संगठन की देख-रेख में किए जान वाले अन्तराष्ट्रीय व्यापार से भारत को लाभ पहुँचाने की संभावना

11.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. भूमण्डलीकरण नीति के प्रमुख उद्देश्य बताइए |
2. भूमण्डलीकरण से क्या तात्पर्य है?
3. यू-टर्न नीति क्या है?
4. बहुराष्ट्रीय निगम से आप क्या समझते है?
5. पिछले दो दशकों में कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में कमी के मुख्य कारण बताइए |

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. भूमण्डलीकरण की नीति का एक मुख्य उद्देश्य क्या है?

a) ग्रामीण रोजगार बढ़ाना

b) कृषि को आत्मनिर्भर बनाना

c) विदेशी पूँजी का विभिन्न क्षेत्रों में निवेश

d) घरेलू उत्पादन को सीमित करना

2. कृषि उत्पादन के पहले चरण में विदेशी पूँजी निवेश क्यों सीमित होता है?

a) सरकार रोक लगाती है

b) किसान विरोध करते हैं

c) लाभ की अनिश्चितता

d) प्राकृतिक आपदाएँ

3. BOT मॉडल का पूरा रूप क्या है?

a) Build, Operate and Terminate

b) Build, Organize and Transfer

c) Build, Operate and Transfer

d) Buy, Operate and Transfer

4. आधुनिक कृषि में इनमें से कौन-सा तत्व शामिल नहीं है?

a) कार्बनिक खाद

b) कृषि यंत्र

c) कीटनाशक

d) उन्नत बीज

रिक्त स्थान भरें -

1. कृषि आगतों में बीज, उर्वरक, कीटनाशक और ……………शामिल होते हैं।
2. पारंपरिक कृषि में मुख्यतः ……………खादों और बैलों का प्रयोग होता था।
3. BOT मॉडल में परियोजना का संचालन करने के बाद कंपनी उसे ……………को सौंप देती है।
4. भारत में 1960-70 के दशक के बाद कृषि में …………… तकनीक का प्रयोग शुरू हुआ।

सत्य / असत्य -

1. भूमण्डलीकरण का उद्देश्य केवल कृषि का विकास करना है।
2. बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कृषि उत्पादन के पश्चात् चरण में अधिक निवेश करती हैं।
3. पारंपरिक कृषि आधुनिक कृषि की तुलना में अधिक यंत्रीकृत होती है।
4. BOT मॉडल में विदेशी पूँजी का वास्तविक निवेश माना जाता है।

11.8 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि भूमण्डलीकरण को ही विश्वव्यापीकरण कहते हैं । भारत को 1992 की आर्थिक संकट से उबारने के लिए उदारीकरण निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की नीति अपनाई गयी। भूमण्डलीकरण के दौर में कृषि अब मानसून पर निर्भर नहीं है। कृषि में आधुनिक तकनीकी, उन्नतशील बीज का प्रयोग किया जा रहा है। आज सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है । इसके बावजूद भी कृषि क्षेत्र को भूमण्डलीकरण को उतना लाभ नहीं मिला है जितना कि औद्योगिक क्षेत्र को प्राप्त हुआ है। विश्व व्यापार संगठन में कृषि पर दी जाने वाली परिदान को लेकर अभी भी गतिरोध बना हुआ है। विकसित देशों ने परिदान घटाने के बजाय बढ़ा दिये तथा इसका तीन-चौथाई भाग ग्रीन बाक्स में डाल दिए है।

11.9 शब्दावली (Glossary)

- **भूमण्डलीकरण (Globalization):** विश्व के देशों के बीच वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, तकनीक और संस्कृति का परस्पर आदान-प्रदान एवं एकीकरण की प्रक्रिया।
- **फसल विविधीकरण (Crop Diversification):** कृषि में केवल एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती करने की प्रक्रिया।
- **उदारीकरण (Liberalisation):** अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ है- उद्योग एवं व्यापार संबन्धी आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता ।
- **निजीकरण (Privatization):** निजीकरण एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों के संचालन, स्वामित्व और नियंत्रण में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है ।
- **यू-टर्न (U-Turn):** यू-टर्न से आशय अपनाई गई नीतियों का पहले से अपनाई गई नीतियों से बिल्कुल विपरीत होना है।
- **तकनीकी परिवर्तन (Technological Changes):** हल व बैल के स्थान पर ट्रैक्टर तथा अन्य आधुनिक उपकरणों का प्रयोग ही तकनीकी परिवर्तन है ।
- **समावेशी विकास (Overall development):** समाज के सभी वर्गों का विकास या आर्थिक विकास व लाभ में समाज के सभी वर्गों की सहभागिता की समावेशी विकास कहते है । कृषि प्रसंस्करण: फसलों तथा सब्जियों के संसाधित प्रक्रिया को कृषि प्रसंस्करण कहते हैं ।
- **ग्रीन बाक्स (Green Box):** कृषि पर दी जाने वाली परिदान (subsidy) को ग्रीन बाक्स कहते हैं।

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. c) विदेशी पूँजी का विभिन्न क्षेत्रों में निवेश
2. c) लाभ की अनिश्चितता
3. c) Build, Operate and Transfer
4. a) कार्बनिक खाद

रिक्त स्थान भरें -

1. कृषि यंत्र
2. कार्बनिक
3. सरकार
4. आधुनिक

सत्य / असत्य -

1. असत्य
2. सत्य

3. असत्य
4. असत्य

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिन्हा, डॉ0 वी.सी. डॉ0 पुष्पा (1111-12), “अर्थशास्त्र ”, एस. बी. डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृ0 339
- पन्त, डॉ0 जे.सी.यमिश्रा, डॉ0 जे.पी., (1110), “भारतीय आर्थिक समस्याएँ”, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 266
- मिश्र, डॉ0 जे.पी., (1109), “कृषि अर्थशास्त्र ”, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० 518
- सोनी, आर. एन. (1108-09), “कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय ", विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, 0548
- त्रिपाठी, बद्री विशाल, “आर्थिक सुधार एवं कृषि व्यापार नीति ”, योजना वर्ष 50 अंक 5, अगस्त 1106, पृ0 35
- सुरेश चन्द्र, बाबू, “आर्थिक सुधारों के दौर में कृषि ", योजना वर्ष 50 अंक 5, अगस्त 1106, 9050
- आर्थिक समीक्षा (1111-12), भारत सरकार, पृ0 4,9,186
- शर्मा, देविदार (1112), “पहली बार कृषि क्षेत्र पर समुचित ध्यान ", दैनिक जागरण, वाराणसी, मार्च 17, पृ013

11.12 उपयोग पाठ्य सामग्री (Helpful text)

- भारतीय अर्थव्यवस्था (1109-10), एस. एस. पब्लिकेशन्स (समसामयिक घटनासार), इलाहाबाद
- शर्मा, ओ.पी. (1999), "भारत में नियोजित विकास और आर्थिक उदारीकरण आर. बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर
- पाल, राजेश (1109), “इण्डियन बैंकिंग एण्ड ग्लोबलाइजेशन ”, अध्ययन पब्लिशर्स, नयी दिल्ली

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भूमण्डलीकरण के दौरान कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाएँ?
2. हरित क्रान्ति से क्या आशय है? भूमण्डलीकरण के दौरान इसके प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
3. बहुराष्ट्रीय निगम के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए तथा ये किस क्षेत्र में निवेश करना चाहते है और क्यों? इसकी व्याख्या कीजिए।
4. विश्व व्यापार संगठन में गतिरोध का क्या कारण है? इसकी व्याख्या कीजिए।
5. भूमण्डलीकरण कृषि विकास को पुनिर्जिवित कर देश के त्वरित और दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। इसकी चर्चा कीजिए।

इकाई 12: विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन(Foreign trade and balance of payments)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)
12.2 उद्देश्य (Objectives)
12.3 विदेशी व्यापार का महत्त्व (Importance of foreign trade)
12.4 स्वतंत्रता के उपरान्त भारत का विदेशी व्यापार (India's foreign trade after independence)
12.5 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना या स्वरूप (Structure or pattern of India's foreign trade)
12.6 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा (Direction of India's foreign trade)
12.7 भुगतान संतुलन (balance of payments)
12.8 व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में अन्तर (Difference between balance of trade and balance of payments)
12.9क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है?(Is balance of payments always balanced?)
12.10 भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारण (Types and causes of imbalance in balance of payments)
12.11 प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के उपाय (Measures to overcome adverse balance of payments)
12.12 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
12.13 सारांश (Summary)
12.14 शब्दावली (Glossary)
12.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
12.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
12.17 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
12.18 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। इससे पहले की इकाई में आप भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि के बारे में ज्ञान प्राप्त किया ।

प्रस्तुत इकाई में विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन के बारे मे विस्तार से चर्चा किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद भारत के विदेशी व्यापार की संरचना और दिशा को समझा सकेंगें । इसके अतिरिक्त भुगतान संतुलन और व्यापार संतुलन में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगें तथा प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के उपाय बता सकेंगें।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेगे कि:

- ✓ विदेशी व्यापार क्या है|
- ✓ आयात एवं निर्यात की संरचना क्या होती है|
- ✓ चालू खाता एवं पूँजी खाता में क्या अन्तर है|
- ✓ भुगतान संतुलन में असाम्य के क्या कारण है |

12.3 विदेशी व्यापार का महत्त्व (Importance of foreign trade)

विदेशी व्यापार का अर्थ विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार करने से है। किसी देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्वपूर्ण स्थान होता है । विदेशी व्यापार का महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है।

1. प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग होता है।
2. आधिक्य या अधिशेष का निर्यात कर सकता है।
3. आधुनिक प्रविधि का आयात-निर्यात कर सकता है।
4. निर्मित व कच्चे माल का आयात व निर्यात कर सकता है।
5. निर्यात से भारत को विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।
6. विश्व के अन्य देशों के साथ आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों में सुधार होता है।

12.4 स्वतंत्रता के उपरान्त भारत का विदेशी व्यापार (India's foreign trade after independence)

स्वतंत्रता के पश्चात् नियोजित आर्थिक विकास हेतु किए गए प्रयासों के तारतम्य में देश के विदेशी व्यापार की मात्रा, निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की संख्या तथा उनकी गुणवत्ता में सुधार कर निर्यात को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया तथा आयात को नियंत्रित किया गया। भारत के विदेशी व्यापार एवं उसके बदलते स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाले आयात एवं निर्यात को निम्न सारिणी में प्रदर्शित किया जा सकता है:

भारत का विदेशी व्यापार (स्वतंत्रता के पश्चात): दशकीय सारांश(मूल्य: अरब रुपये में; व्यापार घाटा = आयात - निर्यात)

दशक (Decade)	निर्यात (Exports)	आयात (Imports)	कुल व्यापार (Total Trade)	व्यापार घाटा (Trade Deficit)
1950s	606	931	1,537	-325
1960s	2,639	3,648	6,287	-1,009
1970s	11,224	15,508	26,732	-4,284
1980s	60,974	80,905	1,41,879	-19,931
1990s	2,76,645	3,59,108	6,35,753	-82,463
2000s	32,46,186	53,45,302	85,91,488	-21,99,116
2010s	1,52,69,247	2,51,54,038	4,04,23,285	-98,84,791
2020s (2020–24)	~1,50,00,000+	~2,30,00,000+	~3,80,00,000+	~-80,00,000+

Source: Economic Survey of India (Various Years), Ministry of Finance, Government of India.

यह तालिका भारत के विदेशी व्यापार के सात दशकों से अधिक समय के रुझानों को दर्शाती है। 1950 के दशक में निर्यात मात्र 606 रूपए करोड़ और आयात ₹931 रूपए करोड़ थे, जिससे कुल व्यापार 1,537 रूपएकरोड़ हुआ और 325 रूपए करोड़ का घाटा सामने आया। 1960 के दशक में व्यापार बढ़कर 6,287 रूपए करोड़ तक पहुँचा, किंतु घाटा भी बढ़कर 1,009 रूपए करोड़ हो गया। 1970 के दशक में निर्यात व आयात क्रमशः 11,224 रूपए करोड़ और 15,508 रूपएकरोड़ रहे, जिससे कुल व्यापार 26,732 रूपए करोड़ और घाटा 4,284 रूपए करोड़ रहा। 1980 के दशक में व्यापार में तेज़ वृद्धि हुई और कुल व्यापार 1,41,879 रूपए करोड़ तक पहुँच गया, परंतु घाटा भी बढ़कर 19,931 रूपए करोड़ हो गया। 1990 के दशक में उदारीकरण की नीति के बाद निर्यात और आयात दोनों में भारी बढ़ोतरी हुई निर्यात 2,76,645 रूपए करोड़ और आयात 3,59,108 रूपए करोड़ जिससे कुल व्यापार 6,35,753 रूपए करोड़ हुआ और घाटा 82,463 रूपए करोड़ तक पहुँच गया। 2000 के दशक में वैश्विकरण के प्रभाव से व्यापार अभूतपूर्व स्तर पर बढ़कर 85,91,488 रूपए करोड़ हुआ, जिसमें घाटा भी 21,99,116 रूपए करोड़ तक बढ़ गया। 2010 के दशक में यह रुझान और तेज़ हुआ, कुल व्यापार 4,04,23,285 रूपए करोड़ तक पहुँच गया, लेकिन इसके साथ ही घाटा भी बढ़कर 98,84,791 रूपए करोड़ हो गया। 2020 के दशक (2020–24) के शुरुआती वर्षों में ही भारत का कुल व्यापार लगभग 3,80,00,000 रूपए करोड़ से अधिक हो चुका है और व्यापार घाटा भी लगभग 80,00,000 रूपए करोड़ से ऊपर बना हुआ है। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि समय के साथ भारत का विदेशी व्यापार तेजी से विस्तारित हुआ है, लेकिन निरंतर बढ़ता व्यापार घाटा देश की अर्थव्यवस्था के लिए चुनौती बना हुआ है।

12.5 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना या स्वरूप (Structure or pattern of India's foreign trade)

विदेशी व्यापार की संरचना से आशय वस्तुओं के आयात एवं निर्यात से है । वस्तुतः विदेशी व्यापार की संरचना का अर्थ है कि किस मात्रा में और किन-किन वस्तुओं का आयात अथवा निर्यात होता है । जिन वस्तुओं की पूर्ति हम विदेशों से करते हैं उसे आयात कहते है तथा जिन वस्तुओं की पूर्ति हम विदेशों को करते है उसे निर्यात कहते है। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के विदेशी व्यापार का स्वरूप औपनिवेशिक था। इस अवधि में भारत के विदेशी व्यापार संरचना की निम्नलिखित दो प्रमुख विशेषताएँ थी -

1. भारत के कच्चे माल का निर्यात होता था।
2. भारत निर्मित माल का आयात करता था।

नियोजन काल में भारत के विदेशी व्यापार की संरचना और दिशा में परिवर्तन आया है, जिसे सारणी 12.2 से स्पष्ट किया जा सकता है।

सारणी 12.2: भारत के विदेशी व्यापार की संरचना (मूल्य : रू0 करोड़में)

निर्यात – वस्तु समूह अनुसार,रू0 करोड़में

वित्तीय वर्ष	कृषि/खाद्य	अयस्क/खनिज*	मध्यवर्ती	विनिर्मित	ईंधन/खनिज	कुल
2018–19	40,000	20,000	85,000	2,05,000	55,000	4,05,000
2019–20	42,000	22,000	90,000	2,15,000	60,000	4,29,000
2020–21	38,000	18,000	88,000	2,00,000	52,000	3,96,000
2021–22	45,000	25,000	95,000	2,50,000	65,000	4,80,000
2022–23	48,000	30,000	1,05,000	3,10,000	75,000	5,68,000
2023–24	46,000	28,000	1,10,000	3,20,000	70,000	5,74,000

कोयला सम्मिलित नहीं, कोयला सहित ईंधन व खनिज समूह।
कुल निर्यात FY23–24 में ~USD 437.06 बिलियन (रू0 5.74 लाख करोड़)

आयात – वस्तु समूह अनुसार,(रू0 करोड़में)

वित्तीय वर्ष	खाद्य/कृषि	कच्चा माल	मध्यवर्ती/इनपुट्स	पूंजीगत	ईंधन/खनिज	कुल
2018–19	15,000	1,20,000	1,30,000	65,000	1,35,000	4,65,000
2019–20	16,000	1,30,000	1,40,000	70,000	1,40,000	5,00,000
2020–21	14,000	1,10,000	1,25,000	60,000	1,20,000	4,29,000
2021–22	18,000	1,40,000	1,50,000	75,000	1,45,000	5,28,000
2022–23	20,000	1,55,000	1,60,000	80,000	1,45,000	6,00,000
2023–24	19,000	1,50,000	1,65,000	85,000	1,55,000	6,77,000

कोयला सहित ईंधन व खनिज।
कुल आयात FY23–24 में ~USD 677.24 बिलियन (रू0 6.77 लाख करोड़)

- कृषि तथा खाद्य उत्पादों के निर्यात और आयात में स्थिरता बनी रही।
- मिडप्रॉडक्ट्स और इनपुट्स निर्यात/आयात में क्रमिक वृद्धि देखी गई, खासकर FY22–23 और FY23–24 में।
- विनिर्मित निर्यात में लगातार वृद्धि; FY23–24 में 3.2 लाख करोड़ तक पहुंचा।
- पूंजीगत वस्तुओं का आयात निवेश गतिविधियों के अनुरूप बढ़ा।
- ईंधन व खनिज में आयात 1.55 लाख करोड़ रहा; खनिज व ईंधन निर्यात 0.70 लाख करोड़ तक सीमित रहा।
- FY20 से FY24 तक, भारत का कुलनिर्यात 4.05 लाख करोड़ से 5.74 लाख करोड़तक औरआयात 4.65 लाख करोड़ से 6.77 लाख करोड़तक बढ़ा।
- विनिर्मित माल निर्यात व मिडप्रॉडक्ट्स व पूंजीगत वस्तुओं के आयात में विशेष रुझान देखा गया।
- कृषि व कच्चा माल भी निर्यात-आयात में स्थिर आधार पर शामिल हैं।

सारणी12.3: भारत के विदेशी व्यापार की संरचना (मूल्य : रू0 करोड़में) निर्यात की संरचना (प्रतिशत, FY APR–MAR)

वस्तु समूह	2018–19	2019–20	2020–21	2021–22	2022–23
कृषि एवं सम्बद्ध	~14 %	~13 %	~12 %	~14 %	~13 %
अयस्क एवं खनिज	~5 %	~5 %	~4 %	~5 %	~5 %
मध्यवर्ती वस्तुएँ	~21 %	~21 %	~22 %	~20 %	~18 %
विनिर्मित वस्तुएँ	~51 %	~52 %	~52 %	~50 %	~55 %
ईंधन/पेट्रोलियम उत्पाद	~9 %	~9 %	~10 %	~11 %	~9 %
कुल निर्यात	**100 %**	**100 %**	**100 %**	**100 %**	**100 %**

आयात की संरचना (प्रतिशत, FY APR–MAR)

वस्तु समूह	2018–19	2019–20	2020–21	2021–22	2022–23
खाद्य / कृषि उत्पाद	~3 %	~3 %	~3 %	~3 %	~3 %
कच्चा माल	~26 %	~26 %	~25 %	~27 %	~29 %
मध्यवर्ती वस्तुएँ	~28 %	~28 %	~29 %	~29 %	~27 %
पूंजीगत वस्तुएँ	~14 %	~14 %	~14 %	~14 %	~13 %
ईंधनखनिज (कोयला सहित)	~29 %	~29 %	~29 %	~27 %	~28 %

वस्तु समूह	2018–19	2019–20	2020–21	2021–22	2022–23
कुल आयात	100 %	100 %	100 %	100 %	100 %

2018–19 से 2022–23 तक भारत के कुल निर्यात में विभिन्न वस्तु समूहों का योगदान स्थिर रहा, लेकिन कुछ परिवर्तन देखने को मिले, निर्यात में इनका हिस्सा लगभग 12% से 14% के बीच बना रहा।अयस्क एवं खनिज का योगदान लगभग 4% से 5% तक स्थिर रहा।मध्यवर्ती वस्तुकी हिस्सेदारी 21% से घटकर 18% तक आ गई।विनिर्मित वस्तुएनिर्यात का सबसे बड़ा हिस्सा बनी रहीं, जो 51% से बढ़कर 55% तक पहुँचीं।ईंधन/पेट्रोलियम उत्पाद लगभग 9% से 11% तक के बीच रहा योगदान।

इससे स्पष्ट होता है कि भारत का निर्यात संरचना मुख्यतः विनिर्मित वस्तुओं पर आधारित रही है, जबकि कृषि, खनिज और ईंधन का योगदान सीमित पर स्थिर रहा।

2018-19 से 2022-23 तक भारत के कुल आयात में निम्नलिखित वस्तु समूह प्रमुख रहे:

खाद्य/कृषि उत्पाद लगभग 3% पर स्थिर।कच्चा माल 26% से बढ़कर 29% तक पहुँचा, जो उद्योगों की बढ़ती मांग को दर्शाता है। मध्यवर्ती वस्तुएँ लगभग 27% से 29% के बीच बनी रहीं।पूंजीगत वस्तुएँस्थिर रूप से 13%-14% के बीच रहीं।ईंधन खनिज (कोयला सहित) सबसे बड़ा हिस्सा रहा, लगभग 27%-29% के बीच।

इससे पता चलता है कि भारत का आयात मुख्यतः ईंधन खनिज और कच्चे माल पर आधारित है, जिससे घरेलू उत्पादन और ऊर्जा ज़रूरतों की पूर्ति होती है।

भारत के निर्यात में विनिर्मित वस्तुएँ प्रमुख हैं, जबकि आयात में ईंधन और कच्चा माल प्रमुख भूमिका निभाते हैं। यह संरचना भारत की औद्योगिक और ऊर्जा आवश्यकताओं को दर्शाती है।

12.6 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा (Direction of India's foreign trade)

भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों को सारणी 12.4 में दर्शाया गया है

भारत का विदेशी व्यापार – क्षेत्रवार विभाजन (शेयर आधारित)

क्षेत्र	2019–20 (निर्यात %)	2023–24 (निर्यात %)	2019–20 (आयात %)	2023–24 (आयात %)
यूरोप	~18 %	~16 %	~20.4 %	~18 %
उत्तर अमेरिका	~8 %	~7.6 %	~17.7 %	~18.7 %
लैटिन अमेरिका	~4.3 %	~4 % (approx.)	~4.8 %	~5 %

क्षेत्र	2019–20 (निर्यात %)	2023–24 (निर्यात %)	2019–20 (आयात %)	2023–24 (आयात %)
पूर्वी एशिया (चीन सहित)	~20 %	~20 –22 %	~14.8 %	~16 –17 %
ASEAN	~8.7 %	~10 %	~11 %	~12 %
West Asia & North Africa	~28 %	~26–27 %	~22.3 %	~16–17 %
दक्षिण एशिया	~0.6 %	~0.7–0.8 %	~4.5 %	~40 %*
CIS & Baltics	~1.9 %	~1.5–1.7 %	~1.1 %	~1–1.2 %
Africa (sub-regions)	~7.3 %	~9 % (approx.)	~6.6 %	~7 % (approx.)
अनिर्दिष्ट क्षेत्र	~1.8 %	~2 %	~2.1 %	~2 %

क्षेत्रीय रुझान (2019–24)

- **पूर्वी एशिया (चीन)**पर निर्भरता बनी हुई है: FY2024-25 में चीन के साथ व्यापार बाधा करीब $127.7% B, जिसमें आयात भारी (~$99.2 B घाटा)
- **संयुक्त राज्य अमेरिका**के साथ FY23-24 में संतुलित व्यापार: कुल व्यापार ~$161.8B, निर्यात ~$56.3 B, आयात ~$105.5B, व्यापार घाटा ~$49B .
- **MEA (West Asia/North Africa)**क्षेत्र की हिस्सेदारी निर्यात में स्थिर ~26-28%, आयात ~16-17%।
- **ASEAN**से निर्यात में बढ़ोतरी (~8.7-10%), आयात ~11-12%, जिससे व्यापार घाटा जारी।
- **यूरोप और उत्तर अमेरिका**में निर्यात कम, आयात अधिक; व्यापार संतुलन में नुकसान निश्चित।

1. **MEA क्षेत्र**निर्यात व आयात दोनों में अग्रणी, विशेषकर मध्य पूर्व तेल व्यापार के माध्यम से।
2. **चीन से आयात भारी**, जिससे भारत पर द्विपक्षीय व्यापार घाटा है।
3. **यूएस और यूरोपीय संघ**से आयात निर्यात से आगे, कन्टेनर व्यापार घाटा दिखा रहा।
4. **ASEAN**के साथ निर्भरता बढ़ी, लेकिन व्यापार घाटा बढ़ा।
5. **दक्षिण एशिया**की हिस्सेदारी निर्यात में न्यून (~1%) लेकिन आयात में अप्रत्याशित वृद्धि (~40%)।

12.7 भुगतान संतुलन (balance of payments)

भुगतान संतुलन से तात्पर्य किसी निश्चित अवधि (आम तौर पर एक वर्ष) के दौरान अन्य देशों के साथ किए गए सभी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन-देन के व्यवस्थित अभिलेख से है। इसमें केवल वस्तुओं के आयात और निर्यात ही नहीं, बल्कि पूँजी का आवागमन, ब्याज का भुगतान और प्राप्ति, जहाजरानी तथा पर्यटक सेवाएँ, विशेषज्ञों का आवागमन और अन्य अंतर्राष्ट्रीय सेवाएँ भी सम्मिलित होती हैं। भुगतान संतुलन में सभी आर्थिक लेन-देन और एकतरफा हस्तांतरण शामिल किए जाते हैं। इसे समझने के लिए भुगतान संतुलन की लेखाविधि का ज्ञान आवश्यक है, जिसमें प्रत्येक लेन-देन को दो पक्षों जमा (Credit) और देय (Debit) में दर्ज किया जाता है। यही कारण है कि भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है, अर्थात् जमा योग और देय योग बराबर होते हैं। किसी भी देश का भुगतान संतुलन यह दर्शाता है कि उसकी विदेशी विनिमय स्थिति क्या है और विदेशी मुद्रा की उपलब्धता अधिक है या कम। इसके माध्यम से देश के आयात-निर्यात की वास्तविक स्थिति का आकलन भी किया जा सकता है। भुगतान संतुलन के चार प्रमुख घटक होते हैं:

(1) चालू खाता (Current Account),

(2) पूँजी खाता (Capital Account),

(3) सरकारी भुगतान अथवा आधिकारिक रिज़र्व परिसंपत्ति खाता (Official Settlement Account), और

(4) अशुद्धियाँ एवं भूल-चूक (Errors & Omissions)।

1. चालू खाता: वास्तविक या आय सृजित करने वाले व्यवहारों को भुगतान संतुलन के चालू खाते में दिखाया जाता है। चालू खाता अल्पकालीन वास्तविक लेन-देन का लेखांकन होता है। चालू खाते के लेन-देन को वास्तविक लेन-देन का खाता कहा जाता है क्योंकि इसमें सम्मिलित की जाने वाली समस्त मदों का वास्तविक रूप में लेन-देन किया जाता है। इन मदों का अर्थव्यवस्था के आय, उत्पादन व रोजगार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मुख्य रूप से चालू खातों में प्रविष्ट मदें तीन प्रकार की होती है:

वस्तुओं का आयात एवं निर्यातः इसमें दृश्यों मदों को सम्मिलित किया जाता है।

- सेवाएँ: इसके अन्तर्गत अदृश्य मदें आती है ।
- उपहार या भेंट: इसे हस्तान्तरण भुगतान भी कहते हैं ।

चालू खाता को हम दो खातों में विभक्त कर सकते है -

व्यापार खाता या वस्तु खाता: इस खाते में दृश्य मदों के आयात और निर्यात को सम्मिलित किया जाता है।

अदृश्य खाता: इस खाते को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं (अ) सेवा खाता तथा (ब) एक पक्षीय हस्तान्तरण खाता (Unilateral transfer payment) |

2. पूँजी खाता: पूँजी खाते में वित्तीय व्यवहारों को दिखाया जाता है। इस प्रकार यह ऋणों और दायित्वों के भुगतान को प्रदर्शित करता है । इसमे वे सभी मदें दिखायी जाती है जो आयात तथा निर्यात की वित्तीय व्यवस्था से सम्बन्धित होती है । पूँजी लेखा या खाता ऋणों और निवेशों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह को दर्शाता है और देश की परिसम्पत्तियों (Assets) और देयताओं (Liabilities) हुए परिवर्तन को व्यक्त करता है । पूँजी खाते मे सभी लेन-देन मात्र वित्तीय अन्तरणों (Financial Transfer) से सम्बन्धित होते है । इसलिए देश के उत्पादन, आय व रोजगार पर कोई प्रभाव नही पड़ता। पूँजी खाते के अन्तर्गत विदेशों मे विनियोजित तथा विदेशों की स्वयं के देश में विनियोजित पूँजी खाते के दीर्घकालीन व अल्पकालीन विनियोग को अलग-अलग दिखाया जाता है। मे पूँजी खातों में चार प्रकार की प्रविष्टियाँ की जाती है -

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बद्ध भुगतान एवं प्राप्तियां

I. निजी खातों का शेष भुगतान

II. सरकारी खातों का शेष भुगतान

III. स्वर्ण का हस्तान्तरण

IV. सरकारी खातों का शेष भुगतान

पूँजी खाते का प्रमुख घटक निम्नलिखित है –

(1) विदेशी विनियोग: इसमें विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (Foreign Direct Investment) तथा पोर्टफोलियो विनियोग को सम्मिलित किया जाता है।

(2) ऋण: ऋण के अन्तर्गत वाणिज्यिक ऋण, वाह्य सहयोग के रूप में ऋण (borrowing as external assistance), तथा बैंकिग पूँजी व्यवहार (Banking capital transactions) इत्यादि सम्मिलित किए जाते है।

3. सरकारी व्यवस्थापन लेखा (Official Settlement Account): यह लेखा सामान्यतः वर्ष के दौरान देश की विदेशी सरकारी धारकों के पास तरल तथा अतरल देयताओं में परिवर्तन को और की सरकारी विदेशी विनिमय परिसम्पत्तियों में परिवर्तन को मापता है। सरकारी व्यवस्थापन लेखा का प्रयोग भुगतान संतुलन के घाटा एवं अधिक्य को मापने के प्रयोग में लाया जाता है। भुगतान संतुलन के सरकारी व्यवस्थापन लेखा में स्वर्ण निर्यात एवं आयात, परिवर्तनीय विदेशी मुद्रा का भुगतान एवं प्राप्तियाँ, एस. डी. आर. (विशेष आहरण अधिकार) का भुगतान एवं धारण और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में उसकी निवल स्थिति शामिल है।

4. अशुद्धियाँ और भूल-चूक (Error & Ommission): अशुद्धियां और भूलचूक संतुलन मद (Balancing item) है। यह रिजर्व और सम्बन्धित मदों के अन्तर के बराबर होती है तथा चालू खाता, पूँजी खाता और वित्तीय लेखा का योग है।

12.8 व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में अन्तर (Difference between balance of trade and balance of payments)

प्रायः व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में में अन्तर को निम्नलिखित सारणी 12.5 में स्पष्ट किया गया है

सारणी 12.5: व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में अंतर

क्र.सं.	अंतर का आधार	व्यापार संतुलन (Trade Balance)	भुगतान संतुलन (Balance of Payments)
1.	अर्थ	एक देश द्वारा एक निश्चित समय में किए गएनिर्यात और आयातके मूल्य का अंतर।	एक देश केसभी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन-देनका व्यवस्थित लेखा।
2.	विस्तार	यहभुगतान संतुलन का एक भागहोता है। केवल वस्तुओं के निर्यात-आयात को सम्मिलित करता	यहविस्तृत दस्तावेजहै जिसमें वस्तु, सेवा, पूंजी और निवेश लेन-देन शामिल

क्र.सं.	अंतर का आधार	व्यापार संतुलन (Trade Balance)	भुगतान संतुलन (Balance of Payments)
		है।	होते हैं।
3.	प्रमुख मदें	केवलवस्तुओंका निर्यात एवं आयात।	वस्तुएँ, सेवाएँ, निवेश, विदेशी सहायता, रेमिटेंस आदिसभी शामिल।
4.	संतुलन का प्रकार	सरप्लस (अनुकूल)याडेफिसिट (प्रतिकूल)हो सकता है।	चालू खाता व पूंजी खाता मिलाकरकुल संतुलनदर्शाता है।
5.	अनुकूल / प्रतिकूल	निर्यात>आयात =अनुकूल, निर्यात<आयात =प्रतिकूल।	चालू खाता + पूंजी खाता> 0 = सरप्लस, अन्यथाडेफिसिट।
6.	विश्लेषण का उपयोग	देश कीवस्तु व्यापार की स्थितिबताता है।	देश कीकुल अंतर्राष्ट्रीय भुगतान क्षमता और आर्थिक स्थितिका संकेतक।
7.	नीति निर्धारण में उपयोग	वाणिज्य नीति (टैरिफ, निर्यात प्रोत्साहन) हेतु उपयोगी।	विदेशी मुद्रा नीति, निवेश नीति, ब्याज दर नीतिआदि हेतु महत्त्वपूर्ण।
8.	अर्थव्यवस्था में भूमिका	अल्पावधि व्यापार स्थिति का संकेत।	समग्रविदेशी क्षेत्रीय लेनदेनका दर्पण, व्यापक नीति-निर्धारण हेतु आवश्यक।

व्यापार संतुलन केवल वस्तुओं के लेन-देन को दर्शाता है, जबकि भुगतान संतुलन एक व्यापक अवधारणा है जो समस्त अंतरराष्ट्रीय आर्थिक गतिविधियों को समाहित करता है। व्यापार संतुलन, भुगतान संतुलन का ही एक भाग है।

12.9 क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है? (Is balance of payments always balanced?)

अभी तक आप भुगतान संतुलन और व्यापर संतुलन में अन्तर स्पष्ट कर चुके है। आप अच्छी तरह से जान चुके है कि भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है क्योंकि भुगतान संतुलन दोहरा लेखा प्रणाली (Double entry book keeping) पर आधारित होता है । जिसके अनुसार प्रत्येक सौदे या व्यवहार (transactions) को जमा (Credit) एवं देय (Debit) दोनो ओर लिखा जाता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय 10,000 डालर का सामान किसी अमरीकी फर्म को बेचता है तो दोनो ही देशों के भुगतान संतुलन लेखों में इस सौदे की प्रविष्टि निम्नलिखित तरह से लिखा जाएगा:

भारत का भुगतान संतुलन खाता

जमा (Credit)	देय (Debit)
निर्यात (Exports) – \$10,000	पूँजी का बर्हिगमन (Capital Outflow) – \$10,000

अमेरिका का भुगतान संतुलन खाता

जमा (Credit)	देय (Debit)
पूँजी की प्राप्ति (Capital Inflow) – \$10,000	आयात (Imports) – \$10,000

भारत ने \$10,000 मूल्य का माल अमेरिका को निर्यात किया भारत के लिए यह जमा (Credit) है, जबकि उसी निर्यात के बदले भारत ने \$10,000 विदेश में निवेश किया या डॉलर बाहर भेजा यह भारत के लिएदेय (Debit) है।

अमेरिका के लिए \$10,000 मूल्य का आयात हुआ यह देय (Debit) है, और बदले में भारत सेपूँजी (Investment / Capital Inflow) प्राप्त हुई यह अमेरिका के लिए जमा (Credit) है।

भारत 10,000 डालर का सामान अमरीका को बेचता है अर्थात 10000 डालर का निर्यात करता है । वस्तुओं के निर्यात के इस राशि को भारत में जमा के रूप में तथा अमरीका में देय के रूप में लिया जाएगा क्योंकि भारत को निर्यात के बदले राशि प्राप्त करनी है। जबकि अमरीका को आयात के बदले उतनी ही राशि चुकानी है। इसके साथ ही दोनों देशों में इस सौदे की दो प्रविष्टियां होंगी। वस्तु का निर्यात भारत के पँजी का बर्हिगमन माना जाएगा इसलिए इसे भारत के भुगतान संतुलन में देय के रूप मे लिया जाएगा। इसके विपरीत, चूँकि इसका भुगतान अमरीका से प्राप्त होना है उस सीमा तक भारत की जमा राशि में भी वृद्धि हो जाएगी। इसी प्रकार अमरीका भारत से 10000 डालर का सामान प्राप्त कर रहा है। इसलिए यह राशि अमरिका के भुगतान संतुलन में देय के रूप में लिया जाएगा। परन्तु यह सौदा अमरीका के लिए पूँजी की प्राप्ति के रूप में भी है, इस सीमा तक पूँजी के रूप में इसे अमरीका के भुगतान संतुलन में जमा के रूप में लिखा जाएगा। इस प्रकार प्रत्येक सौदे से उत्पन्न जमा और देय की राशियाँ समान होने के कारण और दोहरे लेखा प्रणाली पर आधारित होने के कारण भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है।

"भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है " यह अर्थ है कि चालू खाता, पूँजीगत खाता और सरकारी व्यवस्थापन खाता का निवल जमा और देय शेषों का बीजगणितीय जोड़ अवश्य शून्य होना चाहिए। भुगतान संतुलन को आप सूत्र के द्वारा भी व्यक्त कर सकते है

BOP = Rf - Pf

जिसमें BOP भुगतान संतुलन है, Rf =विदेशों से प्राप्ति, व Pf = विदेशों को किया गया भुगतान प्रदर्शित करता है । जब BOP = Rf - Pf = 0 तो भुगतान संतुलन के संतुलित माना जाता है । जब BOP = Rf > Pf, अर्थात् यहाँ Rf, Pf से अधिक है। इसका मतलब यह है कि BOP अनुकूल है या BOP में अधिक्य है ।

जब (Rf < Pf) यहाँ पर Rf, Pf से कम है, अर्थात् ऐसी स्थिति में BOP में घाटा जायेगा। इसे प्रतिकूल भुगतान संतुलन कहा जाएगा।

12.10 भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारण (Types and causes of imbalance in balance of payments)

भुगतान संतुलन में असाम्य (असंतुलन) के प्रकार एवं कारणों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है।

1. चक्रीय असंतुलन (Cyclical Equilibrium)
2. दीर्घकालिक असंतुलन (Secular Equilibrium)
3. संरचनात्मक असंतुलन (Structural Equilibrium)
4. अस्थायी असंतुलन (Temporary Equilibrium)
5. मौलिक असंतुलन (Fundamental Equilibrium)
6. विनिमय दर में परिवर्तन (Change in Exchange Rate)
7. राष्ट्रीय आय में परिवर्तन (Change in National Income)
8. तीव्र प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect)
9. राजनीतिक स्थितियाँ (Political Condition)
10. आयात व निर्यात की माँग लोच (Elasticity of Export & Import)

1. चक्रीय असंतुलन (Cyclical Equilibrium): व्यापार चक्रीय उच्चावचनों के फलस्वरूप भुगतान संतुलन असंतुलन देखे जाते है। जब देश में मंदी होती है तो दूसरे देशों के साथ आयातों और निर्यातों की मात्रा में तीव्र गिरावट आती है । परन्तु घरेलु उत्पादनों में कमी से आयात की तुलना में निर्यात में बहुत ज्यादा कमी आ जाती है। इससे भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता है। भुगतान संतुलन में इस प्रकार के आने वाले असंतुलन को चक्रीय असंतुलन कहते हैं ।

2. दीर्घकालिक असंतुलन (Secular Equilibrium): दीर्घकालिक असंतुलन या चिरकालिक असंतुलन उस समय उत्पन्न होती है जब अर्थव्यवस्था विकास के एक चरण से दूसरे चरण में प्रविष्ट हो रही हो। दीर्घकालिक असाम्यता बहुत से घटकों के कारण उत्पन्न होती है जैसे पूँजी निर्माण, जनसंख्या में वृद्धि, उत्पादन प्रणाली में सुधार, बाजार का विस्तार, औद्योगिक परिवर्तन, व्यावसायिक संगठन में सुधार और साधनों की उपलब्ध मात्रा में परिवर्तन आदि । दीर्घकालिक भुगतान असंतुलन की उत्पत्ति देश में बचत एवं विनियोग में अन्तर के कारण होती है।

3. संरचनात्मक असंतुलन (Structural Equilibrium): संचनात्मक असंतुलन की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब किसी देश के भीतर या बाहरी किसी देश के कुछ क्षेत्रों में ऐसे परिवर्तन आ जाएं जो आयात और निर्यात की माँग एवं पूर्ति में मूलभूत परिवर्तन ला दे । आयात एवं निर्यात की माँग एवं पूर्ति में मूलभूत परिवर्तनों के कारण उत्पन्न असंतुलन को संचनात्मक परिवर्तन कहते है।

4. अस्थायी असंतुलन (Temporary Equilibrium): अल्पकालिक कारणों से उत्पन्न असंतुलन को अस्थायी या अल्पकालीन भुगतान असंतुलन कहते है । व्यापार के आकस्मिक परिवर्तन, मौसमी उतार-चढ़ाव, सूखे, बाढ़ या युद्ध की स्थिति लगातार रहने की अपेक्षा नहीं की जाती । यही कारण है कि इस प्रकार की स्थिति से उत्पन्न भुगतान असंतुलन को अस्थायी असंतुलन की संज्ञा दी जाती है ।

5. मौलिक असंतुलन (Fundamental Equilibrium): मौलिक असंतुलन को आधारभूत या स्थायी असंतुलन भी कहते है । जब भुगतान संतुलन में असंतुलन दीर्घकालीन और निरन्तर चलता रहता है तो इसे हम मौलिक चिरकालिक आधारभूत या स्थायी असंतुलन के नाम से पुकारते है । अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष के अनुसार, भुगतान संतुलन में मौलिक असंतुलन के कारण निम्नलिखित है:

i. देश एवं विश्व के अन्य देशों में उपभोक्ता रूची में परिवर्तन,

ii. विदेशी मुद्राकोष में निरन्तर कमी,

iii. अत्याधिक पूँजी का बहिर्गमन या पूँजी वाह्य प्रवाह,

iv. स्फीतिकारी दबाव तथा विश्व बाजार में प्रतियोगिता में कमी के कारण निर्यात में कमी।

आप ध्यान दें कि उपर्युक्त सभी बिन्दु भुगतान असंतुलन के प्रकार है तथा इसे आप भुगतान असंतुलन के कारणों में भी लिख सकते है ।

6. विनिमय दर में परिवर्तन (Change in Exchange Rate):घरेलू मुद्रा के अधिमूल्यन से विदेशी (overvaluation) से विदेशी वस्तुएँ सस्ती हो जाने के कारण आयात की मात्रा निर्यात की तुलना में अधिक हो जाती है, फलस्वरूप भुगतान संतुलन में घाटा उत्पन्न होता है ।

7. राष्ट्रीय आय में परिवर्तन (Change in National Income): पूर्ण रोजगार की स्थिति में देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर आयात में वृद्धि होगी। परिणामस्वरूप भुगतान संतुलन में घाटा उत्पन्न होगा ।

8. तीव्र प्रदर्शन प्रभाव: तीव्र प्रदर्शन प्रभाव के कारण देश के लोग विदेशी वस्तुओं की मांग अधिक करते है, जिसके कारण इन देशों में आयात की सीमान्त प्रवृत्ति बलवती होती है

9. राजनीतिक स्थितियाँ (Political Condition): जब कोई देश विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा हो तो उसे अधिक पूँजी, प्रविधि (Technology) इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, फलस्वरूप आयात में वृद्धि होती है जो भुगतान संतुलन में असंतुलन उत्पन्न करता I

10. आयात व निर्यात की माँग लोच (Elasticity of Export & Import): विकासशील देशों में सीमान्त आयात प्रवृत्ति विकसित देशों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है । इसके अतिरिक्त इन देशों में आयातित वस्तुओं की मूल्य माँग लोच भी कम होती है और विकसित देश इनके मूल्यों में वृद्धि कर दे तब भी आयात की मात्रा में आनुपातिक कमी नहीं हो पाती। इन्हीं सब कारणों से विकासशील देशों को प्रतिकूल भुगतान संतुलन का सामना करना पड़ता है । इन सब के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर विकास कार्यक्रम, विकसित देशों द्वारा लगाये गये आयात नियंत्रण, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अवसाद या मन्दी भी भुगतान संतुलन की असंतुलित या प्रतिकूल बनाते है ।

12.11 प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के उपाय (Measures to overcome adverse balance of payments)

प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के सम्बन्ध में सरकार अनेक प्रकार के प्रयास करती है । ये प्रयास मुख्यतः निर्यात की वृद्धि तथा आयात के प्रतिस्थापन या उसकी कटौती से सम्बन्धित होते हैं । प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के लिए गैर-मौद्रिक एवं मौद्रिक उपाय किए जाते है । गैर मौद्रिक उपाय के अन्तर्गत (क) तटकर या आयात प्रशुल्क (Tarrif), (ख) आयात अभ्यंश (Import Quota), (ग) आयात प्रतिस्थापन के उपाय तथा (घ) निर्यात संवर्धन के कार्यक्रम तथा नीतियाँ आती है। आयातित वस्तुओं पर तटकर या आयात शुल्क लगाकर उनके मूल्य को ऊँचा कर दिया जाता है जिससे आयातित वस्तुएँ मंहगी हो

जाती है फलस्वरूप आयात में कमी आती है । इसके अतिरिक्त आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। आयात अभ्यंश के अन्तर्गत प्रायः एक वर्ष के समय के दौरान मूल्य अथवा परिमाण में एक वस्तु को स्थिर मात्रा में देश के अन्दर आयात करने की आज्ञा दी जाती है जिससे आयात को नियंत्रित किया जा सके। आयात नियंत्रित करने के साथ-साथ सरकार निर्यात संवर्धन के लिए औद्योगिक मेले, व्यापारिक समझौते, निर्यात से सम्बन्धित छूटें, एवं निर्यात बीमा आदि की व्यवस्था करती है।

प्रतिकूल भुगतान संतुलन दूर करने के लिए सरकार गैर-मौद्रिक के अतिरिक्त मौद्रिक उपाय का भी प्रयोग करती है । मौद्रिक उपाय के अन्तर्गत अवमूल्यन, मौद्रिक संकुचन या अवस्फीति (Reflation) और विनिमय नियंत्रण आदि उपाय अपनाती है । अवमूल्यन तथा मूल्य ह्रास का सम्बन्ध मुद्रा के वाह्य मूल्य में कमी से होता है। इसके विपरीत, मुद्रा संकुचन की नीति का उद्देश्य आन्तरिक कीमत स्तर में कमी अर्थात् मुद्रा के आन्तरिक मूल्य में वृद्धि करना होता है, वस्तुओं की कीमतें कम हो जाने पर निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है तथा आयात हतोत्साहित है। इस प्रकार मुद्रा संकुचन व अवस्फीति द्वारा प्रतिकूल भुगतान संतुलन ठीक किया जा सकता है।

12.12 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघुउत्तरीय प्रश्न-

a) भुगतान संतुलन से क्या अभिप्राय हैं?
b) व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में क्या अन्तर है?
c) चालू खाता से आप क्या समझते है?
d) पूँजीगत वस्तु किसे कहते है?
e) हस्तान्तरण भुगतान किसे कहते है?
f) भुगतान संतुलन के मुख्य चार घटकों के नाम बताइये।

बहु विकल्पीय प्रश्न-

1. भुगतान संतुलन का कौन-सा खाता वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात-निर्यात को दर्ज करता है?

(a) पूँजी खाता

(b) चालू खाता

(c) सरकारी रिजर्व खाता

(d) त्रुटि एवं भूल-चूक खाता

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

(a) घरेलू उत्पादन बढ़ाना

(b) विदेशी मुद्रा अर्जित करना

(c) सांस्कृतिक आदान-प्रदान करना

(d) केवल आयात बढ़ाना

3. भुगतान संतुलन सदैव किस प्रकार होता है?

(a) घाटे में

(b) अधिशेष में

(c) संतुलित

(d) परिवर्तनीय

4. निम्न में से कौन-सा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ है?

(a) रोजगार सृजन

(b) प्रतिस्पर्धा में कमी

(c) तकनीकी पिछड़ापन

(d) विदेशी मुद्रा भंडार में कमी

रिक्त स्थान भरों-

1. भुगतान संतुलन के दो मुख्य खाते होते हैं…………….. और ……………...

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान …………….. के बीच होता है।

3. विदेशी मुद्रा की उपलब्धता और कमी का पता …………….. से चलता है।

4. भारत में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की निगरानी …………….. द्वारा की जाती है।

सत्य असत्य-

1. भुगतान संतुलन केवल वस्तुओं के आयात-निर्यात का लेखा है।

2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से देशों के बीच आर्थिक परस्पर निर्भरता बढ़ती है|

3. पूँजी खाता में विदेशी निवेश और ऋण सम्मिलित किए जाते हैं।

4. भुगतान संतुलन का जमा योग हमेशा देय योग से कम होता है।

12.13 सारांश (Summary)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके है कि किसी देश का विश्व के अन्य देशों के साथ किए गये व्यापार को विदेशी व्यापार कहते है । व्यापार अनुकूल है या प्रतिकूल, इसकी जानकारी के लिए ही आप भुगतान संतुलन बनाते है जिसमें चालू खाता, पूँजी खाता, सरकारी व्यवस्थापन खाता का अध्ययन करते है। भुगतान संतुलन में साम्य स्थापित रहता है क्यूंकि यह दोहरे लेखा प्रणाली पर आधारित होती है । चक्रीय परिवर्तन, दीर्घकालिक परिवर्तन, आधारभूत परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि एवं राष्ट्रीय आय में परिवर्तन भुगतान संतुलन को प्रतिकूल बनाता है । प्रतिकूल भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाने के लिए विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन किया जाता है इसके लिए सरकार मौद्रिक एवं गैर मौद्रिक नीतियाँ अपनाती हैं।

12.14 शब्दावली (Glossary)

- **विदेशी व्यापार (Foreign Trade)-** एक देश और दूसरे देश के बीच वस्तुओं व सेवाओं का आदान-प्रदान।
- **व्यापार घाटा (Trade Deficit) -** जब किसी देश के आयात उसकी निर्यात से अधिक हो जाते हैं।
- **निर्यात (Exports) -** देश के भीतर निर्मित वस्तुओं और सेवाओं को विदेशों में बेचना।
- **आयात (Imports)-** विदेशों से वस्तुओं और सेवाओं को खरीदकर देश में लाना।
- **भुगतान संतुलन लेखाविधि (Balance of Payments Accounting) -** विदेशों के साथ सभी आर्थिक लेन-देन का व्यवस्थित लेखा, जिसमें प्रत्येक लेन-देन को जमा और देय दोनों पक्षों में दर्ज किया जाता है।
- **हस्तान्तरण भुगतान (Transfer Payments) -** वे भुगतान जो बिना किसी प्रतिफल के किए जाते हैं, जैसे उपहार, अनुदान या सहायता।
- **दृश्य मदें(Visible Items) -** वह वस्तुएँ जो भौतिक रूप में व्यापार का हिस्सा होती हैं, जैसे– मशीनें, कपड़े, अनाज आदि।
- **अदृश्य मदें (Invisible Items) -** वे सेवाएँ और लेन-देन जो भौतिक रूप में दिखाई नहीं देते, जैसे– पर्यटन, बीमा, बैंकिंग और परिवहन सेवाएँ।
- **अधिमूल्यन (Overvaluation)-** अधिमूल्यन का अर्थ देश की मुद्रा के वाह्य मूल्य को अधिक करना है। इसके अन्तर्गत मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति में परिवर्तन नहीं किया जाता है।
- **विनिमय नियंत्रण (exchange control)-**विनिमय नियंत्रण से अभिप्राय विनिमय दर के स्तर को प्रभावित करने वाले सरकारी हस्तक्षेप से है ।

12.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहु विकल्पीय प्रश्न-

1. (b) चालू खाता
2. (b) विदेशी मुद्रा अर्जित करना
3. (c) संतुलित
4. (a)रोजगार सृजन

रिक्त स्थान भरों-

1. चालू खाता, पूँजी खाता

2. विभिन्न देशों

3. भुगतान संतुलन

4. भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI)

सत्य असत्य-

1. उत्तर: गलत

2. उत्तर: सही

3. उत्तर: सही

4. उत्तर: गलत

12.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- झिंगन, एम0एल0 (2005), “अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा० लि0, दिल्ली, पृ0 324-334.
- लाल, डॉ0 एस0 एन0 (2003), “अर्थशास्त्र मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोकवित्त”, शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, पृ0 200 207.
- लाल, डॉ0 एस0 एन0 (2010), “अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र", शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, पृ0 58-66.
- अग्रवाल, एस0 एस0; बरला, सी0एस0 (1998), “अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ”, लक्ष्मीनारायण
- अग्रवाल, आगरा, पृ0 147-168.

- मिश्र, डॉ0 जय प्रकाश (2009), “कृषि अर्थशास्त्र ” साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 446.
- सिन्हा, डॉ0 वी0सी0; डॉ0 पुष्पा (2011-12), “अर्थशास्त्र”, एस0बी0डी0 पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, पृ0 396, 405, 425.
- सेठी, डॉ0 टी0टी0 (2009-10), “अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र”, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 159.
- द टाइम्स आफ इण्डिया, 3 अप्रैल, 2012.

12.17 उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful text)

- पन्त, डॉ0 जे0 सी0; मिश्रा, डॉ0 जे0 पी0 (2011), "भारतीय आर्थिक समस्याएँ", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा.
- समसामयिक घटनासार (2009-10), “भारतीय अर्थव्यवस्था” एस० एस० पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद.

12.18 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भुगतान संतुलन की संरचना की व्याख्या कीजिए।
2. स्वतंत्रता के उपरान्त भारत के विदेशी व्यापार की चर्चा कीजिए।
3. क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है? इसकी व्याख्या कीजिए।
4. भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 13: उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector in the Era of Liberalisation)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)
13.2 उद्देश्य (Objectives)
13.3 उदारीकरण नीति: एक परिचय (Liberalisation Policy: An Introduction)
13.4 आर्थिक सुधार या नयी आर्थिक नीति की विशेषता(Features of economic reform or new economic policy)
13.5 सार्वजनिक क्षेत्र: आशय, उद्देश्य एवं विशेषताएँ (Public sector: meaning, objectives and characteristics)
13.6 उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान और महत्तव (Contribution and importance of public sector in the era of liberalization)
13.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एवं उपलब्धियाँ (Development and achievements of public sector)
13.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
13.9 सारांश (Summary)
13.10 शब्दावली (Glossary)
13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
13.13 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
13.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन किसे कहते आप भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारणों की व्याख्या कर सकते हैं ।

प्रस्तुत इकाई में उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान, निष्पादन एवं उसके उपलब्धियों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। सार्वजनिक उपक्रम के उद्देश्य निजी क्षेत्र के उद्देश्य से भिन्न होते हैं, इसके बारे में विस्तार से चर्चा किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि उदारीकरण की नीति क्यों और किस परिस्थितियों में अपनायी गयी। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास एवं उदारीकरण के दौर में इसकी सार्थकता को स्पष्ट कर सकेंगें ।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

- ✓ उदारीकरण से पूर्व और पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को समझना।
- ✓ उदारीकरण का सार्वजनिक उपक्रमों के कार्य-निष्पादन और संचालन पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
- ✓ वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा के युग में सार्वजनिक उपक्रमों के समक्ष आने वाली चुनौतियों का अध्ययन करना।
- ✓ रोजगार सृजन, आधारभूत संरचना विकास और आर्थिक संवृद्धि में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान का मूल्यांकन करना।
- ✓ उदारीकरण के दौरान सार्वजनिक उपक्रमों के लिए की गई नीतिगत सुधारों और पुनर्गठन उपायों का परीक्षण करना।
- ✓ उदारीकृत अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता, प्रासंगिकता और सीमाओं पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करना।

13.3 उदारीकरण नीति: एक परिचय (Liberalisation Policy: An Introduction)

भारत ने लगभग दो शताब्दियों तक ब्रिटिश साम्राज्य का शासन सहने के बाद 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वतंत्रता के समय भारत को एक अत्यंत पिछड़ी और अविकसित अर्थव्यवस्था विरासत में मिली थी। उस समय अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी, उद्योग सीमित थे और ढांचागत विकास लगभग न के बराबर था। ऐसे में यह समझना आवश्यक है कि स्वतंत्र भारत की सरकार ने आर्थिक विकास के लिए कौन-सी नीतियाँ अपनाईं और क्यों।

स्वतंत्रता के बाद सरकार ने सबसे पहले मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) की अवधारणा को अपनाया। मिश्रित अर्थव्यवस्था ऐसी व्यवस्था है जिसमें निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों मिलकर आर्थिक विकास और समाज के सभी वर्गों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। इसमें स्वतंत्र व्यापार और उद्यमिता की गुंजाइश रहती है, परंतु सरकार आवश्यकतानुसार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप और परोक्ष नियंत्रण भी करती है।

सरकार ने इस व्यवस्था को इसलिए चुना ताकि देश के संसाधनों और धन का समान वितरण हो सके तथा असमानता को बढ़ने से रोका जा सके। निजी क्षेत्र को उद्योग और व्यापार स्थापित करने की अनुमति दी गई, लेकिन उस पर कठोर नियंत्रण और प्रतिबंध लगाए गए, क्योंकि आशंका थी कि यदि निजी क्षेत्र को पूरी स्वतंत्रता दी गई तो संसाधन और संपत्ति कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के हाथों में सिमट जाएगी। दूसरी ओर, देश के महत्वपूर्ण उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत लाकर सरकार ने उन्हें अपने प्रबंधन और नियंत्रण में रखा।

स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विकास को गति देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश किया गया। उदाहरण के लिए, प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में सार्वजनिक क्षेत्र पर किया गया व्यय मात्र 81.1 रूपए करोड़ था, जो आगे बढ़ते-बढ़ते ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) में 36,44,718 रूपए करोड़ (2006-07 की कीमतों पर) तक पहुँच गया। यह आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्रता के बाद के दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ बना रहा।

हालाँकि, समय के साथ यह स्पष्ट हो गया कि केवल सार्वजनिक क्षेत्र और नियोजन आधारित मॉडल पर्याप्त नहीं है। आर्थिक असंतुलन, विदेशी मुद्रा संकट और धीमी विकास दर जैसी समस्याओं के कारण 1991 में भारत सरकार ने उदारीकरण (Liberalization), निजीकरण (Privatization) और वैश्वीकरण (Globalization) की नीतियाँ अपनाईं। इन नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय बाजार से जोड़ा, विदेशी निवेश आकर्षित किया और निजी क्षेत्र को अधिक स्वतंत्रता दी।

इस प्रकार, स्वतंत्रता के समय की पिछड़ी कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था से लेकर आज की वैश्विक स्तर पर उभरती हुई अर्थव्यवस्था तक भारत की यात्रा मिश्रित अर्थव्यवस्था और बाद में उदारीकरण की नीतियों के कारण संभव हुई।सरकार सार्वजनिक क्षेत्रों के विकास में निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहती थी:

■ गरीबी दूर करना आय और धन के वितरण में असमानता को कम करना

■ सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास, संवृद्धि

■ रोजगार का सृजन करना ।

सरकार की यह कठोर नीति अर्थव्यवस्था को औद्योगिक आधार दिया तथा इस दौरान औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर्ज भी हुई परन्तु अर्थव्यवस्था की दो समस्याएँ गरीबी और बेरोजगारी को पूरी तरह से कम नहीं कर पायी। इस नीति के दौरान ही हरित क्रान्ति का जन्म हुआ जिसके फलस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की। शिक्षण संस्थानों ने वैज्ञानिकों एवं कुशल कारीगरों को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप औद्यागीकरण को मजबूत आधार मिला एवं प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। यह तो इस कठोर नीति का सकारात्मक पहलू था। अब आप इसका नकारात्मक पहलू देखों जो उदारीकरण की नीति को जन्म दिया। 1965-1980 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्ण नियंत्रित अर्थव्यवस्था थी फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन के विकास दर में काफी गिरावट आयी। औद्योगिक उत्पादन का विकास दर इस अविध में मात्र 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहा जबकि 1950-65 में औद्योगिक उत्पादन का विकास दर 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन के विकास दर में गिरावट के निम्नलिखित कारण थे -

■ निजी क्षेत्र के कार्य संचालन पर कड़े प्रतिबन्ध, लाइसेन्स व्यवस्था, सरकार द्वारा बनाये गये नियम आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को कम करने में असफल हो गये,

■ सार्वजनिक क्षेत्र में लाल फीताशाही (red- tapism) भ्रष्टाचार, अकुशल प्रबन्धन एवं दक्षता की कमी,

■ अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र हानि में जाने लगे उदाहरणार्थ 1980-81 में सरकार ने केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रों में रुपया 18,207 करोड़ का निवेश किया था। ये लोक उपक्रम लाभ कमाना तो दूर ये रु.203 करोड़ की हानि दिखाने लगे,

■ जो संस्थाएं इनके नियमन के लिए बनायी गयी थी वे अब इनके विकास के लिए रूकावट बनने लगी ।

■ इन्हीं सब कारणों से आर्थिक व्यवस्था चरमरा गयी। आर्थिक सुधार महसूस किया जाने लगा। परन्तु आप यहाँ पर ध्यान दें कि उदारीकरण नीति मात्रा सार्वजनिक क्षेत्र के नकारात्मक प्रभाव के कारण नही बनायी गयी थी। इसके अतिरिक्त उदारीकरण नीति अपनाने के कारण निम्नलिखित थे-

1. 1990-91 में राजकोषीय घाटे में जबरदस्त वृद्धि हुई । राजकोषीय घाटा 1981-82 में सकल घरेलू उत्पादन का 5.4 प्रतिशत था जो 1990-91 में बढ़कर सकल घरेलू उत्पादन का 8.4 प्रतिशत हो गया ।

2. 1980-81 के बाद लगातार प्रतिकूल भुगतान संतुलन की स्थिति ने अर्थव्यवस्था को कमजोर बना दिया। उदाहरणार्थ 1980-81 में भुगतान शेष के चालू खाता में रु. 1314 करोड़ का घाटा दर्ज हुआ जो 1990-91 में बढ़कर रु.17367 करोड़ हो गया। इस घाटे को पूरा करने के लिए विदेशों से ऋण लेना पड़ा। 1980-81 में यह विदेशी ऋण सकल घरेलू उत्पादन का 12 प्रतिशत था जो बढ़कर 23 प्रतिशत हो गया। भारत सरकार को अरेबियन देश जैसे ईराक, इजराइल आदि से भारी मात्रा में विदेशी विनिमय प्राप्त होता था। 1990-91 में ईराक युद्ध के पश्चात् पेट्रोल की कीमत में तीव्र वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुँची ।

3. मुद्रा स्फीति में वृद्धि 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 16.7 प्रतिशत हो गयी ।

4. सार्वजनिक क्षेत्रों के निष्पादन में भारी मात्रा में हानि हुई ।

5. उदारीकरण नीति अपनाने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण विदेशी विनिमय मुद्रा कोष में जबरदस्त गिरावट थी। भारत के विदेशी विनिमय मुद्रा कोष में इतनी गिरावट आ गयी कि यह कोष 10 दिन के आयात बिल को भुगतान नहीं कर सकता था। 1990-91 मे विदेशी विनिमय कोष मात्रा रु. 6252 करोड़ रहा गया था जो कि 1986-87 में रु. 8159 करोड़ था। भारत की आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गयी कि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर को विदेशी ऋणों से मुक्ति पाने के लिए देश का सोना गिरवी रखना पड़ा। ऐसी स्थिति में सरकार को विवश होकर अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थानों द्वारा बनायी गयी उदारीकरण नीति को अपनाना पड़ा। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से डालर 1.8 बिलियन का जमानत ऋण मांगा जिसके बदले में कोष ने भारत से आर्थिक सुधार की माँग की। इसके जबाब में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंहा राव अपने वित्त मंत्री मनमोहन सिंह के निर्देशन में 1991 की आर्थिक उदारीकरण नीति की शुरूआत की ।

13.4 आर्थिक सुधार या नयी आर्थिक नीति की विशेषता (Features of economic reform or new economic policy)

आर्थिक सुधार इस मान्यता पर आधारित था कि बाजार की शक्तियाँ सरकार के विनियमन एवं कठोर नियंत्रण नीति की तुलना में अर्थव्यवस्था को अधिक गति प्रदान करेगी तथा प्रभावपूर्ण तरीके से मार्ग प्रशस्त करेगी। उदाहरणार्थ अल्पविकसित देश जैसे थाइलैण्ड, सिंगापुर, कोरिया इत्यादि उदारीकरण नीति के द्वारा ही तीव्र आर्थिक विकास हासिल किए। उदारीकरण नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. विनियमन एवं नियंत्रण नीति को ढीला करना: नीति की सबसे प्रमुख विशेषताएँ निजी क्षेत्र के विनियमन और नियंत्रण नीति में ढील देने से सम्बन्धित है। पुरानी नीति के अन्तर्गत निजी क्षेत्र के कार्य संचालन पर अनेक कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए थे । नई नीति के अन्तर्गत प्रतिबन्ध को हटाकर निजी क्षेत्रों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता दे दी गयी ।

2. औद्योगिक लाइसेंसिंग एवं पंजीकरण का उन्मूलन: 1991 की नई आर्थिक नीति में 6 प्रमुख उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योगों को कुछ सीमा तक लाइसेन्स से मुक्त कर दिया गया। वे छः उद्योग जिस पर लाइसेन्स अभी भी जरूरी है वे हैं- (1) शराब, (2) सिगरेट, (3) रक्षा से सम्बन्धित उपस्करों, (4) औद्योगिक विस्फोटक, (5) खतरनाक रासायनिक पदार्थ, और (6) दवाईयाँ आदि ।

उपर्युक्त 6 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों से लाइसेन्स व्यवस्था उठा ली गयी है । इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में नये उद्यमियों का प्रवेश आसान बन गया है।

3. औद्योगिक उत्पादन क्षमता सीमा: नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादन क्षमता की अधिकतम सीमा को हटा दिया गया है। पुरानी नीति के अन्तर्गत लाइसेन्स देते समय सरकार की ओर से क्षमता सृजन की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती थी जिसके ऊपर औद्योगिक इकाई अपना विस्तार नहीं कर सकती थी । क्षमता सृजन की उच्चतम सीमा को हटा देने से बड़े पैमाने के उत्पादन के विभिन्न लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं ।

4. छोटे उद्यमों की निवेश सीमा बढ़ा दी गयी: नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत छोटे उद्यमों की सीमा को बढ़ाकर रुपया 1 करोड़ कर दी गयी। देश में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रमों के सुदृढ़ विकास के लिए संसद द्वारा पारित सूक्ष्म लघु एवं मझोले उद्यम विकास अधिनियम 2005 को राष्ट्रपति के मंजूरी के पश्चात 2 अक्टूबर, 2006 से प्रभावी बना दिया गया है । इस अधिनियम के अन्तर्गत उद्योगों को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है:

- विनिर्माण उद्योग
- सेवा उद्योग

a. विनिर्माण उद्योग: विनिर्माण उद्योग के अन्तर्गत सूक्ष्म उद्योग में निवेश सीमा 25 लाख रुपये तक रखा गया है जबकि लघु उपक्रम में निवेश सीमा रु. 25 लाख से रुपया 5 करोड़ तक तथा मध्यम उपक्रम में निवेश सीमा रु.5 करोड़ से अधिक एवं रु.10 करोड़ तक का निवेश सीमा रखा गया है।

b. सेवा उद्योग: सेवा उद्योग के अन्तर्गत सूक्ष्म उपक्रम में रुपया 10 लाख तक का निवेश, लघु उपक्रम में निवेश सीमा रुपया 10 लाख से लेकर रुपया 2 करोड़ तक तथा मध्यम उपक्रम में रुपया 2 करोड़ से लेकर रुपया 5 करोड़ तक का निवेश सीमा रखा गया है।

5. उत्पादकों को उत्पादन चयन के सम्बन्ध में छूट: लाइसेन्स राज में केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन होता था जिनके लिए लाइसेन्स प्राप्त था। उदारीकरण के दौर में अब उत्पादक बाजार में माँग के आधार पर वस्तु का उत्पादन करने के लिए स्वतंत्र है।

6. पूँजीगत वस्तुओं एवं तकनीक का आयात करने की स्वतंत्रता: उदारीकरण नीति के अन्तर्गत भारतीय उद्योग अपने उद्योगों को आधुनिक एवं विस्तार करने के लिए विदेश से कच्चा माल एवं आधुनिक तकनीक का आयात कर सकते हैं।

7. ब्याज दर निर्धारण करने की स्वतंत्रता: ब्याज दर निर्धारण के लिए बैंकों को अब केन्द्रीय बैंक भारतीय रिजर्व बैंक पर निर्भर नहीं है । अब सभी बैंक ब्याज दर निर्धारण करने के लिए स्वतंत्रता है ।

8. अर्थव्यवस्था को खुला रूप प्रदान किया गया: अर्थव्यवस्था में आयात एवं निर्यात को अधिक सरल एवं सुविधाजनक बनाया गया है । अधिकांश आयातों पर से मात्रागत प्रतिबन्ध हटा लिया गया है जैसे कि आयात कोटा आदि। अब आयात विनियमन के लिए प्रशुल्क और वित्तीय उपकरणों का अधिक सहारा लिया

जाता है । विदेशी उद्यमियों को निवेश, व्यापार और तकनीक के क्षेत्रों में आकर्षित करने के लिए अनेक उदारपूर्ण सुविधाओं की व्यवस्था की गयी है ।

9. निजी क्षेत्र का विस्तार: पहली बार सातवीं पंचवर्षीय योजना (अप्रैल 1, 1985- मार्च, 31, 1990) में निजी क्षेत्र के औद्योगिक निवेश में जहाँ 100 प्रतिशत से भी अधिक वृद्वि की गयी, वहाँ यह वृद्धि सार्वजनिक क्षेत्र के लिए केवल 50 प्रतिशत ही थी। अनेक आर्थिक गतिविधियाँ या कार्यकलाप जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित थे, अब वे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए हैं। यही नहीं बल्कि अनेक सार्वजनिक उद्यम, विशेष रूप से ऐसे उद्यम जो कुशल ढंग से नहीं चल पा रहे हैं, निजी क्षेत्र को सौंपे जाने लगे हैं। विदेशी कम्पनियों के साथ किए जाने वाले सहयोग समझौतों के सम्बन्ध में नियमों को काफी ढीला और उदार बना दिया गया है ।

10. अधिक बाजार-अभिमुखीकरणः जैसा कि आपको पहले ही बता दिया गया है कि उदारीकरण नीति बाजार तंत्र की कुशलता की मान्यता पर आधारित है। नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को लाइसेन्स व्यवस्था, कोटा प्रणाली एवं परमिट से मुक्त करने एवं वित्तीय उपकरणों जैसे प्रशुल्क आदि की अधिक प्रमुखता से बाजार तंत्र अधिक प्रभावपूर्ण बन गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उदारीकरण नीति के अन्तर्गत मिश्रित अर्थव्यवस्था को कड़े नियंत्रणों एवं प्रतिबंधों की पुरानी व्यवस्था से हटाकर निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के विकास पर केन्द्रित कर दिया गया है। निर्यात संवर्धन एवं निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान कर यह नीति देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक नयी दिशा की ओर मोड़ने का प्रयास है।

13.5 सार्वजनिक क्षेत्र: आशय, उद्देश्य एवं विशेषताएँ (Public sector: meaning, objectives and characteristics)

सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम, लोक उपक्रम या सार्वजनिक क्षेत्र जैसे शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया जाता है। अतः इन शब्दों को हम एक ही अर्थ में ग्रहण करेंगे। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र का आधारभूत अन्तर यही है कि इनमें से पहले पर सार्वजनिक स्वामित्व होता है अर्थात इस क्षेत्र के उद्यमों पर सरकार का स्वामित्व होता है जबकि निजी क्षेत्र के उद्यमों पर लोगों का अर्थात व्यक्ति विशेष का निजी स्वामित्व रहता है। आपको यह जानना बहुत जरूरी है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम पर सरकार के अंशतः स्वामित्व एवं निजी क्षेत्र के अंशतः स्वामित्व को संयुक्त उद्यम कहते हैं। ऐसे मामलों में उद्यम को 'सार्वजनिक उद्यम कहने का कारण यह है कि उस पर सार्वजनिक स्वामित्व का अंश अधिक होता है। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के कार्यकलाप के बीच विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं है फिर भी उद्देश्य एवं विशेषताओं के आधार पर इन दोनों क्षेत्रों में अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है । (1) सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्यमों पर सरकार का स्वामित्व होता है, जबकि निजी क्षेत्र के उद्यमों पर निजी साहसियों के हाथ में होता है । (2) सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना निजी उपक्रमों की तरह मात्र लाभ कमाने के लिए नहीं की जाती है बल्कि इनका लक्ष्य विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना भी होता है। (3) निजी क्षेत्र के उपक्रम कुछ लोगों और विशेष रूप से अपने स्वामियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जबकि सार्वजनिक उपक्रम न केवल सरकार बल्कि जनता ओर संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं । (4) सार्वजनिक उपक्रम की आवश्यक पूँजी मुख्यतः सरकार द्वारा बजट में व्यवस्था करके प्रदान की जाती है जबकि निजी क्षेत्र अपनी आवश्यक पूँजी शेयर पूँजी बाजार एवं ऋण से प्राप्त करता है। (5) सार्वजनिक उपक्रम के प्रशासन एवं प्रबंध के सम्बन्ध

में सरकारी प्रशासन की पद्धतियों एवं नियमों का पालन किया जाता है जबकि निजी क्षेत्र में प्रबंधन के विशेषज्ञों को रखा जाता है तथा ये सरकार के द्वारा मात्रा विनियमित किए जाते हैं।

13.6 उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान और महत्तव (Contribution and importance of public sector in the era of liberalization)

भारत में वृहत पैमाने के उद्योगों की शुरूआत सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से हुई । आधारभूत उद्योग जैसे बिजली, गैस, जल की आपूर्ति, बैंक, बीमा व्यवसाय, खनन और विनिर्माण, परिवहन, भण्डारण और संचार व्यवस्था आदि के माध्यम से अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की गयी। इस समय विश्व के प्रायः सभी देशों में सार्वजनिक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। विशुद्ध समाजवादी देशों में तो उत्पादन के सभी साधनों पर पूर्णतः सार्वजनिक क्षेत्र का ही बोलबाला होता है । मिश्रित आर्थिक प्रणाली में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विकासशील देशों के आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र को प्रधान स्थान प्राप्त है क्योंकि विकासशील देशों विशेषकर भारत का उद्देश्य हैः न्याय के साथ संवृद्धि । यह उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र को अनेक प्रकार की भूमिका सौंपी गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न भूमिकाओं का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है-

1. आधारिक संरचना की व्यवस्था- विकसित देशों में रेल, सड़क, बन्दरगाह, बिजली, जल, स्वास्थ्य, शिक्षा-प्रशिक्षण एवं संचार आदि की आवश्यक सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उद्योगपतियों को स्वतः प्राप्त होती है। अल्पविकसित देशों में ऐसी स्थित नहीं है। यहाँ पर इनका अभाव पाया जाता है । तीव्र औद्योगीकरण के लिए आधारभूत संरचना का निर्माण आवश्यक होता है । आधारभूत संरचना के निर्माण में खर्च एवं जोखिम बहुत होता है। इसलिए ऐसे उद्योग में निजी उद्योगपति निवेश नहीं करना चाहता है

2. विकासोन्मुखता- आजादी के बाद से ही सार्वजनिक क्षेत्र का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक एवं सामाजिक विकास रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में इस उपकरण का प्रयोग ऐसी रणनीति को अमल में लाने के लिए कया गया है जो पूंजीगत वस्तु क्षेत्र पर आधारित संवृद्धि प्रक्रिया से सम्बन्धित है। सार्वजनिक क्षेत्रों के विकास के पीछे तर्क यह था कि उत्पादन क्षमता अविलम्ब प्राप्त करके अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सकता है और फिर कुछ समय बाद देश अधिक बड़े पैमाने पर उपभोग वस्तुएँ तैयार कर सकेगा। बीसवीं सदी में सोवियत रूस ने भी यही मार्ग अपनाया जबकि उन्नीसवीं सदी में इंग्लैण्ड द्वारा अपनाया गया मार्ग इससे भिन्न था क्योंकि वहाँ पहले उपभोक्ताओं की मांग को प्राथमिकता दी गयी थी, और इसके बाद पूँजीगत माल की मांग को स्थान दिया गया था। देश की आर्थिक प्रगति में आधुनिकीकरण बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि नवीनतम तकनीक का विकास किया जाय। अणुशक्ति, इलेक्ट्रॉनिक्स आदि जैसे क्षेत्रों के विकास के लिए अणुशक्ति निगम, इलेक्ट्रानिक्स निगम आदि की स्थापना की गयी है ।

3. उचित मूल्य- अनिवार्य वस्तुओं की पूर्ति करने के उद्देश्य से भी सार्वजनिक क्षेत्र का अपना महत्व है । उदाहरण के लिए भारत में जनता को अनिवार्य वस्तुओं को उचित मूल्य पर सुनिश्चित करने के लिए भारतीय खाद्य निगम, राज्य व्यापार निगम, खनीज एवं लौह वस्तु निगम आदि की स्थापना की गयी है।

4. आर्थिक विकास के लिए संसाधनों की व्यवस्था- आधारभूत ढाँचे के निर्माण एवं भारी इंजिनियरिंग उद्योग के विकास के लिए बहुत बड़े पैमाने पर संसाधन की आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थितियों में निजी क्षेत्र बड़े पैमाने पर संसाधन जुटाने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं इसलिए इन परिस्थितियों में सरकार जनता से ऋण ले सकती है, कर वसूल कर सकती है या अन्य देशों से भी ऋण प्राप्त कर सकती है। विश्व के मौद्रिक संस्थाएँ सरकारों के साथ ही लेनदेन पसन्द करते हैं । इन सबके अतिरिक्त सरकार के पास घाटे की वित्त व्यवस्था जैसी भी सुविधा उपलब्ध है जिसे हीनार्थ प्रबन्धन भी कहते हैं। घाटे की वित्त

व्यवस्था की पूर्ति विदेशों से ऋण लेकर, आन्तरिक ऋण लेकर तथा अतिरिक्त मुद्रा निर्गमन करके की जाती है।

5. नियमिन तथा नियंत्रण- देश की अर्थव्यवस्था का नियमन तथा नियंत्रण करना राज्य का कार्य है। देश में सामान्य मूल्य स्तर में होने वाले उच्चावचन, मुद्रास्फीति एवं संकुचन, तेजी-मंदी आदि ऐसी घटनाएं है जिससे उपभोक्ता के साथ उत्पादक वर्ग भी प्रभावित होता है । सरकार अपने राजकोषीय नीति एवं रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की मौद्रिक नीति के द्वारा अर्थव्यवस्था को नियंत्रण करती है । भारतीय प्रतिभूति विनिमयन बोर्ड तथा बिमा नियामक प्राधिकरण के द्वारा अर्थव्यवस्था का नियमन व नियंत्रण करती है ।

6. रक्षात्मक कार्य - सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत रक्षात्मक कार्य भी शामिल होते हैं जैसे देश की आन्तरिक एवं वाह्य सुरक्षा प्रदान करना आदि ।

7. समाजवादी समाज की स्थापना एवं सामाजिक परिवर्तन- भारत सरकार ने समाजवादी समाज की स्थापना का व्रत लिया है। समाज के समाजवादी स्वरूप के लिए आवश्यक है कि औद्योगिक विकास का दायित्व पूर्णतया सरकार के हाथ में रहे। सार्वजनिक क्षेत्र सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं । इटालियन इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डस्ट्रीयल रिकन्स्ट्रक्शन के प्रोफेसर पासकाले सारासेनी ने सार्वजनिक क्षेत्र की इस भूमिका का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है- 'हमारा उद्देश्य इस्पात या मोटर कार बनाना नहीं है, हमारा लक्ष्य है इस्पात या कार निर्माण को सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक प्रगति का साधना बनाना' उपर्युक्त वाक्य से आप समझ गये होंगे कि सार्वजनिक क्षेत्र का उद्देश्य क्या है? और यह किस प्रकार से निजी क्षेत्र से भिन्न है ।

इन सबके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम सार्वजनिक उपक्रमों में होने वाले लाभों का उपयोग जन-सामान्य के हित के लिए करते हैं, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण पर नियंत्रण रखते हैं । रोजगार में वृद्धि को सुनिश्चित करते हैं। गरीबी को कम करने, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखने एवं देश की संतुलित आर्थिक विकास के लिए नीति निर्धारण करते हैं ।

13.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एवं उपलब्धियाँ (Development and achievements of public sector)

स्वतंत्रता से पहले भारत में किसी प्रकार का सार्वजनिक क्षेत्र मैजूद नहीं था। रेल, डाकघर, बन्दरगाह आदि पर ब्रिटिश सरकार का स्वामित्व था। इनका उद्देश्य देश के प्रशासन को सुगम बनाना एवं ब्रिटिश उद्योगों तथा उनमें काम कर रहे मजदूरों के लिए भारत से कच्चा माल और खाद्य पदार्थ खरीदने तथा ब्रिटेन में बना माल इस देश में बेच कर ब्रिटिश व्यापारियों को मदद करना था । वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1948 तथा औद्योगिक अधिनियम, 1951 के क्रियान्वयन के बाद हुआ । भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र की भूमिका को औद्योगिक नीति 1956 में स्पष्ट किया गया। इस क्षेत्र के स्पष्ट विभाजन के बाद से ही सार्वजनिक क्षेत्र का द्रुत गति से विकास सम्भव हो सका है। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास दो प्रकार से हुआ है- (1) विद्यमान उपक्रमों के राष्ट्रीयकरण द्वारा, (2) नये उपक्रमों की स्थापना के द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों को आप तीन भागों में बाँट सकते हैं-

1. विभागीय प्रतिष्ठान (Departmental Undertaking): विभागीय प्रतिष्ठान के अन्तर्गत डाक और तार, रेलवे, आल इण्डिया रेडियो, दूरदर्शन, युद्ध सामग्री फैक्ट्री आदि शामिल है।

2. विधि या कानून निगम (Statutory Corporation) : इसके अन्तर्गत भारतीय खाद्य निगम, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय जीवन बीमा, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, राज्य व्यापार निगम आदि आते हैं।

3. सरकारी कम्पनी: सरकारी कम्पनी के अन्तर्गत हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि. (SAIL), भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लि. (BHEL) आदि आते हैं।

देश की आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान का प्रमाण इस क्षेत्र द्वारा सृजित रोजगार करने की शक्ति से मिलता है। संगठित क्षेत्र में रोजगार का विवरण तालिका 13.1 में दिया गया है।

एनआईसी 1993 के अनुसार आंकड़े उपलब्ध नहीं होने के कारण जम्मू तथा कश्मीर, मणिपुर, मिजोरम, दमन और दीव से सम्बन्धित सूचना इस जोड़ में शामिल नहीं है।

यह तालिका संगठित क्षेत्र (Organised Sector) में रोजगार की स्थिति को दर्शाती है, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र (formal/EPFO) दोनों शामिल हैं। वर्ष 1991 में संगठित क्षेत्र में कुल 190.57 लाख लोग कार्यरत थे, जिनमें से लगभग 167.10 लाख पुरुष और 23.47 लाख महिलाएँ थीं। इसके बाद 1995 में कुल रोजगार बढ़कर 194.66 लाख हो गया, जबकि 2000 तक यह घटकर 193.14 लाख पर आ गया। 2005 में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में उल्लेखनीय गिरावट दिखाई दी और कुल रोजगार घटकर 180.07 लाख रह गया। 2009 और 2010 के बीच भी रोजगार लगभग स्थिर रहा और क्रमशः 177.95 लाख तथा 178.62 लाख रहा।

2015 के बाद संगठित क्षेत्र में फिर से सुधार देखा गया और रोजगार बढ़कर लगभग 207 लाख तक पहुँच गया, जिसमें महिलाओं की भागीदारी लगभग 32 लाख तक रही। 2018 में यह मामूली घटकर 202 लाख रहा, और 2022 तक यह और घटकर लगभग 191 लाख पर आ गया। नवीनतम अनुमान 2023–24 के लिए लगभग 195 लाख रोजगार का है, जिसमें पुरुषों की संख्या लगभग 165 लाख और महिलाओं की लगभग 30 लाख बताई गई है।

कुल मिलाकर, इस तालिका से स्पष्ट होता है कि 1990 के दशक के बाद सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार धीरे-धीरे घटा है, जबकि निजी क्षेत्र और औपचारिक रोजगार (EPFO कवरेज सहित) ने इस कमी की आंशिक भरपाई की है। महिलाओं की भागीदारी में हल्की वृद्धि हुई है, परंतु समग्र रूप से संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि बहुत तेज़ नहीं रही है।

तालिका 13.1 (विस्तारित): संगठित क्षेत्र में रोजगार (31 मार्च की स्थिति, लाख व्यक्ति)

वर्ष	**सार्वजनिक क्षेत्र**	**निजी क्षेत्र (formal/EPFO)**	**कुल संगठित क्षेत्र**
	पुरुष	महिला	कुल
1991	167.10	23.47	190.57
1995	168.66	26.00	194.66
2000	164.57	28.57	193.14
2005	150.86	29.21	180.07
2009	147.04	30.91	177.95

2010	146.66	31.96	178.62
2015†	~175	~32	~207
2018†	~170	~32	~202
2022†	~160	~31	~191
2023–24†	~165	~30	~195

वर्ष	सरकारी क्षेत्र (पुरुष)	सरकारी क्षेत्र (महिला)	सरकारी क्षेत्र (कुल)	निजी क्षेत्र (पुरुष)	निजी क्षेत्र (महिला)	निजी क्षेत्र (कुल)	कुल रोजगार (पुरुष)	कुल रोजगार (महिला)	कुल रोजगार (कुल)
1991	167.10	23.47	190.57	62.42	14.34	76.76	229.52	37.81	267.33
1995	168.66	26.00	194.66	64.31	16.28	80.59	232.97	42.28	275.25
2000	164.57	28.57	193.14	65.80	20.66	86.46	230.37	49.23	279.60
2005	150.86	29.21	180.07	63.57	20.95	84.52	214.43	50.16	264.59
2009	147.04	30.91	177.95	78.88	24.98	103.86	225.92	55.89	281.81
2010	146.66	31.96	178.62	81.83	26.63	108.46	228.49	58.59	287.08
2015	145.00	32.00	177.00	85.00	30.00	115.00	230.00	62.00	292.00
2018	140.00	33.00	173.00	90.00	35.00	125.00	230.00	68.00	298.00
2022	135.00	34.00	169.00	95.00	40.00	135.00	230.00	74.00	304.00
2024	130.00	35.00	165.00	100.00	45.00	145.00	230.00	80.00	310.00

स्रोत:सांख्यिकीय, आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार

- सरकारी क्षेत्रके आंकड़े अनुमानित हैं, क्योंकि EPFO डेटा मुख्यतः निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध है।
- निजी क्षेत्रके आंकड़े EPFO के नेट सदस्यता वृद्धि के आधार पर हैं। FY 2023–24 में EPFO ने 1.31 करोड़ नए सदस्य जोड़े, जिनमें से अधिकांश निजी क्षेत्र से संबंधित हैं।
- कुल रोजगारसरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों के योग के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सार्वजनिक क्षेत्र की निष्पादनता का उल्लेख तालिका13.2 में स्पष्ट किया जा रहा है।

टिप्पणी- 1. सिक्किम, अरूणांचल प्रदेश, दादरा और नगर हवेली तथा लक्षद्वीप शामिल नहीं है क्योंकि इन्हें अभी तक इस कार्यक्रम में शामिल नहीं किया गया है।

वृद्धि देखने को मिली है, 1991 में 76.76 लाख व्यक्ति कार्यरत थे, इनकी संख्या बढ़कर 2010 108.46 लाख व्यक्ति हो गयी है, परन्तु निजी क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की यह संख्या बढ़ने के बावजूद भी सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या से कम है। सरकारी और निजी क्षेत्र में कार्यरत पुरूष की तुलना में, दोनों ही क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है । सार्वजनिक क्षेत्र में 1991 में कार्यरत महिलाओं की संख्या 23.47 लाख थी जो बढ़कर 2010 में 31.96 लाख हो गयी अर्थात 1991 में यह 12.31 प्रतिशत थी जो 2010 में 17.80 प्रतिशत हो गयी। इसी तरह निजी क्षेत्र में भी कार्यरत

महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। 1991 में 18.68 प्रतिशत महिलाएँ निजी क्षेत्र में कार्यरत थी जबकि 2010 में यह 24.55 प्रतिशत हो गयी।

सार्वजनिक क्षेत्र की निष्पादनता का उल्लेख तालिका 13.2 में स्पष्ट किया जा रहा है।

तालिका13.2: भारीउद्योगकेअन्तर्गतकेन्द्रीयसार्वजनिकक्षेत्रोंकीउत्पादननिष्पादनता (रु. करोड़में)

उद्योग नाम	2007-08 (वास्तविक)	2008-09 (वास्तविक)	2009-10 (वास्तविक)	2010-11 (अनुमानित)
भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड	21,401.00	28,033.00	32,000.00	35,000.00
भारत पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड	191.77	239.99	285.00	385.00
हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन	774.06	677.31	735.92	825.80
स्कूटरर्स इंडिया लिमिटेड	151.72	126.48	145.64	208.11
नेपा लिमिटेड	102.96	104.38	97.00	87.75
हिन्दुस्तान साल्ट्स लिमिटेड	12.56	27.29	25.42	29.08
हिन्दुस्तान मशीन टूल्स	233.69	118.18	135.00	402.48
कुल योग	27,164.86	33,878.03	38,627.91	43,377.59

स्रोत: Annual Report, 2009-10, Ministry of Industries & Public Enterprises, Governemnt of India.

आपकी दी हुई तालिका से स्पष्ट होता है कि 2022-23 में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (PSEs/CPSEs) की वित्तीय स्थिति मिश्रित रही। कुल निवेश (दीर्घकालीन + इक्विटी) बढ़कर 42,72,602 करोड़ रूपए हो गया, जो पिछले वर्ष (38,45,326 करोड़) की तुलना में लगभग 11.12% वृद्धि को दर्शाता है। इसी प्रकार कुल टर्नओवर में भी 7.91% की वृद्धि दर्ज की गई, जो 2021-22 के 30,52,339 करोड़ रूपए से बढ़कर 2022-23 में 32,93,622 करोड़ रूपए हो गया।

हालाँकि, लाभ अर्जित करने वाले उपक्रमों का कुल लाभ पिछले वर्ष की तुलना में थोड़ा घटा है 2021-22 में जहाँ 2,49,009 करोड़ रूपए का लाभ था, वहीं 2022-23 में यह घटकर 2,44,904 करोड़ रूपए रह गया, यानी 1.65% की कमी। इसके विपरीत, हानि सहने वाले उपक्रमों की स्थिति में सुधार हुआ है। उनकी कुल हानि 2021-22 के 52,294 करोड़ रूपए से घटकर 2022-23 में 48,401 करोड़ रूपए रह गई, जो 7.43% की कमी दर्शाती है।

सरकार के लिए एक सकारात्मक पहलू यह रहा कि उपक्रमों द्वारा घोषित लाभांश (Dividend) में वृद्धि हुई। यह 2021-22 के 1,02,647 करोड़ रूपए से बढ़कर 2022-23 में 1,14,960 करोड़ रूपए हो गया, अर्थात् 11.99% वृद्धि। इसके विपरीत, केंद्रीय खजाने में कुल योगदान में मामूली गिरावट देखी गई, जो पिछले वर्ष के 4,23,216 करोड़ रूपए से घटकर 4,16,426 करोड़ रूपए रहा, यानी 1.60% की कमी।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार संबंधी आंकड़े भी उल्लेखनीय हैं। विदेशी विनिमय अर्जन 2022-23 में 1,83,642 करोड़ रूपए रहा, जो पिछले वर्ष के 1,72,063 करोड़ रूपए की तुलना में 6.73% अधिक है। वहीं, विदेशी विनिमय का बाह्य प्रवाह तेज़ी से बढ़ा है 2021-22 के 3,21,476 करोड़ रूपए से बढ़कर 2022-23 में 3,57,529 करोड़ रूपए, यानी लगभग 11.22% वृद्धि।

कुल मिलाकर, ये आँकड़े दिखाते हैं कि निवेश, टर्नओवर, लाभांश और विदेशी विनिमय अर्जन में वृद्धि हुई है, जबकि लाभ में हल्की गिरावट और केंद्रीय खजाने में योगदान में कमी दर्ज की गई है। वहीं घाटे वाले उपक्रमों की स्थिति सुधरी है, जिससे समग्र वित्तीय संतुलन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

तालिका 13.3 सार्वजनिक उपक्रमों का निष्पादनता 2008-09 (रु. करोड़ में)

विवरण	2022-23	2021-22	परिवर्तन (%)
निवेश (दीर्घकालीन + इक्विटी)	42,72,602	38,45,326	11.12
पूँजी (शुद्ध स्थिर पूँजी+कार्यशील पूँजी)	NA	NA	NA
कुल टर्नओवर	32,93,622	30,52,339	7.91
लाभ अर्जित करने वाली सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ	2,44,904	2,49,009	-1.65
हानि सहने वाली सार्वजनिक उपक्रमों की हानि	48,401	52,294	-7.43
शुद्ध मूल्य (Net worth)	NA	NA	NA
घोषित लाभांश (dividend declared)	1,14,960	1,02,647	11.99
कॉरपोरेट कर	NA	NA	NA
ब्याज भुगतान	NA	NA	NA
केन्द्रीय खजाने में योगदान	4,16,426	4,23,216	-1.60
विदेशी विनिमय अर्जित	1,83,642	1,72,063	6.73
विदेशी विनिमय का वाह्य प्रवाह	3,57,529	3,21,476	11.22

स्रोत: Annual Report, 2009-10, Ministry of Industries & Public Enterprises, Public Enterprises Survey 2022–23 (DPE, Ministry of Finance Governemnt of India.

13.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. सूक्ष्म, लघु एवं मध्य उपक्रम किसे कहते हैं ?
3. सोवियत रूस और इंग्लैण्ड द्वारा आर्थिक विकास के लिए अपनायी गयी आर्थिक नीति की भिन्नता को स्पष्ट कीजिए।
4. हीनार्थ प्रबन्धन क्या है?

बहु विकल्पीय प्रश्न -

1. उदारीकरण की शुरुआत भारत में किस वर्ष की गई थी?

a) 1981

b) 1991

c) 2001

d) 2011

2. उदारीकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका का मुख्य उद्देश्य क्या था?

a) सभी उद्योगों पर पूर्ण नियंत्रण

b) केवल कृषि उत्पादन बढ़ाना

c) बुनियादी ढाँचे और रणनीतिक क्षेत्रों में कार्य करना

d) निजी क्षेत्र को समाप्त करना

3. उदारीकरण के दौर में किस नीति पर विशेष बल दिया गया?

a) आत्मनिर्भरता

b) आयात प्रतिस्थापन

c) निजीकरण और विनियमन में ढील

d) राष्ट्रीयकरण

4. उदारीकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की दक्षता बढ़ाने हेतु कौन-सी नीति अपनाई गई?

a) मूल्य नियंत्रण नीति

b) विनिवेश नीति

c) कराधान नीति

d) जनकल्याण नीति

रिक्त स्थान भरों-

1. भारत में उदारीकरण की नीति ……………. में लागू की गई।

2. उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों का मुख्य ध्यान ……………. क्षेत्रों में केंद्रित किया गया।

3.. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में सरकार ने हिस्सेदारी बेचने की प्रक्रिया को…………….कहा जाता है।

4. उदारीकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका समाजवादी नियंत्रण से बदलकर …………….आधारित हो गई।

13.9 सारांश (Summary)

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र स्वतंत्र रूप से आर्थिक विकास के लिए कार्य करते हैं। सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना इस उद्देश्य के साथ की गयी कि ये उपक्रम संवृद्धि के साथ आर्थिक विकास सुनिश्चित करेंगे, धन एवं आय की असमानता को दूर करने में मदद करेंगे तथा गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करेंगे परन्तु लाल फीताशाही (red-tapism), कठोर नियंत्रण नीति एवं अकुशल प्रबंधन के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये फलस्वरूप आर्थिक व्यवस्था चरमरा गयी, जिसके कारण उदारीकरण की नीति अपनाई गयी। परन्तु उदारीकरण की नीति मात्र सार्वजनिक क्षेत्र में नकारात्मक प्रभाव के कारण ही नहीं बल्कि 1990-91 में राजकोषीय घाटे में जबरदस्त वृद्धि, मुद्रा स्फीति में वृद्धि एवं प्रतिकूल भुगतान संतुलन आदि के कारण अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थानों के दबाव में उदारीकरण की नीति अपनायी गयी। उदारीकरण के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के कार्य कुशलता में सुधार एवं उत्पादन के साथ-साथ निष्पादनता में वृद्धि हुई ।

13.10 शब्दावली (Glossary)

- **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector):** वे उद्यम और संस्थान जो सरकार के स्वामित्व में होते हैं और जनकल्याण के लिए वस्तुएँ, सेवाएँ तथा रोजगार उपलब्ध कराते हैं।
- **आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth):** समय के साथ अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि।
- **आर्थिक विकास(Economic Development):**समाज में जीवन स्तर, आय, शिक्षा और स्वास्थ्य में समग्र सुधार।

- **राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit):** सरकारी व्यय का उसके कुल राजस्व (उधार को छोड़कर) से अधिक होना।
- **घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing):**सरकारी व्यय की अधिकता को उधार या नई मुद्रा छापकर पूरा करना।
- **संकुचन (Contraction):** आर्थिक गतिविधियों जैसे उत्पादन, आय और रोजगार में कमी।

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहु विकल्पीय प्रश्न -

1. (b) 1991

2. (c) बुनियादी ढाँचे और रणनीतिक क्षेत्रों में कार्य करना

3. (c) निजीकरण और विनियमन में ढील

4. (b) विनिवेश नीति

रिक्त स्थान भरों-

1. 1991

2. बुनियादी ढाँचे और रणनीतिक

3.. विनिवेश (Disinvestment)

4. बाज़ार उन्मुख (Market-oriented)

13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- मिश्र, डॉ. जय प्रकाश; पंत डॉ. जे.सी. (2009), "भारतीय आर्थिक समस्याएँ", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. 234-240
- सिन्हा, डॉ. वी.सी.; डॉ. पुष्पा (2011-12), 'अर्थशास्त्र', एस. बी. डी. पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, पृ. 248
- अग्रवाल, ए. एन. (2007), 'भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं योजना' न्यू एज इण्टरनेशनल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 139, 554-599

13.13 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

- भारतीय अर्थव्यवस्था (2009-10) एस. एस. पब्लिकेशन्स (समसामयिक घटनासार), इलाहाबाद
- सिन्हा, डॉ. वी.सी.; डॉ. पुष्पा (2011-12), 'अर्थशास्त्र' पब्लिशिंग हाउस, आगरा
- आर्थिक समीक्षा (2011-12), भारत सरकार एस.बी.डी.

13.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. आर्थिक सुधार नीति की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान एवं महत्व पर एक निबंध लिखिये ।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के विकास एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए

इकाई 14 : विश्व व्यापार संगठन एवं भारत (World Trade Organisation and India)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)
14.2 उद्देश्य (Objectives)
14.3 प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी समझौता (गैट) और विश्व व्यापार संगठन (Agreement on Tariffs and Trade (GATT) and the World Trade Organisation)
14.4 विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization)
14.5 विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य (Objective of the World Trade Organisation)
14.6 विश्व व्यापार संगठन के कार्य (Functions of WTO)
14.7 विश्व व्यापार संगठन का संरचना (Structure of the World Trade Organisation)
14.8 विश्व व्यापार संगठन: मंत्री -स्तरीय सम्मेलन तथा भारत पर समझौतों का प्रभाव(WTO: Ministerial Conferences and Impact of Agreements on India)
14.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
14.10 सारांश (Summary)
14.11 शब्दावली (Glossary)
14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)
14.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)
14.14 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)
14.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह चौदहवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र किसे कहते हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था के विकास में इनकी भूमिका का व्याख्या कर सकते हैं।

प्रस्तुत इकाई में विश्व व्यापार संगठन और भारत के बारे में विस्तार से चर्चा किया गया है । विश्व व्यापार संगठन क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई तथा किन उद्देश्यों को लेकर बनाया गया आदि का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप विश्व व्यापार संगठन के महत्व को समझा सकेंगें तथा इस संगठन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण एवं परिवीक्षण की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगें ।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि-

- ✓ विश्व व्यापार संगठन को विस्तार से जान सकेंगे।
- ✓ विश्व व्यापार संगठन में भारत की स्थिति को जान सकेंगे।
- ✓ प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य समझौता को विस्तार से जान सकेंगे।
- ✓ ब्रेटन वुड्ज संस्था को जान सकेंगे।
- ✓ विश्व व्यापार संगठन के सिद्धान्त को विस्तार से जान सकेंगे।

14.3 प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी समझौता (गैट) और विश्व व्यापार संगठन (Agreement on Tariffs and Trade (GATT) and the World Trade Organisation)

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विश्व के राष्ट्रों में व्यापारिक संबंधों में असमानता, भेदभाव और परस्पर द्वेष की भावना उत्पन्न हुई, जिससे विश्व व्यापार में भारी गिरावट देखने को मिली। विकसित देशों ने विश्व व्यापार में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, विशेषकर अमेरिका ने डॉलर के माध्यम से वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रभावशाली भूमिका निभाई। इन परिस्थितियों से निपटने और वैश्विक व्यापार को समानता एवं न्याय के सिद्धांतों पर आधारित करने के लिए जुलाई 1944 में अमेरिका के न्यू हैम्पशायर स्थित ब्रेटन वुड्स में एक महत्वपूर्ण अधिवेशन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में तीन वैश्विक आर्थिक संस्थाओं - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD) जिसे अब विश्व बैंक कहा जाता है, और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (ITO) के गठन का प्रस्ताव पारित किया गया।

हालांकि ITO का गठन उस समय संभव नहीं हो सका, किंतु IMF और विश्व बैंक की स्थापना क्रमशः 1945 में की गई और 1947 से दोनों संस्थाओं ने कार्य करना प्रारंभ कर दिया। विश्व बैंक समूह में अब चार सहायक संस्थाएं शामिल हैं- अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA), अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC), बहुपक्षीय निवेश गारंटी एजेंसी (MIGA) तथा निवेश विवाद समाधान हेतु अंतर्राष्ट्रीय केंद्र (ICSID)। ये संस्थाएं विकासशील देशों में संरचनात्मक और वित्तीय विकास को प्रोत्साहन देने में सहायक हैं।

ITO की अनुपस्थिति में 1947 में जेनेवा में "प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता" (GATT) लागू किया गया, जिसे 1948 से कार्यान्वित किया गया। यह समझौता शुरू में 14 देशों तक सीमित था, लेकिन

बाद में इसमें 100 से अधिक देश शामिल हो गए। GATT ने 1994 तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों के निर्धारण, व्यापार उदारीकरण और टैरिफ में कटौती जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए।

1 जनवरी 1995 को GATT की जगह विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई, जिसका मुख्यालय जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड) में है। वर्तमान समय में WTO वैश्विक व्यापार का प्रमुख नियामक संगठन है, जिसमें 164 देश सदस्य (2024 तक) हैं और यह वैश्विक व्यापार को न्यायपूर्ण, पारदर्शी, गैर-भेदभावकारी और मुक्त बनाने की दिशा में कार्य कर रहा है। WTO के अंतर्गत विकासशील देशों के लिए विशेष प्रावधान और तकनीकी सहायता भी सुनिश्चित की गई है।

इस प्रकार, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रारंभ हुए प्रयासों के परिणामस्वरूप आज IMF, विश्व बैंक और WTO के रूप में तीन प्रमुख वैश्विक आर्थिक संस्थाएं सक्रिय हैं, जो वैश्विक अर्थव्यवस्था को स्थायित्व, विकास और समावेशी व्यापार की दिशा में आगे बढ़ा रही हैं।

ब्रेटन-वुड्ज संस्था- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमन और संचालन हेतु अब विश्व व्यापार संगठन (WTO) प्रमुख वैश्विक संस्था के रूप में स्थापित है, जिसने 1 जनवरी 1995 को गैट (GATT) का स्थान लिया। यद्यपि गैट 1948 से 1994 तक एक बहुपक्षीय व्यापार समझौते के रूप में कार्य करता रहा और विश्व व्यापार के 80 प्रतिशत से अधिक को प्रभावित करता था, परन्तु यह केवल एक अस्थायी व्यवस्था थी, न कि कोई स्थायी संगठन। इसके स्थान पर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना गैट के अंतिम अर्थात उरुग्वे राउण्ड (1986–1994) की सफल समाप्ति के पश्चात् हुई। WTO न केवल वस्तुओं के व्यापार को नियंत्रित करता है, बल्कि सेवाओं (GATS), बौद्धिक संपदा अधिकारों (TRIPS), निवेश उपायों और कृषि पर भी विस्तृत नियम बनाता है। यह एक स्थायी संस्था है जिसका मुख्यालय जेनेवा (स्विट्ज़रलैंड) में है।

WTO के अन्तर्गत, सदस्य देशों को "राष्ट्र के प्रति सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र (Most Favoured Nation - MFN)" के सिद्धांत के अनुसार एक-दूसरे को व्यापारिक रियायतें देनी होती हैं और व्यापार के क्षेत्र में भेदभाव नहीं करना होता। WTO में विकासशील देशों को विशेष रियायतें और संक्रमण काल दिया जाता है ताकि वे वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अपने आप को समायोजित कर सकें। इसके अतिरिक्त, विवाद समाधान तंत्र (Dispute Settlement Mechanism) के माध्यम से यह संगठन सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों का समाधान करता है।

WTO का उद्देश्य वैश्विक व्यापार को अधिक उदारीकृत, पारदर्शी, पूर्वानुमेय और स्थिर बनाना है। इसके तहत सदस्य देशों के बीच व्यापार में बाधाएं कम की जाती हैं, और व्यापार नीतियों के नियम-कायदे बनाए जाते हैं। वर्तमान में WTO के 160 से अधिक सदस्य देश हैं, जो वैश्विक व्यापार का लगभग 98% भाग नियंत्रित करते हैं। भारत WTO का एक संस्थापक सदस्य है और इसकी नीतियों व समझौतों में सक्रिय भागीदारी करता है।

इस प्रकार, जहां GATT एक प्रारंभिक व्यवस्था थी, वहीं WTO एक सुव्यवस्थित और शक्तिशाली संस्था के रूप में आज के वैश्विक व्यापार के नियमों और संरचना को संचालित कर रही है।। इसी राउण्ड में विश्व व्यापार संगठन का निर्माण किया गया था। गैट व्यापार राउण्ड को निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है-

सारणी 14.1 - गैट व्यापार दौर

वर्ष	स्थान (दौर का नाम)	मुख्य विषय / विशेषताएँ	भाग लेने वाले देश
1947	जेनेवा	प्रशुल्क (Tariff)	14
1949	अनेसी	प्रशुल्क(Tariff)	13
1951	टोरके	प्रशुल्क(Tariff)	38
1956	जेनेवा	प्रशुल्क(Tariff)	26
1960-61	जेनेवा (डिल्लन दौर)	प्रशुल्क, प्रतिरक्षात्मक उपाय (Dumping Measures and Tariff)	26
1964-67	जेनेवा (केनेडी दौर)	प्रशुल्क, प्रतिरक्षात्मक उपाय (Anti-dumping Measures and Tariff)	62
1973-79	जेनेवा (टोक्यो दौर)	प्रशुल्क, गैर-प्रशुल्क उपाय	102
1986-94	जेनेवा (उरूग्वे दौर)	प्रशुल्क, गैर-प्रशुल्क उपाय, सेवाएँ, बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार (IPR), विवाद समाधान प्रणाली, वस्त्र व्यापार, कृषि, विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना	114
1जनवरी1995	जेनेवा (WTO गठन)	WTO की औपचारिक शुरुआत; वस्तु, सेवा, बौद्धिक संपदा नियमन के लिए एक स्थायी संस्था की स्थापना।	सभी GATT सदस्य कुल वर्तमान में 166 सदस्य
2015(MC12)	जेनेवा (12वें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन)	मत्स्य सब्सिडी पर ऐतिहासिक समझौता, COVID-19 वैक्सीन IP राहत, कृषि	सभी WTO सदस्य (166 देश)

		सार्वजनिक स्टॉकिंग, WTO सुधार प्रस्ताव चर्चा।	
2025 (रिफॉर्म प्रयास)	WTO ग्लोबल मंच	निर्णय प्रक्रिया में पारदर्शिता, सदस्य द्वारा ब्लॉकिंग, विशेष विकासशील देश का दर्जा,सुधार प्रस्ताव।	सभी WTO सदस्य,प्रमुख भूमिका भारत, चीन, अमेरिका

14.4 विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organization)

विश्व व्यापार संगठन (WTO) एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो वैश्विक व्यापार के नियमों को नियंत्रित करता है और सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों के समाधान, व्यापार के प्रवाह को सुचारु बनाने और मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कार्य करता है। इसकी स्थापना 1 जनवरी 1995 को "उरूग्वे दौर" (Uruguay Round) की वार्ताओं के पश्चात हुई थी, जिसने गैट (GATT - General Agreement on Tariffs and Trade) का स्थान लिया।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वैश्विक व्यापार को पारदर्शी, पूर्वानुमेय और स्वतंत्र बनाना था। यह संगठन यह सुनिश्चित करता है कि व्यापार बाधाओं को कम किया जाए और सदस्य देश एक समान नियमों के अधीन कार्य करें। वर्तमान में विश्व व्यापार संगठन के 160 से अधिक सदस्य देश हैं, जो विश्व व्यापार का 98% से अधिक हिस्सा नियंत्रित करते हैं। भारत विश्व व्यापार संगठन का संस्थापक सदस्य है। विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय जिनेवा, स्विट्ज़रलैंड में स्थित है। विश्व व्यापार संगठन का सर्वोच्च निर्णय लेने वाला निकाय "मंत्रिस्तरीय सम्मेलन" (Ministerial Conference) होता है, जो हर दो वर्ष में आयोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त "सामान्य परिषद" (General Council), "विवाद निवारण निकाय" (Dispute Settlement Body) और "विविध परिषदें" भी कार्यरत हैं।

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य-व्यापार समझौतों का प्रशासन करना, व्यापार विवादों का समाधान करना, व्यापार नीतियों की समीक्षा करना,विकासशील देशों को तकनीकी सहायता प्रदान करना, वैश्विक व्यापार वार्ताएं आयोजित करना।

विश्व व्यापार संगठन वैश्विक व्यापार को स्थिरता प्रदान करता है। यह देशों के बीच व्यापार संबंधों को बेहतर बनाता है। यह विकासशील देशों को वैश्विक बाजार में भागीदारी का अवसर देता है। यह व्यापार विवादों को शांतिपूर्ण और व्यवस्थित तरीके से सुलझाता है।

विश्व व्यापार संगठन पर आरोप लगाया जाता है कि यह विकसित देशों के हितों की अधिक रक्षा करता है। यह पर्यावरणीय और सामाजिक मानकों को पर्याप्त प्राथमिकता नहीं देता। कृषि सब्सिडी और पेटेंट कानूनों के मामले में विकासशील देशों को नुकसान पहुंचने की आशंका रहती है।

विश्व व्यापार संगठन आज के वैश्विक व्यापार तंत्र की रीढ़ है। हालांकि इसके कार्यों की आलोचना होती रही है, फिर भी यह राष्ट्रों के बीच व्यापारिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने और विश्व में आर्थिक सहयोग बढ़ाने का एक प्रभावी मंच बना हुआ है। वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है, विशेषकर वैश्वीकरण, डिजिटल व्यापार और जलवायु परिवर्तन जैसे नए क्षेत्रों में इसके

योगदान की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अभी तक के गैट और विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम निम्नलिखित सारणी में दी गयी है-

सारणी 14.2 गैट एवं विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम

क्रम	नाम	कार्यभार ग्रहण तिथि	सेवा निवृत्ति तिथि	देश
1	SirEricWyndhamWhite	1948	1968	U.K.
2	Olivier Long	1968	1980	Switzerland
3	Arthur Dunkel	1980	1993	Switzerland
4	Peter Sutherland	1-07-1993	1-05-1995	Ireland
5	Renato Ruggiero	1-05-1995	1-08-1999	Italy
6	Mike Moore	1-08-1999	1-08-2002	New Zealand
7	Supachai Panitchpakdi	1-08-2002	1-08-2005	Thailand
8	Pascal Lamy	1-08-2005	1-09-2013	France
9	Roberto Azevêdo	1-09-2013	31-08-2020	Brazil
10	Dr. Ngozi Okonjo-Iweala	1-03-2021	वर्तमान	Nigeria

डॉ. न्गोज़ी ओकोंजो-इवेला (Ngozi Okonjo-Iweala) WTO की पहली महिला और पहली अफ्रीकी महानिदेशक हैं। वे 1 मार्च 2021 से कार्यरत हैं।

14.5 विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य (Objective of the World Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1 जनवरी 1995 को गैट (GATT - 1947) के स्थान पर की गई थी, जिसका प्रमुख उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अधिक मुक्त, निष्पक्ष, पूर्वानुमेय और समावेशी बनाना है। बदलते वैश्विक आर्थिक, तकनीकी और पर्यावरणीय परिदृश्य को देखते हुए विश्व व्यापार संगठन ने अपने मूल उद्देश्यों को आधुनिक संदर्भ में विस्तारित और अद्यतन किया है। विश्व व्यापार संगठन अब न केवल व्यापार बाधाओं को हटाने पर ध्यान देता है, बल्कि सतत विकास, डिजिटल व्यापार और वैश्विक न्यायसंगत व्यवस्था को भी बढ़ावा देता है।

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उत्पादन में वृद्धि- वैश्विक व्यापार को बढ़ावा देना और उत्पादन प्रक्रिया में सदस्य देशों की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित करना, विशेष रूप से विकासशील और अल्पविकसित देशों के लिए।
2. जनजीवन स्तर में सुधार और गरीबी उन्मूलन- व्यापार के माध्यम से लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा सामाजिक असमानताओं को कम करना।
3. वैश्विक संसाधनों का प्रभावी उपयोग- पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हुए उपलब्ध प्राकृतिक, मानव एवं तकनीकी संसाधनों का न्यायपूर्ण और दक्षतापूर्ण उपयोग।

4. पूर्ण एवं उत्पादक रोजगार की प्राप्ति- व्यापार नीतियों को इस प्रकार निर्देशित करना जिससे हर देश की अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की दिशा में बढ़े और वास्तविक आय में वृद्धि हो।
5. बहुपक्षीय व्यापार वार्ताएँ और सहयोग- द्विपक्षीय व्यापार से अधिक बहुपक्षीय वार्ताओं को प्राथमिकता देते हुए वैश्विक स्तर पर व्यापार बाधाओं को समाप्त करना और सहयोग की भावना को बढ़ाना।
6. सेवाओं के व्यापार और उत्पादन का विस्तार- विश्व व्यापार संगठन अब केवल वस्तुओं तक सीमित न रहकर, सेवाओं (जैसे: वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, आईटी आदि) के व्यापार को भी समान रूप से बढ़ावा देता है।
7. डिजिटल व्यापार और ई-कॉमर्स को प्रोत्साहन- आधुनिक अर्थव्यवस्था में इंटरनेट आधारित व्यापार को बढ़ावा देने हेतु नियम-कायदों का निर्माण और डेटा गोपनीयता व साइबर सुरक्षा पर सहयोग।
8. सतत और अविरल विकास की अवधारणा को बढ़ावा- पर्यावरणीय संरक्षण, कार्बन उत्सर्जन में कमी, हरित ऊर्जा और स्थायी उत्पादन-उपभोग को व्यापार व्यवस्था में समाहित करना।
9. पर्यावरण संरक्षण और जलवायु अनुकूल व्यापार- व्यापार नियमों को जलवायु परिवर्तन के वैश्विक लक्ष्यों (जैसे- पेरिस समझौता) के अनुरूप बनाना और पर्यावरणीय रूप से संवेदनशील उत्पादों को बढ़ावा देना।
10. न्यायसंगत विवाद निपटान प्रणाली- सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों को त्वरित, पारदर्शी और निष्पक्ष तरीके से सुलझाने हेतु प्रभावी व्यवस्था का संचालन।
11. बौद्धिक संपदा अधिकारों की रक्षा (TRIPS समझौता)-वैश्विक नवाचार, अनुसंधान और तकनीकी हस्तांतरण को संतुलन प्रदान करते हुए, पेटेंट, कॉपीराइट और ट्रेडमार्क जैसे अधिकारों की रक्षा करना।
12. वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला की सुरक्षा और स्थिरता- महामारी, युद्ध, या प्राकृतिक आपदाओं जैसी आपात स्थितियों में भी आपूर्ति व्यवस्था बनाए रखना ताकि व्यापार में न्यूनतम व्यवधान हो।

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों का दायरा आज के वैश्विक संदर्भ में केवल व्यापारिक लाभ तक सीमित न रहकर सामाजिक, पर्यावरणीय और तकनीकी समावेशन की ओर बढ़ चुका है। विश्व व्यापार संगठन अब न्यायपूर्ण वैश्वीकरण की ओर अग्रसर है, जहाँ प्रत्येक देश, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, अपने हितों की रक्षा के साथ-साथ वैश्विक प्रगति में योगदान दे सकता है।

14.6 विश्व व्यापार संगठन का कार्य (Function of WTO)

विश्व व्यापार संगठन (WTO) वैश्विक व्यापार प्रणाली का एक केंद्रीय स्तंभ है जो बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के माध्यम से सदस्य देशों के बीच व्यापार को अधिक सुचारु, पारदर्शी और पूर्वानुमानित बनाने हेतु कार्य करता है। वर्तमान वैश्विक चुनौतियों, जैसे डिजिटल व्यापार, जलवायु परिवर्तन, आपूर्ति शृंखलाओं की बाधाएं और स्वास्थ्य आपात स्थितियाँ (जैसे COVID-19), के संदर्भ में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इसके कार्यों में अब पारंपरिक भूमिकाओं के साथ-साथ नवोन्मेष और समावेशन पर भी जोर है।

विश्व व्यापार संगठन का कुछ महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित है-

1. बहुपक्षीय व्यापार समझौतों का कार्यान्वयन और पर्यवेक्षण: विश्व व्यापार संगठन सदस्य देशों के बीच हुए व्यापार समझौतों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करता है। यह सुनिश्चित करता है कि सदस्य देश निर्धारित नियमों का पालन करें ताकि व्यापार विवादों की संभावना कम हो।

2. विवाद निपटान प्रणाली (Dispute Settlement): यह संगठन सदस्य देशों के बीच व्यापार विवादों के निष्पक्ष समाधान हेतु एक सुव्यवस्थित मंच प्रदान करता है। यद्यपि हाल के वर्षों में इसके अपीलीय निकाय की कार्यक्षमता पर प्रश्न उठे हैं, फिर भी इसे विश्व व्यापार संगठन की रीढ़ माना जाता है।
3. व्यापार नीति की समीक्षा (Trade Policy Review Mechanism - TPRM):- विश्व व्यापार संगठन समय-समय पर सदस्य देशों की व्यापार नीतियों की समीक्षा करता है ताकि पारदर्शिता बढ़े और वैश्विक व्यापार में विश्वास बना रहे।
4. अंतरराष्ट्रीय संगठनों से समन्वय:- वैश्विक आर्थिक नीति में सामंजस्य स्थापित करने हेतु WTO, IMF (अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष), विश्व बैंक और UNCTAD जैसे संगठनों से सहयोग करता है, जिससे विकासशील देशों को वित्तीय और तकनीकी सहायता मिल सके।
5. तकनीकी सहयोग और क्षमता निर्माण:- विश्व व्यापार संगठन विकासशील और अल्पविकसित देशों को तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण, और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों के माध्यम से सहायता करता है ताकि वे वैश्विक व्यापार प्रणाली में प्रभावी ढंग से भाग ले सकें।
6. नवीन मुद्दों पर कार्य:- डिजिटल व्यापार, ई-कॉमर्स, जलवायु और पर्यावरणीय नियमों, लैंगिक समानता और आपूर्ति शृंखला सुदृढ़ीकरण जैसे समकालीन विषयों पर विश्व व्यापार संगठन नए समझौते और संवाद की दिशा में कार्य कर रहा है।
7. सतत विकास को प्रोत्साहन:- विश्व व्यापार संगठन अब व्यापार और सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के बीच तालमेल पर भी काम कर रहा है, विशेषकर हरित व्यापार, पर्यावरणीय वस्तुओं और सेवाओं के उदारीकरण को बढ़ावा देने में।

विश्व व्यापार संगठन का कार्यक्षेत्र आज पारंपरिक व्यापार नियमों से आगे बढ़कर समावेशी और सतत विकासोन्मुख वैश्विक व्यापार संरचना की ओर अग्रसर है। इसकी भूमिकाएँ लगातार विकसित हो रही हैं जिससे यह संगठन वैश्विक व्यापारिक समन्वय और स्थिरता के लिए और अधिक सशक्त बन सके।

14.7 विश्व व्यापार संगठन की संरचना (Structure of the World Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन का संरचना अथवा प्रशासन एक मंत्रीय सम्मेलन द्वारा संचालित होता है । इसकी संरचना को चार्ट द्वारा दर्शाया गया है-

विश्व व्यापार संगठन (WTO) एक स्थायी, अंतर-सरकारी संगठन है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों को विनियमित करता है। इसकी स्थापना 1 जनवरी 1995 को मराकेश समझौते के तहत हुई थी, और यह गेट (GATT) का उत्तराधिकारी है। WTO की संरचना बहुस्तरीय और जटिल है, जिससे यह वैश्विक व्यापार विवादों के समाधान, व्यापार वार्ताओं और व्यापार नियमों के कार्यान्वयन का संचालन करता है।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) की संरचना को चित्र के माध्यम से सुव्यवस्थित रूप से दर्शाया गया है। इस संगठन की सबसे उच्च इकाई मंत्री स्तरीय सम्मेलन (Ministerial Conference) है, जो समय-समय पर सभी सदस्य देशों के मंत्रियों की उपस्थिति में होती है और प्रमुख निर्णय लेती है।
इसके अधीन तीन प्रमुख निकाय कार्यरत हैं:

1. सामान्य परिषद - विवाद निपटान निकाय,
2. सामान्य परिषद - व्यापार नीति समीक्षा निकाय,

3. सामान्य परिषद (जो अन्य परिषदों पर नियंत्रण रखती है)।

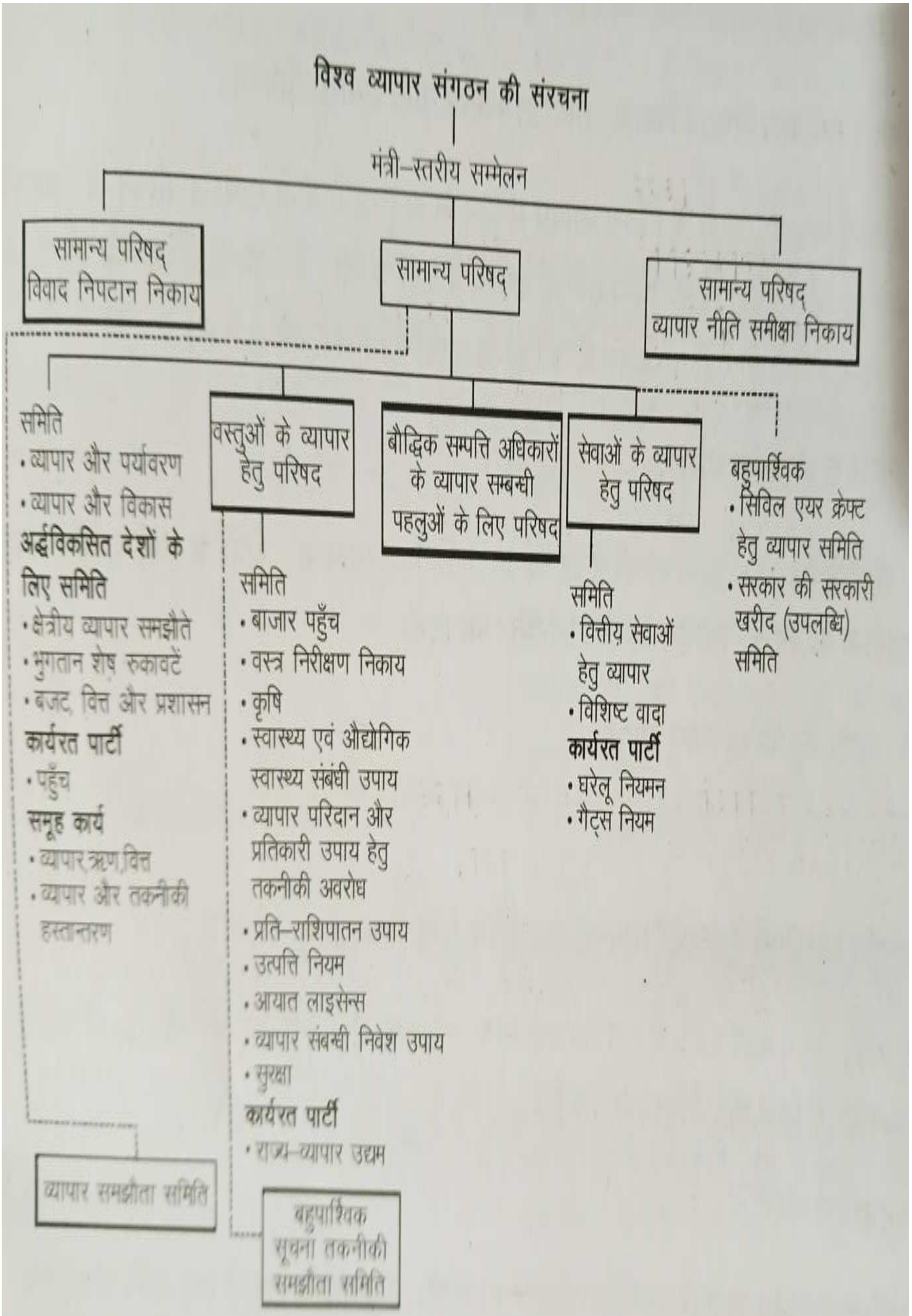

सामान्य परिषद के अंतर्गत तीन प्रमुख परिषदें कार्य करती हैं:

1. वस्तुओं के व्यापार हेतु परिषद (Council for Trade in Goods)– यह परिषद वस्तुओं के व्यापार से संबंधित सभी मामलों की देखरेख करती है और इसके अधीन कई समितियाँ कार्यरत हैं, जैसे: बाज़ार पहुँच,वस्त्र निर्गमन निकाय,कृषि, स्वच्छता एवं औद्योगिक मानक,व्यापार एकीकृत उपाय, व्यापार संबंधित निवेश, तकनीकी अड़चनें, शुल्क निर्धारण, निर्यात प्रतिबंध, लाइसेंसिंग प्रक्रिया और सीमा शुल्क मूल्यांकन इत्यादि। इसके अतिरिक्त कार्यदल और अन्य व्यापार उपसमूह भी इस परिषद के अधीन कार्य करते हैं।
2. सेवाओं के व्यापार हेतु परिषद (Council for Trade in Services) – यह सेवाओं के व्यापार से संबंधित मामलों को नियंत्रित करता है। इसके अंतर्गत:
   विभिन्न सेवाओंपर समितियाँ, विशिष्ट वार्ता (specific negotiations), कार्यरत वार्ड (Working Party), घरेलू नियम, जनरल नियम आदि आते हैं।
3. बौद्धिक संपत्ति अधिकारों के व्यापार संबंधित पहलुओं हेतु परिषद (Council for TRIPS) – यह परिषद WTO के अंतर्गत बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापारिक पक्षों को नियंत्रित करती है।
4. इन तीनों परिषदों के अतिरिक्त, विवाद निपटान निकाय WTO के भीतर सदस्य देशों के बीच उत्पन्न व्यापार विवादों का समाधान करता है। इसके अंतर्गत:व्यापार और पर्यावरण समिति,व्यापार और विकास समिति,अल्पविकसित देशों से संबंधित उपसमिति, क्षेत्रीय व्यापार समझौते समिति,बजट, वित्त और प्रशासन समिति,विविध कार्यदल,विशेषज्ञ पैनल,अपील निकाय,प्रवर्तन समिति,निगरानी समिति,कार्यान्वयन समिति आदि सम्मिलित हैं।

इस प्रकार WTO की यह संरचना एक विस्तृत और बहुस्तरीय ढांचा प्रदान करती है, जो वैश्विक व्यापार के विभिन्न पहलुओं को समन्वित रूप से नियंत्रित और संचालित करता है।

14.8 विश्व व्यापार संगठन: मंत्री -स्तरीय सम्मेलन तथा भारत पर समझौतों का प्रभाव (WTO: Ministerial Conferences and Impact of Agreements on India)

विश्व व्यापार संगठन का प्रारम्भ से सदस्य होने के कारण भारत को इसके सदस्य देशों को निर्यात करने में अधिकतम अनुग्रहित राष्ट्र (Most Favoured Nation - MFN) व्यवहार का लाभ प्राप्त होता है। इसका अर्थ है कि भारत को विश्व व्यापार संगठन के अन्य सदस्य देशों द्वारा व्यापारिक रियायतों और टैरिफ की दृष्टि से कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। यह भारत के लिए वैश्विक व्यापार में एक स्थिर और अनुकूल वातावरण सुनिश्चित करता है।

विश्व व्यापार संगठन की निर्णय प्रक्रिया का सर्वोच्च अंग "मंत्री-स्तरीय सम्मेलन" है। यह सम्मेलन हर दो वर्ष में आयोजित होता है और संगठन की नीति निर्धारण, समीक्षा और दिशा तय करने का कार्य करता है। इस सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक का चयन, सामान्य परिषद के कार्यों की समीक्षा तथा वैश्विक व्यापार नियमों में आवश्यक सुधार जैसे महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाते हैं।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना (1995) से अब तक 13 मंत्री-स्तरीय सम्मेलन हो चुके हैं। इनमें से 13वां सम्मेलन फरवरी 2024 में अबू धाबी (संयुक्त अरब अमीरात) में संपन्न हुआ।

सारणी 14.3 विश्व व्यापार संगठन के मंत्री स्तरीय सम्मेलन

क्रम	सम्मेलन (स्थान व वर्ष)	प्रमुख विषय / निर्णय	भारत पर प्रभाव
1	सिंगापुर, 1996	श्रम मानकों व पर्यावरण मानकों का मुद्दा उठा	भारत ने इनका विरोध किया; विकासशील देशों की चिंता को उजागर किया।
2	जिनेवा, 1998	WTO की समीक्षा व प्रतिबद्धताओं की पुष्टि	भारत को WTO नियमों में अधिक पारदर्शिता अपनानी पड़ी।
3	सिएटल, 1999	बायोटेक, पर्यावरण मानकों पर विवाद; सम्मेलन असफल	भारत के हित सुरक्षित रहे; कोई बाध्यकारी निर्णय नहीं हुआ।
4	दोहा, 2001	दोहा विकास एजेंडा प्रारंभ; कृषि, दवाएं, सेवा व्यापार	भारत को सस्ती जेनेरिक दवाओं के निर्यात में राहत मिली।
5	कानकुन, 2003	कृषि सब्सिडी पर विवाद; सम्मेलन विफल	भारत ने कृषि सब्सिडी बचाने में सफलता पाई।
6	हांगकांग, 2005	निर्यात सब्सिडी समाप्त करने का निर्णय	भारत पर दबाव बढ़ा परंतु घरेलू कृषि सब्सिडी यथावत रही।
7	जिनेवा, 2009	दोहा राउंड पर धीमी प्रगति	भारत की चिंताओं को फिर से रेखांकित किया गया।
8	जिनेवा, 2011	LDCs के लिए विशेष प्रावधान	भारत ने LDCs के पक्ष में समर्थन किया; स्वयं को विकासशील बनाए रखा।
9	बाली, 2013	व्यापार सुविधा समझौता (TFA); खाद्य सुरक्षा पर असहमति	भारत को खाद्य सुरक्षा पर स्थायी समाधान की मांग को उठाने का मौका मिला।
10	नैरोबी, 2015	कृषि निर्यात सब्सिडी समाप्ति	भारत ने घरेलू किसानों को राहत देने हेतु लचीलापन बरकरार रखा।
11	ब्यूनस आयर्स, 2017	ई-कॉमर्स, मत्स्य पालन सब्सिडी	भारत ने मत्स्य पालकों के हितों की रक्षा की; ई-कॉमर्स नीति में सावधानी बरती।

12	जिनेवा, 2022	कोविड-19 वैक्सीन पेटेंट छूट, खाद्य सुरक्षा, मत्स्य सब्सिडी	भारत को वैक्सीन पेटेंट छूट से लाभ; खाद्यान्न भंडारण पर संरक्षण मिला।
13	अबू धाबी2024	मछली पकड़ने पर सब्सिडी, कृषि सुधार, डिजिटल व्यापार नियमों पर ध्यान।	भारत ने अपने किसान हितों की मजबूती से पैरवी की।

विश्व व्यापार संगठन (WTO) के मंत्री-स्तरीय सम्मेलन समय-समय पर वैश्विक व्यापार नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत ने इन सम्मेलनों में सक्रिय भागीदारी के माध्यम से अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने और विकासशील देशों की आवाज़ उठाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

1996 में सिंगापुर में आयोजित पहले सम्मेलन में श्रम और पर्यावरण मानकों का मुद्दा प्रमुख था, जिसे भारत सहित अनेक विकासशील देशों ने अस्वीकार किया क्योंकि यह व्यापार में बाधा उत्पन्न कर सकता था। 1998 में जिनेवा सम्मेलन के दौरान विश्व व्यापार संगठन की समीक्षा और प्रतिबद्धताओं की पुष्टि की गई, जिससे भारत को अधिक पारदर्शिता और नियमों के पालन की आवश्यकता पड़ी। 1999 का सिएटल सम्मेलन बायोटेक और पर्यावरण मानकों पर विवादों के कारण विफल रहा, जिससे भारत को राहत मिली क्योंकि कोई बाध्यकारी निर्णय नहीं लिया गया।

2001 में दोहा सम्मेलन में दोहा विकास एजेंडा की शुरुआत हुई, जिसमें कृषि, दवाओं और सेवाओं का मुद्दा प्रमुख रहा। भारत को विशेष रूप से सस्ती जेनेरिक दवाओं के निर्यात में लाभ मिला। 2003 के कानकुन सम्मेलन में कृषि सब्सिडी पर मतभेद उभरे और सम्मेलन विफल रहा, जिससे भारत को अपनी कृषि सब्सिडी को बनाए रखने का अवसर मिला। 2005 में हांगकांग सम्मेलन में निर्यात सब्सिडी समाप्त करने का निर्णय लिया गया, लेकिन भारत घरेलू सब्सिडी को यथावत रखने में सफल रहा।

2009 और 2011 के जिनेवा सम्मेलनों में दोहा वार्ता की धीमी प्रगति और LDCs (कम विकसित देशों) के लिए विशेष प्रावधानों पर चर्चा हुई, जिसमें भारत ने विकासशील देशों के पक्ष में समर्थन किया और स्वयं को विकासशील राष्ट्र बनाए रखा। 2013 के बाली सम्मेलन में व्यापार सुविधा समझौता (TFA) पारित हुआ, वहीं भारत ने खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर स्थायी समाधान की मांग रखी।

2015 में नैरोबी सम्मेलन में कृषि निर्यात सब्सिडी समाप्त करने का समझौता हुआ, लेकिन भारत ने घरेलू किसानों के हितों को सुरक्षित रखने के लिए लचीलापन बनाए रखा। 2017 के ब्यूनस आयर्स सम्मेलन में ई-कॉमर्स और मत्स्य पालन सब्सिडी जैसे नए मुद्दे उठे, जिन पर भारत ने संतुलित रुख अपनाया और अपने हितों की रक्षा की। अंततः 2022 के जिनेवा सम्मेलन में कोविड-19 वैक्सीन पेटेंट छूट, खाद्य सुरक्षा और मत्स्य पालन पर निर्णय लिए गए, जिनसे भारत को वैक्सीन पेटेंट छूट का लाभ मिला और सार्वजनिक खाद्यान्न भंडारण के अधिकार को भी सुरक्षित किया गया।

अबू धाबी सम्मेलन में भारत ने स्पष्ट रूप से अपने किसानों, मछुआरों और डिजिटल नीति की रक्षा की। भारत ने यह सुनिश्चित किया कि विश्व व्यापार संगठन के फैसले उसकी घरेलू आवश्यकताओं और सामाजिक-आर्थिक संरचना के अनुरूप हों। यह सम्मेलन भारत की वैश्विक मंच पर नीतिगत दृढ़ता और

विकासशील देशों के नेतृत्व की भावना को दर्शाता है।इस प्रकार, अबू धाबी 2024 सम्मेलन में भारत की भागीदारी न केवल रक्षात्मक रही, बल्कि उसने नीतिगत नेतृत्व भी प्रस्तुत किया।

इस प्रकार, विश्व व्यापार संगठन के प्रत्येक मंत्री-स्तरीय सम्मेलन में भारत ने अपनी नीतिगत प्राथमिकताओं को मजबूती से रखा और विकासशील देशों की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास किया।

14.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न :

1. विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना कब हुई थी?

a) 1991

b) 1995

c) 2000

d) 1986

2. WTO का मुख्यालय कहाँ स्थित है?

a) न्यूयॉर्क

b) पेरिस

c) जिनेवा

d) लंदन

3. निम्न में से कौन WTO का उद्देश्य नहीं है?

a) वैश्विक व्यापार को बढ़ावा देना

b) व्यापार विवादों का समाधान

c) देशों की सैन्य शक्ति बढ़ाना

d) व्यापार नीतियों की पारदर्शिता

4. WTO में निर्णय लेने की प्रक्रिया मुख्यतः किस सिद्धांत पर आधारित होती है?

a) बहुमत

b) सर्वसम्मति

c) वोटिंग

d) निर्वाचित प्रतिनिधि

सत्य / असत्य :

a) WTO, GATT (General Agreement on Tariffs and Trade) का उत्तराधिकारी है।
b) WTO केवल विकसित देशों के हितों की रक्षा करता है।
c) WTO में सभी सदस्य देशों को समान वोटिंग अधिकार प्राप्त होते हैं।
d) WTO का मुख्य कार्य सैन्य सहयोग को बढ़ावा देना है।

रिक्त स्थान भरें :

a) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना ___ में हुई थी।

b) WTO का मुख्यालय ___ में स्थित है।

c) भारत WTO का संस्थापक ___ है।

d) WTO का प्रमुख उद्देश्य है सदस्य देशों के बीच ___ को प्रोत्साहित करना।

लघु उत्तरीय प्रश्नः

a) गैट का समझौता किन सिद्धान्तों पर आधारित था ?

b) डब्ल्यू. टी. ओ. में मन्त्री स्तरीय सम्मलेन क्या है?

c) गैट की स्थापना क्यों की गयी है?

d) गैट के आठवें दौर के मुख्य विषय का उल्लेख कीजिए।

14.10 सारांश (Summary)

प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी समझौता (गैट) 1948 से 1994 तक विश्व व्यापार के लिए नियम बनाता रहा और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य को ऊँचाईयाँ दी। लगभग 47 वर्षों तक यह एक अस्थायी संस्था के रूप में कार्य करता रहा। गैट का आठवां दौर जिनेवा (उरूग्वे) में हुआ, जो उरूग्वे दौर के नाम से जाना जाता है। यह आठवां दौर गैट का अन्तिम दौर था। इसी दौर में जनवरी 1. 1995 में विश्व व्यापार संगठन का जन्म हुआ, जिसमें होने वाले समझौते सदस्य देशों के लिए बाध्यकारी बन गये और उन समझौतों को पालन न होने की स्थिति में सदस्य देशों पर कानूनी तौर पर कार्रवाई करने की व्यवस्था की गयी है। इस नयी संस्था डब्ल्यू. टी. ओ. में गैट में पहले से शामिल मुद्दों में पेटेन्ट, कृषि, निवेश, सेवाओं का उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार, विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग, अविरल विकास की अवधारणा, पर्यावरण का संरक्षण एवं इसको सुरक्षा तथा व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक संपत्ति अधिकार आदि विषय को शामिल कर लिया गया। अभी तक विश्व व्यापार संगठन के कुल छः मंत्री - सम्मेलन हुए है। छठवां मंत्री सम्मेलन हांगकांग में हुआ। इस सम्मेलन के बाद मंत्री स्तरीय सम्मेलन में गतिरोध बना हुआ है। गतिरोध का कारण विकसित देशों द्वारा कृषि निर्यात पर दी जाने वाली परिदान को घटाने के बजाय बढ़ा देना है तथा तीन चौथाई से भी अधिक परिदान को ग्रीन बाक्स में डाल देना आदि है।

14.11 शब्दावली (Glossary)

- **अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) –**एक अंतरराष्ट्रीय संस्था जो वैश्विक वित्तीय स्थिरता, मुद्रा सहयोग और आर्थिक विकास को बढ़ावा देती है।
- **अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (International Development Association) –**विश्व बैंक का एक अंग जो गरीब देशों को रियायती दरों पर ऋण और अनुदान उपलब्ध कराता है।
- **पेटेंट (Patents)-** पेटेंट किसी आविष्कार, डिजाईन आदि को प्रोत्साहित एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक निश्चित समयावधि के लिए प्रदान किया जाने वाला कानूनी अधिकार है।
- **प्रशुल्क (Tariff)-** जब कोई वस्तु राष्ट्रीय सीमा में प्रवेश करती है या राष्ट्रीय सीमा को छोड़ती है तो इन वस्तुओं पर लगाया गया कर या शुल्क को प्रशुल्क कहते हैं। प्रशुल्क आयात शुल्क या सीमा शुल्क का पर्यायवाची है।

- **राशिपतन (Dumping) -** दो बाजारों के बीच कीमत विभेद है । जिसमें निर्यातक फर्म विदेशी बाजार में अपनी उत्पादित वस्तु का एक भाग कम कीमत पर तथा अन्य भाग घरेलू बाजार में अधिक कीमत पर बेचता है ।

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न :

1. (a) 1995
2. (c) जिनेवा
3. (c) देशों की सैन्य शक्ति बढ़ाना
4. (b) सर्वसम्मति

सत्य / असत्य :

a) सत्य
b) असत्य
c) सत्य
d) असत्य

रिक्त स्थान भरें :

a) 1995
b) जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड)
c) सदस्य
d) मुक्त और निष्पक्ष व्यापार

14.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सेठी, डॉ. टी.टी. (2009-10), 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 245-261
- झिंगन, एम. एल. (2005), 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, पृ. 575, 588
- अग्रवाल, एच. एस.; बरला, सी. एस. (1998), 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 289-305
- डब्लू.टी.ओ. (2001), "Understanding the WTO.", WTO Information and External Relation Division, Switzerland, पृ. 18, 19, 108, 109
- आर्थिक समीक्षा (2012), भारत सरकार, पृ. 154
- महाजन, अश्विनी, (2011), 'ज्वलंत मुद्दा', दैनिक जागरण

14.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful Text)

- समसामयिक घटना सार (2009-10), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. एस. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

- लाल, डॉ. एस.एन. (2003), "अर्थशास्त्र मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोकवित्त शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद
- झिंगन, एम.एल. (2005) "अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. विश्व व्यापार संगठन (WTO) क्या है? इसकी स्थापना, उद्देश्य, कार्य एवं भारत पर प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. डब्ल्यू.टी.ओ. के विभिन्न वार्ता दौरों का वर्णन कीजिए।
3. विश्व व्यापार संगठन के मंत्री-स्तरीय सम्मेलनों का संक्षिप्त विवरण दीजिए तथा भारत पर उनके प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।
4. GATT और WTO में क्या अंतर है? WTO के गठन के पीछे क्या कारण थे? भारत ने WTO में कैसे अपनी भूमिका निभाई है?